CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5-4

काशी के विद्यारत्न संन्यासी

पद्मभूषण आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

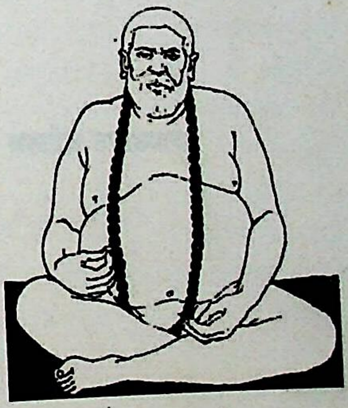

काशी के विद्यारत्न संन्यासी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काशी के विद्यारत्न संन्यासी

पद्मभूषण आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

KĀSHĪ KE VIDYĀRATNA SANYASĪ

by

Padmbhusan Aacharya Pt. Baldeva Upadhyaya

978-81-7124-668-7

प्रथम संस्करण : 2008 ई०

मूल्य : साठ रुपये (Rs. 60.00)

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी–221 001

फोन व फैक्स : (0542) 2413741, 2413082

E-mail : vvp@vsnl.com ● sales@vvpbooks.com

Website : www.vvpbooks.com

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी–221 001

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आमुख

काशीस्थ मनीषियों ने वेदान्त के प्रसार तथा प्रचार के निमित्त जो कार्य किया, वह वेदान्त के इतिहास में सुवर्णाक्षरों से अंकित करने योग्य है। तथ्य तो यह है कि वेदान्त की सार्वभौम मौलिक रचनाओं के निमित्त दार्शनिक समाज काशी के विद्वानों का चिरऋणी रहेगा। इस अभिनव प्रयास में विरक्त संन्यासियों तथा अनुरक्त गृहस्थों, दोनों का सम्मिलित योगदान सर्वदैव श्लाघनीय तथा स्मरणीय रहेगा। विद्वान् संन्यासियों का योगदान अधिक होने से निःसन्देह मननीय तथा माननीय है। इनके रचनाकलाप का अनुशीलन करने से एक विशिष्ट तथ्य की अभिव्यक्ति होती है और वह है ज्ञानमार्गी ग्रन्थों के प्रणयन के साथ ही भक्तिमार्गी ग्रन्थों का निर्माण। यह तथ्य कतिपय संन्यासियों की रचनाओं के द्वारा ही परिस्फुटित होता है अवश्य, परन्तु इसका अपलाप कथमपि नहीं किया जा सकता। 'अद्वैतसिद्धि' के प्रणेता श्री मधुसूदन सरस्वती एक साथ ही प्रौढ़ दार्शनिक तथा सहृदय भक्त दोनों थे। 'अद्वैतसिद्धि' जैसे प्रमेयबहुल तार्किक ग्रन्थ के निर्माण का श्रेय जहाँ उन्हें प्राप्त है, वहीं 'भक्तिरसायन' जैसे भक्तिरस के प्रतिष्ठापक ग्रन्थ की रचना का गौरव भी उन्हें उपलब्ध है। नारायणतीर्थ का भी वैदुष्य इसी प्रकार का था। जहाँ उन्होंने वेदान्त, सांख्य, योग तथा न्याय-वैशेषिक के विषय में ग्रन्थों का निर्माण किया, वहीं शांडिल्यकृत भक्तिसूत्र की भी भक्तिचन्द्रिका नाम्नी अपूर्व व्याख्या की रचना की जिसमें भक्तिशास्त्र के महनीय सिद्धान्तों का परिष्कार बड़े कौशल तथा वैशद्य से किया गया है। इसे काशीस्थ संन्यासियों का वैशिष्ट्य मानना कथमपि अनुचित न होगा और लेखक की दृष्टि में श्रीमद्भागवत में अद्वैत के साथ भक्ति का मञ्जुल समन्वय प्रस्तुत किया गया है। भागवत दोनों के साहचर्य तथा सामरस्य का प्रतिपादक तथा गम्भीरार्थद्योतक दिव्य ग्रन्थ है जिसके अध्ययन से अद्वैतवादी संन्यासियों का दार्शनिक सिद्धान्त भक्तिरस से स्निग्ध तथा मञ्जुल है। काशी के अद्वैती संन्यासियों की यह परम्परा आज भी जागरूक है। आज भी करपात्रीजी महाराज की, जहाँ कट्टर अद्वैत के प्रतिपादन में तार्किक बुद्धि का विलास मिलता है, वहीं 'रासपञ्चाध्यायी' के विशद अनुशीलन में तथा 'भक्तिरसार्णव' जैसे भक्तिरस के संस्थापक ग्रन्थ के निर्माण में उनका भक्तिरसाप्लुत स्निग्ध हृदय भी अभिव्यक्त होता है।

आदि शङ्कराचार्य ने काशी को अपनी कर्मस्थली बनाकर उसे गौरव ही प्रदान नहीं किया, अपितु उस प्राचीन परम्परा का भी अनुसरण किया जो विद्वानों से अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिद्धान्तों के परीक्षण तथा समीक्षण के लिए काशी में आने के लिए आग्रह करती थी। आचार्य शंकर ने अपने ग्रन्थों का निर्माण कहाँ किया, इस प्रश्न के उत्तर में विद्वानों में ऐकमत्य नहीं है। कुछ तो बदरीनाथ के पास 'व्यास गुहा' को भाष्यों की रचना का स्थल मानते हैं, परन्तु अधिकतर आलोचक काशी को इसके लिए गौरव प्रदान करते हैं। जो कुछ भी हो, काशी में वेदान्त-भाष्य के अध्ययन-अध्यापन का कार्य अवश्य ही सुसम्पन्न हुआ। फलतः काशीस्थ विद्वानों का अद्वैत के प्रति दृढ़ आग्रह और अद्वैतविषयक ग्रन्थों के प्रणयन के प्रति नैसर्गिक निष्ठा बोधगम्य है। यहाँ विशिष्ट वेदान्त-तत्त्वज्ञ संन्यासियों का ही संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

चतुर्दशशती के वेदान्तज्ञ संन्यासियों में स्वामी ज्ञानानन्द का विशिष्ट स्थान था। उनके प्रधान शिष्य प्रकाशानन्द ने 'वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली' नामक अपूर्व ग्रन्थ का निर्माण किया। यह 'एकजीववाद' का प्रतिपादक ग्रन्थ है। वेदान्त के दो प्रख्यात सम्प्रदाय हैं—(क) सृष्टि-दृष्टिवाद तथा (ख) दृष्टि-सृष्टिवाद। प्रकाशानन्द का ग्रन्थ इसी द्वितीय मत का प्रतिपादक तथा गम्भीर विवेचक है। इस ग्रन्थ की रचना से दो शताब्दी पीछे षोडशशती में अनेक वेदान्त-मर्मज्ञ संन्यासियों ने काशी को अलंकृत किया जिनमें नृसिंहाश्रम, मधुसूदन सरस्वती, नारायण तीर्थ तथा ब्रह्मानन्द सरस्वती का नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। नृसिंहाश्रम उस युग के परम प्रसिद्ध तथा आदरणीय संन्यासी थे। वे अपने को 'वेदान्तसिद्धान्त-साराभिज्ञ' कहकर उल्लिखित करते हैं। वे पहले नर्मदा-तट पर रहते थे। बाद में काशी आकर निवास करने लगे थे। उनकी वेदान्तविषयक अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनमें प्रधान हैं— भावप्रकाशिका (प्रकाशात्मदेव रचित 'पञ्चपादिका-विवरण' की टीका), वेदान्ततत्त्वविवेक तथा उसकी टीका दीपन (रचनाकाल मूलग्रन्थ का १६०४ वि. = १५४७ ई.), तत्त्वदीपन (अभेदरत्न की टीका), भेदधिक्कार (भेदवाद का खण्डन)। उनके उपास्यदेव नृसिंहदेव थे। वे सम्भवतः काञ्ची के निवासी थे। उनके ऊपर अप्पय दीक्षित की असीम श्रद्धा थी और उनके कहने पर अप्पय दीक्षित ने शैव मत का त्याग कर वेदान्त का आश्रय लिया। नृसिंहाश्रम के शिष्य भारत के अनेक राज्यों में फैले हुए थे। अप्पय दीक्षित भी काशी में इसी शती में विद्यमान थे, परन्तु यहाँ निवास करते समय उन्होंने किन ग्रन्थों का प्रणयन किया था, इस विषय में अनुसन्धान की अपेक्षा है।

—आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयानुक्रम

		पृष्ठ
१.	श्री गौड़ स्वामी	१
२.	श्री तैलंग स्वामी	८
३.	स्वामी भास्करानन्द सरस्वती	१५
४.	स्वामी मधुसूदन सरस्वती	३३
५.	श्री देवतीर्थ स्वामी	३६
६.	स्वामी महादेवाश्रम	५३
७.	स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती	६२
८.	स्वामी ज्ञानानन्द	८३
९.	स्वामी करपात्रीजी	९०
१०.	दतिया के स्वामीजी	१०६
११.	स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती	११७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री गौड़ स्वामी

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में विद्यानगरी काशी में भाष्यान्त व्याकरण के अध्यापक वैयाकरण, न्याय के तर्ककर्कश तार्किक, मीमांसा मर्मज्ञ तथा वेदान्त के विचक्षण आलोचक लोकातीत वैदुष्य के धनी एक संन्यासी महाराज विराजते थे जिनका नाम था—परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री गौड़ स्वामी। गुरु द्वारा दीक्षाकाल में दिया गया नाम तो था—**तारक ब्रह्मानन्द सरस्वती** परन्तु जनसाधारण में ये गौड़ स्वामी के नाम से ही नितान्त विश्रुत थे। इस नाम का एक मुख्य हेतु भी था। काशी में दाक्षिणात्य संन्यासियों का ही उस युग में बाहुल्य था। एतद्देशीय गौड़ ब्राह्मण को चतुर्थाश्रम में दीक्षित करने वाले संन्यासियों का नितान्त अभाव था। परन्तु इनकी विद्याबुद्धि एवं तपोनिष्ठा से प्रसन्न होकर गुरुजी ने इन्हें संन्यासाश्रम में दीक्षित किया था। ये गौड़ ब्राह्मणों में संन्यास से दीक्षित किए जाने वाले व्यक्तियों में एक प्रकार से प्रथम थे। इसी हेतु ये इस नाम से विभूषित किए गए थे। इनके गृहस्थ एवं संन्यासी प्रौढ़ शिष्यों का एक विशाल समूह ही था जो इनके आश्रम पर निवास करता था तथा भिक्षाटन के समय भी इनसे अध्ययन करता रहता था। सुना है कि जब गौड़ स्वामीजी दाहिने हाथ में भिक्षापात्र तथा बायें हाथ में पाठ्यग्रन्थ के पत्रों को लेकर पढ़ाते हुए भिक्षाटन के लिए दलबल के साथ निकलते थे, तो काशी की सँकरी गलियों में पण्डितों का जमावड़ा हो जाता और उधर से आवागमन ही रुक जाता था। जो देखता, वह इस भव्य दृश्य को देखकर अचंभित हो जाता। ऐसे थे हमारे चरितनायक काशी नगरी के मूर्धन्य विद्वान् गौड़ स्वामीजी। गौड़ स्वामीजी की जीवनगाथा की खोज में जब सुदर्शन-सम्पादक पण्डित माधवप्रसाद मिश्र ने काशी के व्याकरण-धुरन्धर पण्डित विभवरामजी सारस्वत से जिज्ञासा की, तब उनकी दशा का वर्णन उन्होंने इन शब्दों में किया है—''पण्डितजी का गला भर आया। कुछ कहना चाहा, पर कह न सके। अन्त में हिचकियों को थमा, आँखों को पोंछ, जी को कड़ा कर कहा भी तो वाष्पावरुद्ध कण्ठ से इतना ही कि गुरुजी के गुण वर्णनातीत हैं। कौन कह सकता है? निःसन्देह जब वयोवृद्ध, तपोवृद्ध एवं विद्यावृद्ध पण्डित विभवराम नहीं कह सकते, तों और की क्या सामर्थ्य है? पण्डित विभवराम वे हैं—जो महाविद्वान् वार्धक्य के एकमात्र अवलम्बन पुत्ररत्न का स्वर्गवास होने पर भी विचलित नहीं हुए। परन्तु गुरुवियोग का गुरुतर दुःख उन्हें भी दुःख दे रहा था।''

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्हीं महामहिमाशाली परिव्राजकाचार्य और गौड़ स्वामीजी की जीवनगाथा यहाँ संक्षेप में दी जा रही है, विद्वानों के मनन तथा अनुसंधान के लिए।[१]

गौड़ स्वामीजी का जन्म पंजाब के पटियाला रियासत के 'शनोवर' नामक गाँव में एक मध्यमवर्गीय गौड़ ब्राह्मण के घर में हुआ था। इनके पिता का नाम था—जयगोपाल मिश्र। बालक का नाम था भगवानदत्त। बड़े होने पर पढ़ने में इनकी अभिरुचि रही। पिताजी से आरम्भिक शिक्षा ग्रहण की। माता-पिता ने इन्हें बड़े लाड़-प्यार से पाला-पोसा। १२ साल की उम्र में ही इनका विवाह कर दिया। पिताजी को बिना सूचित किए ही ये पढ़ने के लिए घर से निकल पड़े और होशियारपुर जिले के 'मदूद' गाँव के निवासी **पण्डित केशवराम सारस्वत** से तीन-चार वर्षों तक पढ़ते रहे। केशवरामजी ने काशी में विद्याभ्यास किया था और प्रसिद्ध वैयाकरण **भैरव मिश्र** (परिभाषेन्दुशेखर की भैरवी व्याख्या के कर्त्ता) से व्याकरण का अध्ययन किया था। यहाँ आकर काव्य, नाटक, पुराण आदि के समझने की योग्यता इन्होंने प्राप्त कर ली। 'विचारसागर' रचयिता **निश्चलदासजी** ने भी आरम्भ में इन्हीं से संस्कृत का अध्ययन किया था। भगवानदत्त अब प्रौढ़ शिक्षा के निमित्त काशी आए और यहाँ के वरिष्ठ पण्डितों से नानाशास्त्रों का अध्ययन अनेक वर्षों तक करते रहे। इस युग के प्रख्यात वैयाकरण **पं. काकाराम पण्डित** से व्याकरण, **सखाराम भट्ट** से वेदान्त तथा **पण्डित चन्द्रनारायण भट्टाचार्य** से न्याय का विधिवत् अध्ययन किया और इन शास्त्रों में अभिनन्दनीय प्रौढ़ि प्राप्त कर ली। बीस साल में इन विद्याओं के अध्ययन तथा मनन से शास्त्रीय तत्त्वचिन्तन में गम्भीर वैदुष्य प्राप्त कर घर लौटे। माता-पिता की प्रसन्नता की सीमा न रही और सबसे अधिक प्रसन्नता की लहर उस युवती के जीवन में उठने लगी जिससे इनका बालकपन में ही विवाह हुआ था।

पण्डित जयगोपाल मिश्र अपने पण्डित पुत्र को पटियाले के बड़े-बड़े सरदारों के पास ले गए, परन्तु उन लोगों ने उनका सत्कार नहीं किया। उनकी अवहेलना से भगवानदत्त का चित्त अत्यन्त विरक्त हो गया और वे संन्यास लेने के निमित्त घर से निकल पड़े अपनी पत्नी को एक विशेष कार्य के निमित्त जाने की सूचना देकर ही। साथ में तीन ग्रन्थों को भी ले लिया—**अद्वैतसिद्धि, गौड़ब्रह्मानन्दी** तथा **शास्त्रदीपिका**। इन ग्रन्थों के प्रति आग्रह होने से भगवानदत्तजी की दार्शनिक अभिरुचि तथा आध्यात्मिक सम्मान का सद्यः परिचय प्राप्त होता है। ये तीनों ही ग्रन्थ वेदान्त तथा मीमांसा के चूड़ान्त ग्रन्थ होने का गौरव रखते हैं। **अद्वैतसिद्धि** प्रख्यात अद्वैतवेदान्ती स्वामी मधुसूदन सरस्वती (१६ शती) की सर्वाधिक महनीय दार्शनिक कृति है। **गौड़ब्रह्मानन्दी** भी इसी प्रकार ब्रह्मानन्द सरस्वती (१७ शती) की

---

१. द्रष्टव्य *विशुद्धचरितावली*, पृ० ८-९, माधवमिश्र, निबन्ध माला, प्रथम भाग, प्रकाशक—इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, १९९२, वि. (१९३५ ई.)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

अद्वैततत्त्वप्रतिपादिका पाण्डित्यपूर्ण रचना है। **शास्त्रदीपिका** मीमांसकमूर्धन्य मैथिल विद्वान् पार्थसारथि मिश्र (१०५० ई.-११२० ई.) की प्रौढ़ तत्त्वबोधिनी रचना है जो भाट्टसम्प्रदाय के इतिहास में अद्वितीय मानी जाती है। भगवानदत्तजी ने अपनी धर्मपत्नी को आश्वासन देते हुए कहा कि मेरे माता-पिता की सेवा प्रेम तथा सत्कार के साथ करना और मैं अपने विशेष स्वार्थ की सिद्धि के लिए बाहर जा रहा हूँ। मेरे लिए किंचिन्मात्र भी चिन्तित न होना।

अपने गन्तव्य स्थान का वे निर्णय बहुत पहिले ही कर चुके थे। संन्यासाश्रम में दीक्षित होना उनका चरम लक्ष्य था। काशी की दशा वे देख ही चुके थे। दाक्षिणात्य संन्यासी गौड़ ब्राह्मणों को संन्यास दीक्षा देने से सर्वथा विरत रहते थे। जातीय विद्वेष ही इसका कारण माना जाता था। फलतः उन्होंने काशी की ओर न जाकर दक्षिण की ओर ही प्रस्थान किया। इस लालसा से कि उधर ही कहीं सुयोग्य वीतराग संन्यासी से संन्यास की दीक्षा ले लेंगे। उन्होंने नासिक जाने का निर्णय किया। गोदावरी के पावन तट पर विराजमान नासिक केवल धार्मिक तीर्थ ही न था, अपितु संस्कृत के विद्वानों एवं साधु-सन्तों के समागम से पवित्र होने वाला पावन स्थल भी था। यहीं रहकर वे छात्रों तथा सुबुद्ध विद्वानों को भी संस्कृत के शास्त्रों का अध्यापन करने लगे। उनकी कीर्ति पूरे मण्डल में व्याप्त हो गई और सुदूर स्थानों से भी जिज्ञासु छात्रों की टोली जुटने लगी। नासिक में ही एक सुबुद्ध विरक्त संन्यासी रहते थे। उनके सामने पण्डितजी ने अपनी अभिलाषा प्रकट की। संन्यासी महोदय ने इनकी विद्याबुद्धि तथा सात्त्विक आचार-विचार से प्रभावित होकर बिना 'ननु-नच' किए ही इन्हें संन्यास की दीक्षा दी। अब इनका नाम भगवानदत्त मिश्र से बदलकर स्वामी प्रदत्त **तारक ब्रह्मानन्द सरस्वती** हो गया। साधारण जनता इन्हें 'पण्डित स्वामी' के अभिधान से संबोधित करने लगी। 'पण्डित स्वामी' जी ने नासिक में बीस वर्षों तक अध्यापन किया। यहीं पर इनकी अध्यापन कला की कीर्ति से आकृष्ट होकर दूर-दूर से छात्र आने लगे। यहीं पर पहले-पहल पं. वंशीधर शुक्ल, जो आगे विशुद्धानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुए, स्वामीजी से मिले और तीन वर्षों तक निष्ठापूर्वक अध्ययन के द्वारा वेदों का गम्भीर वैदुष्य प्राप्त कर लिया। इस समय के शिष्यों में प्रमुख थे—धारा के **गणेश शास्त्री**, इन्दौर के **गणू शास्त्री**, **अच्युतानन्द**, **सच्चिदानन्द** तथा **नृसिंह स्वामी** जो स्वामीजी के काशी आगमन पर उनके साथ यहाँ आए और अपनी अवशिष्ट शिक्षा का समापन काशी में किया। यहाँ आने पर गौड़ स्वामी को एक और भी विद्वान् शिष्य मिला जिसके दर्शन-मात्र से चित्त को शान्ति मिलती थी, मन में वैराग्य उपजता था, हृदय भक्तिभाव से पूर्ण होता था और अन्तःकरण की दुर्वासना दूर होती थी। इस दयासागर शान्तमूर्ति शिष्य का नाम **स्वामी विश्वरूपानन्द** था। अहिल्याबाई की धर्मशाला में गौड़ स्वामी ने अपना डेरा डाला। राजाओं की ओर से एक विशिष्ट मठ के स्थापन का प्रस्ताव इन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ठुकरा दिया। धर्मशाला को स्वामीजी ने अपना आवास तथा पाठशाला दोनों ही बनाया। धर्मशाला की पहिली मंजिल विद्यार्थियों के वेदाध्ययन, व्याकरण, न्याय, वेदान्त आदि के प्रारम्भिक अध्ययन के कारण गूँजने लगी तथा दूसरी मंजिल में संन्यासियों की मण्डली विराजमान रहती थी तथा वेदान्त का अनुशीलन करती थी।

पण्डित वंशीधर शुक्ल ने इस पाठशाला का स्वयं निरीक्षण किया। तब देखा कि वेदान्त के आलोचक संन्यासियों के बीच गौड़ स्वामीजी सुशोभित हैं। वे वृद्ध हो गए थे, परन्तु उनके हृष्ट-पुष्ट और मांसल शरीर को देखकर यही प्रतीत होता था कि उनकी वय तीस-चालीस वर्ष से अधिक न होगी। उनकी उज्ज्वल दृष्टि, उन्नत ललाट, विशाल वक्षःस्थल, प्रलम्ब भुजाएँ और गम्भीर वाणी उनके पूर्वाचरित ब्रह्मचर्य की ज्ञापक थीं। उनके दोनों कान श्वेत रोमावली से आच्छादित थे जिन्हें देखने से यही बोध होता था मानो जरा देवी बलीयान् तपस्वी शिष्यों के भय से अब इन्हें अन्तिम गुप्त संवाद सुना रही हों। स्वामीजी की प्रशान्त गम्भीर आकृति मात्र के देखने से यही जान पड़ता था कि ये शान्ति के आधार, क्षमा तथा सन्तोष के आगार, सत्स्वभाव के आश्रय, धर्म के प्रवर्तक एवं सन्मार्ग के दर्शक हैं। ऐसे स्वामीजी के सामने नतमस्तक होकर वंशीधरजी ने साष्टांग प्रणाम किया। पूछने पर अपना परिचय दिया तथा संन्यास आश्रम में स्वामीजी से दीक्षा लेने के लिए अपने मनोगत भाव को प्रकट किया। गौड़ स्वामीजी ने कलिकाल में संन्यास धर्म के यथावत् परिपालन में साधकों की असमर्थता की बात कह सुनाई। वंशीधर ने अपने चरित्र की स्वच्छता तथा मन की विमलता का अपने शब्दों से परिचय दिया। बहुत दिनों तक कठिन परीक्षा लेने पर शिष्य की योग्यता से प्रभावित होकर स्वामीजी ने उन्हें संन्यास में दीक्षित किया और उनका नाम **विशुद्धानन्द** रख दिया।

स्वामी विश्वरूप और स्वामी **विशुद्धानन्द** के अतिरिक्त गौड़ स्वामीजी के दो और भी संन्यासी शिष्य थे—एक थे **विश्वेश्वरानन्द** तथा दूसरे **शङ्करानन्द**। विश्वेश्वरानन्द का पूर्व आश्रम का नाम कन्हैयालाल था। वे सारस्वत और गयावाल ब्राह्मण थे। उस समय सुवर्ण-सिद्धि के लिए वे नाना जड़ी-बूटियों को बटोर लाते, उनका रस निकालते तथा ताँबा पर रगड़ने का अभ्यास करते, परन्तु अभीप्सित परिणाम कभी सिद्ध नहीं हुआ। सुनते हैं—गौड़ स्वामीजी शिष्यों के साथ एक बार रामनगर गए, साथ में कन्हैयालाल भी थे। रास्ते में उगी एक जड़ी की ओर उन्होंने उखाड़ लेने का संकेत किया। कन्हैयालाल उसे उखाड़ लाए और स्वामीजी ने उन्हें पूछने पर बताया कि यही उनके आर्थिक लोभरूपी व्याधि की रामबाण दवा है। उन्होंने जड़ी का रस निकाला, ताँबे पर उसे मला। आश्चर्यचकित नेत्रों से उन्होंने देखा कि वह चमचमाता सोना हो गया—पक्का सोना। कन्हैयालाल का चित्त इस घटना से नितान्त बदल गया। अपनी सारी सम्पत्ति छात्रों में बाँटकर वे स्वामीजी के अनन्य भक्त बन गए। संन्यास-दीक्षा लेकर वे '**विश्वेश्वरानन्द**' नाम से प्रसिद्ध हुए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शङ्करानन्दजी भी स्वामीजी के अन्तिम शिष्य थे। ये उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर के निकट 'मीरना' गाँव के निवासी एक धनाढ्य गौड़ ब्राह्मण के पुत्र थे और शास्त्रों के अच्छे मर्मज्ञ थे। सब प्रकार की अनुकूलता इन्हें प्राप्त थी, परन्तु विरक्ति के कारण संन्यासी हुए। इन चारों शिष्यों की शास्त्राध्यापन में जितनी निष्ठा थी, उतनी ही निष्ठा अध्यात्मचिन्तन एवं मनन-निदिध्यासन में भी थी।

गौड़ स्वामीजी की पाठशाला शिष्यसम्पति से सर्वथा परिपूर्ण थी। दूर-दूर से विद्वान् शिष्य वेदान्त तथा मीमांसा के प्रौढ़ ग्रन्थों के अध्ययन के निमित्त यहाँ आते थे और शास्त्र की गहन ग्रन्थियों के सुलझाने में कृतकृत्य होकर लौटते थे। स्वामीजी अद्वैतसिद्धि जैसे दुरूह वेदान्तग्रन्थ के रहस्यों को बतलाते, शाबरभाष्य तथा श्लोक-वार्तिक जैसे प्रौढ़ मीमांसाग्रन्थों का अध्यापन कराते, परन्तु व्याकरण के प्रति भी उनका आग्रह न्यून न था। परिभाषेन्दुशेखर तथा शब्देन्दुशेखर की कठिनता को व्याख्या लिखकर दूर करने के शिष्यों के आग्रह को वे टाल नहीं सके और इसीलिए इन दोनों ग्रन्थों पर **चिदस्थिमाला** एवं **चित्कला** व्याख्याओं की उन्होंने रचना की। योगी वे स्वयं थे। फलतः पातञ्जल योग तथा व्यासभाष्य का भी पाठ वे पढ़ाया करते थे। पूर्वनिर्दिष्ट संन्यासी शिष्यों के अतिरिक्त गृहस्थ शिष्यों का भी पाठशाला में निरन्तर वेदाध्ययन चलता रहता था। ऐसे शिष्यों में से दो विद्वान् शिष्यों का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। एक थे वैयाकरण-धुरन्धर **पं० विभवराम सारस्वत** जो मूलतः पंजाब के निवासी थे और विद्यार्जन कर यहीं महाराजा-कश्मीर द्वारा स्थापित 'रणवीर संस्कृत पाठशाला' के प्राचार्य थे और दूसरे शिष्य बंगाल के ख्यातनाम वैदिक **पं० सत्यव्रत सामश्रमी** थे जिन्होंने वेद के, विशेषतः सामवेद के अध्ययन-अध्यापन, लेखन-संशोधन में अपना जीवन समर्पित कर दिया था। इनकी चर्चा अन्यत्र की गई है।

अन्तिम उपदेश

गौड़ स्वामीजी धीरे-धीरे वार्धक्य की ओर बढ़ने लगे। अध्यापन का कार्य अपने शिष्यों को देकर वे नितान्त निष्ठा से अध्यात्म-चिन्तन एवं मनन में दिन बिताने लगे। शरीर अशक्त होने लगा तब इन्होंने उचित समझा कि शिष्यों को बुलाकर जीवन का अन्तिम रहस्य उन्हें सिखा दिया जाए। विशेषतः संन्यासी शिष्यों को एक दिन बुलाकर उन्होंने संन्यास धर्म के गम्भीर रहस्य का बड़े ही मार्मिक शब्दों में उद्घाटन किया। एषणात्रय से विमुक्ति पाना संन्यासी का परम धर्म है। इन तीन एषणाओं में से प्रथम दो का—पुत्रैषणा तथा वित्तैषणा का—परित्याग सामान्यतः विशेष दुष्कर नहीं है, परन्तु लोकैषणा का परित्याग करना एक टेढ़ी खीर है। संसार में कीर्ति कमाना, लोगों के द्वारा पूजित, अभ्यर्हित एवं अभ्यर्थित होना, यश की कामना का हृदय से सर्वथा उन्मूलन कर देना—ये तीनों बातें लोकैषणा के अन्तर्गत आती हैं। इनका सम्पादन बड़ा ही कठिन व्यापार है। अतः संन्यासी को इधर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समुचित ध्यान देना प्रथम आवश्यकता है। केवल दण्डधारण संन्यासी का सद्यः-सूचक चिह्न नहीं है। शास्त्र का कथन है—

सर्वकामान् परित्यज्य अद्वैते परमे स्थितिः।
ज्ञानदण्डो धृतो येन एकदण्डी स उच्यते॥

संन्यासी का दण्ड काष्ठनिर्मित भले हो, परन्तु वह ज्ञानदण्ड का सूचक है। सब कामों का परित्याग कर परम अद्वैतभाव में स्थित रहना ही ज्ञानदण्ड है और इसीलिए संन्यासी को तितिक्षा, ज्ञान, शम, दम आदि को धारण करने वाला ही यथार्थतः होना चाहिए। कर्म के त्याग से कोई व्यक्ति संन्यासी नहीं होता, बल्कि कर्मफल के त्याग से ही वह संन्यासी होता है। गीता का यह विश्रुत वचन ध्यान देने योग्य है—

नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते॥

भगवद्गीता, १८।११

विशाल शास्त्र के तथ्यों का सारांश दो ही श्लोकों में आचार्यों ने दिया है। वे श्लोक इस प्रकार हैं—

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते।
स सिद्धिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥
कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेत् शक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति सः कार्यः सैव तस्यापि भेषजम्॥

निष्कर्ष यह है कि संग और काम तो सर्वथा त्याज्य नहीं हैं। अतएव संग सज्जनों का करना चाहिए और कामना मुक्ति की करनी चाहिए। शास्त्रों का आप लोगों ने बड़े प्रेम और परिश्रम से अध्ययन किया है। उनका लोगों में प्रचार करते रहना, यही मेरा आदेश है। आचार्य-परम्परा का निर्वाह सर्वथा करना। मेरा यह शरीर वृद्ध हो गया है। इसके चले जाने में अब अधिक विलम्ब नहीं है। मेरे लिए कोई शोक न करें। जो दिन अवशेष हैं उनमें अध्यात्मचिन्तन करते रहना चाहिए।

स्वामीजी रोगग्रस्त होने लगे। वैद्यों की बहुमूल्य औषधि उन्हें दी गई, परन्तु किसी प्रकार का लाभ न हुआ। अन्ततोगत्वा १९१६ विक्रमी संवत् (=१८५९ ई.) की पौष शुक्ल प्रतिपदा को स्वामीजी की व्याधि बढ़ी और धीरे-धीरे उनकी वाणी अवरुद्ध होने लगी। शिष्यों ने पूछा—किसी बात की अभिलाषा हो, तो कहा जाए। उन्होंने कहा—मेरी कोई इच्छा नहीं है। मैं पूर्णकाम हूँ। 'ओं तत् सत्' यही उनके पिछले शब्द थे। उन्होंने इसके पश्चात् 'ॐकार' के अतिरिक्त किसी शब्द का उच्चारण नहीं किया और स्वामीजी परब्रह्म में लीन हो गए।

पौषसुदी द्वितीया को यह दुःखद समाचार चारों ओर पहुँच गया कि आज दिनदहाड़े काशी की सम्पत्ति लुट गई, शान्ति का सागर शुष्क हो गया, सद्गुणों के मार्ग भस्म हो गए, विद्यार्थियों का कल्पतरु छिन्न हो गया, परित्याग की कथा पूरी हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गई, संन्यास की शोभा दूर गई, ब्रह्मविद्या लुप्त हो गई, मीमांसा सुप्त हो गई। हा हन्त!!

स्वामीजी मधुरभाषी थे। साधु-सन्तों का सर्वदा आदर करते थे। दादूपंथी साधु निश्चलदासजी शूद्र थे, परन्तु वेदान्त के गम्भीर ज्ञाता थे और हिन्दी में वेदान्त के उदात्त तत्त्वों का वर्णन करने वाले थे। स्वामीजी इनका सर्वदा आदर करते थे।

गौड़ स्वामी की गुणावली क्या कही जाए? संन्यासी होने के बाद कभी घर की ओर देखा तक नहीं। वे अद्वैतवेदान्त तथा मीमांसा के मूर्धन्य विद्वान् थे। उनकी धर्मपत्नी अपने संन्यासी पतिदेव के दर्शनों के लिए आईं थीं। एक ही बार लुक-छिपकर उनके सामने जाकर दर्शन किया। फिर काशी में ही रहती थीं और दूर से उनका दर्शन कर तृप्तिलाभ करती थीं। काशी में ही उनका निधन हो गया।

गौडस्वामीन्द्रपादानां चरित्रं चारु चर्चितम्।
सुधियां श्रेयसे शश्वदानन्दाय च जायताम्॥

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

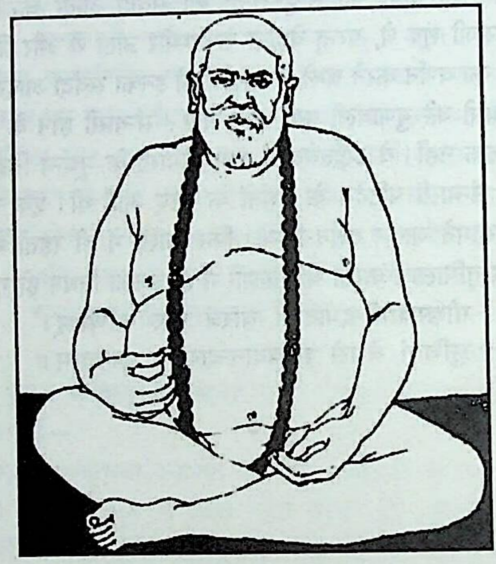

श्री तैलंग स्वामी

स्वामीजी उन्नीसवीं शताब्दी में काशी को विभूषित करने वाले विद्वान् संन्यासियों में अग्रगण्य माने जाते हैं। उनके जीवन का यथार्थवृत्त अंधकार के भीतर ही आच्छन्न है। केवल प्रधान घटनाओं का ही पता चलता है। दक्षिण देश के विजना प्रान्त में हुलिया नगर में भारद्वाजगोत्री मध्यम श्रेणी के नृसिंहधर नामक ब्राह्मण के पुत्ररूप में इनका जन्म हुआ था। इनकी दो पत्नियाँ बताई जाती हैं। पहली से त्रैलिंगधर का और दूसरी से श्रीधर का जन्म हुआ था। प्रथम पुत्र ही हमारे तैलंग स्वामी के नाम से आगे चलकर प्रख्यात हुए। पंजाब की पटियाला रियासत के बासगाँव के निवासी योगिराज भागीरथ स्वामी इनके गुरु थे जो दक्षिण-यात्रा में इनसे मिले थे तथा इन्हें दीक्षित कर उत्तर भारत के पुष्कर तीर्थ में अपने साथ लाए। गुरुजी का यहीं स्वर्गवास हो गया। अनन्तर तैलंग स्वामी समग्र भारत की तीर्थयात्रा पर निकले। दक्षिण-यात्रा रामेश्वरधाम तक की। उत्तर भारत में नेपाल, तिब्बत, मानसरोवर से लौटकर नर्मदातीर पर तपस्या करते रहे। वहाँ से प्रयाग होकर ये काशी आए और यहाँ भिन्न-भिन्न स्थानों पर रहते थे। अन्त में पंचगंगा घाट पर ही निवास करते थे और यहीं पर इनका निधन १९४४ वि.सं. (=१८८७ ईस्वी) में पौष मास की एकादशी को हुआ। इनके जन्म की तिथि का ठीक पता नहीं चलता। लोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्हें दीर्घ आयु वाला बतलाते थे, परन्तु यथार्थतः इनके जन्मसंवत् का हमें ज्ञान नहीं है। इन्होंने **महावाक्यरत्नावली** नामक दार्शनिक ग्रन्थ की रचना संस्कृत में की।

तैलंग स्वामी के जीवन की ये ही घटनाएँ प्रसिद्ध हैं जो कुछ विस्तार के साथ, विशेषतः विलक्षण चमत्कारों के संग, नीचे दी जा रही हैं। मृत्यु के समय लोग कहते हैं कि इनकी आयु ९० वर्ष की प्रतीत होती थी। इनके बाल्यकाल का नाम 'शिवराम' था। योग से इन्होंने अपना शरीर त्यागा।

बचपन से ही आप प्रखर बुद्धिवाले, शान्त और परदुःख से कातर होने वाले प्राणी थे। किशोरावस्था को धीरे-धीरे पार कर आपने युवावस्था में पदार्पण किया लेकिन यौवन सुलभ उत्साह एवं खुशी की जगह अन्य-मनस्क रहने लगे। इनकी इस अवस्था को देखकर इनके पिता नृसिंहधर को बहुत दुःख हुआ और पुत्र के मन में परिवर्तन करने के लिए वे उनके विवाह के बारे में सोचने लगे। लेकिन आपने विवाह नहीं किया और कहा कि इस क्षणभंगुर और नश्वर जीवन में जब कोई स्थिर नहीं है तब इसे मायाजाल में फँसाने का क्या प्रयोजन है?

पिता

पुत्र शिवराम को तैलंगधर भी पुकारा जाता था। माता विद्यावती प्रतिदिन भगवान् शिव की पूजा और स्तोत्रपाठ भक्ति से करती थीं। जब वे ध्यान में मग्न रहती थीं तो उनके मुखमंडल से ज्योति निकलती थी। ऐसी ध्यानमग्न स्थिति में सिवाय तैलंगधर के कोई उनके सम्मुख आने की हिम्मत नहीं करता था। विद्यावती प्रारम्भ से अपने पुत्र तैलंगधर के मानसिक भाव पर दृष्टि रखती थीं। उनके कार्य-कलापों को देखकर वह अनुभव करने लगी थीं कि वह अनित्य संसार के माया-मोह में फँसना नहीं चाहता। इस विचारमात्र से उनका दुःखी होना तो दूर रहा, वे और भी अधिक आनन्दित होती थीं। इसीलिए तैलंगधर की विवाह करने की अनिच्छा पर उन्होंने किसी प्रकार का दुःख अथवा आश्चर्य नहीं प्रकट किया।

माता

पिता की मृत्यु के शोक से विह्वल उनकी माता भगवत्-चिन्तन में लीन रहकर संसार के प्रति उदासीन रहने लगीं। तैलंगधर भी माता के साथ भगवत्-चिन्तन में रत हो गए। बारह वर्ष पश्चात् उनकी देवीतुल्य माँ भी शाश्वत धाम को सिधारीं। माता की मृत्यु के बाद संसार के प्रति उनकी उदासीनता का भाव बढ़ता ही गया। जिस स्थान पर माता का अन्तिम संस्कार हुआ था वह स्थान उन्हें अतिविचित्र एवं मनोरम लगने लगा और माता की चिताभस्म को मस्तक पर धारण कर वह श्मशान पर ही रहने लगे। कुटुम्बीजनों का प्रेम और संसार का प्रलोभन उन्हें आकर्षित करने में असमर्थ रहा और स्वामीजी ने कहा कि इस क्षणभंगुर शरीर को लेकर अनित्य संसार-सुख में डूबने से क्या होगा, जो नित्य और अनश्वर है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिसके सुख का आदि और अन्त नहीं, जिसको पाने पर और कुछ पाने की आकांक्षा नहीं रहती, अशान्ति जिससे दूर भाग जाती है, हमने उन्हीं की शरण ली। हमसे अब घर लौटने का अनुरोध मत करो।

तीर्थयात्रा

वहाँ २० वर्ष व्यतीत करने के बाद स्वामीजी तैलंगधर भगीरथ स्वामी के साथ पुष्कर तीर्थ गए और वहीं पर स्वामीजी से दीक्षा ग्रहण की। अब आप गणपति स्वामी के नाम से पुकारे जाने लगे। भगीरथ स्वामी के शरीर-त्याग करने के पश्चात् आप पुष्करावती (पुष्कर तीर्थ) से तीर्थयात्रा करने निकले। तीर्थयात्रा पूरी करने के बाद आप नेपाल गए और वहाँ पर निर्जन वन में योगाभ्यास करने लगे।

एक दिन नेपाल के राजा सेना के साथ मृगया के लिए वन में विचरण करने गए। उनके सेनापति ने एक शेर को लक्ष्य करके गोली चलाई। शेर प्राणभय से भयभीत होकर आर्तनाद करता हुआ वेग से भागने लगा और जहाँ पर स्वामीजी ध्यानमग्न बैठे थे वहीं पर बिल्ली की भाँति उनके पैरों पर लेट गया। स्वामीजी का ध्यान भंग हो गया। आँखें खोलते ही वे सब विषय समझ गए तथा उन्होंने शेर के शरीर पर हाथ फेरकर उसे आश्वस्त किया। शेर का पीछा करने वाले सैनिक उस दृश्य को देखकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए और जड़वत् उस दृश्य को देखने लगे और अतिभयभीत अवस्था में धीरे-धीरे स्वामीजी के पास आए और उन्हें प्रणाम किया। तब स्वामीजी मुस्कराकर बोले—आश्चर्य में होने की कोई बात नहीं। यदि तुम हिंसा की प्रवृत्ति छोड़ दो, तो कोई भी हिंसक पशु तुम्हारे प्रति हिंसा का भाव नहीं रखेगा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह देखो कि शेर कैसा शान्त होकर लेटा है। तुम अब भी उससे भयभीत हो रहे हो। इस संसार में सभी प्राणी समान हैं। किसी को किसी की हिंसा करना या उसे पीड़ित करना उचित नहीं है।

सैनिकों ने अविलम्ब सम्पूर्ण घटना विस्तारपूर्वक महाराज (नेपाल-नरेश) को बताई। राजा अपने पार्षदों और सैनिकों को साथ लेकर स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुए और बहुमूल्य रत्न भेंटकर स्वामीजी के चरणों को स्पर्श किया। स्वामीजी ने राजा तथा सैनिकों को देखा तथा मुस्कराए और राजा की दी हुई वस्तु को स्पर्श भी नहीं किया। विश्वम्भर के रत्न-भण्डार का अमूल्य रत्न उपभोग करके जो तृप्त हो उसके लिए इन नश्वर पार्थिव पदार्थों का क्या आकर्षण? स्वामीजी ने राजा को उचित सम्मानसहित नाना प्रकार के सदुपदेश देकर बिदा किया। स्वामीजी के इस प्रकार के कार्यकलाप का राज्य में प्रचार होने लगा जिससे उनके पारमार्थिक कार्य में विघ्न पड़ने लगा। इसलिए वे नेपाल राज्य को छोड़कर तिब्बत चले गए और वहाँ पर कुछ दिन रहने के बाद मानसरोवर चले आए। वहीं पर बहुत दिनों तक योग-साधन किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अलौकिक शक्ति

मानसरोवर के बाद स्वामीजी नर्मदा-तट पर मार्कण्डेय आश्रम में रहे। फिर प्रयाग धाम गए। एक दिन स्वामीजी घाट पर बैठे थे। उसी समय एक नाव यात्रियों से भरी हुई उस पार से आ रही थी। नाव बीच धार में पहुँची ही थी कि अकस्मात् आकाश में बादल छा गए और मूसलाधार वर्षा होने लगी। प्राणभय से प्रायः सभी व्यक्ति घाट छोड़कर जाने लगे लेकिन स्वामीजी घाट पर ही बैठे रहे। रामतारण भट्टाचार्य नामक एक ब्राह्मण, जो स्वामीजी को पहचानता था, उनको इस तरह से तूफान और वर्षा में बैठे देखकर आश्चर्य और कौतूहल से भर गया तथा स्वामीजी के पास आकर उनसे विनयपूर्वक अपने साथ चलने को कहा। स्वामीजी ने कहा कि बाबा, तुम मेरे लिए नाहक परेशान हो रहे हो। मुझे किसी भी तरह कष्ट का अनुभव नहीं हो रहा है। हम अभी यहाँ से नहीं जा सकते। जो नाव तुम यात्रियों से भरी देख रहे हो, डूब जाएगी। उसके यात्रियों को बचाना है। इतना कहने भर की देर थी कि वह नाव एकाएक डूब गई और साथ ही स्वामीजी भी अदृश्य हो गए। यह सब देखकर वह ब्राह्मण जड़वत् वहीं खड़ा हो गया और आगे के परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ ही क्षण के पश्चात् ब्राह्मण ने देखा कि नाव पानी पर तैरती आकर किनारे लग गई। यात्रियों के साथ स्वामीजी को भी साथ उतरते देखा तथा यात्री भी एक निर्वस्त्र व्यक्ति को अपने साथ देखकर बहुत चकित हुए। ब्राह्मण भी चकित होकर स्वामीजी के चरणों पर गिर पड़ा और कौतूहलवश जानने की इच्छा कर रहा था कि स्वामीजी उसके मनोभाव को समझकर स्वयं ही बोले कि इस घटना को देखकर इतने चकित क्यों हो रहे हो? आश्चर्य करने की बात नहीं है। मनुष्य इस संसार के अनित्य सुख मात्र में डूबा रहता है, अपनी क्षमता की ओर ध्यान नहीं देता। भगवान् इस शरीर का सृजन कर स्वयं इसमें विराजते हैं। प्रत्येक मनुष्य में ईश्वरीय शक्ति विद्यमान है। इस अनित्य संसार के सुख के लिए मनुष्य जितना परिश्रम करता है, यदि उस परिश्रम के एक अंश से भी प्रयत्न करे तो भगवान् को प्राप्त कर सकता है और संसार में उसके लिए कोई भी वस्तु असाध्य नहीं रहेगी। तुम आश्चर्य मत करो और व्यर्थ में ही वर्षा में भीगकर कष्ट मत उठाओ, घर जाओ। ऐसा कहकर स्वामीजी वहाँ से अदृश्य हो गए।

अनन्तर स्वामीजी माघ के महीने में प्रयागघाट को छोड़कर काशी आए और अस्सीघाट पर तुलसीदासजी के बगीचे में रहने लगे। वहाँ रहते समय कभी-कभी लोलार्ककुण्ड पर जाया करते थे। वहाँ पर उन्होंने कुष्ठ रोग से ग्रसित ब्रह्मसिंह नामक एक बधिर को अपने स्पर्शमात्र से ही ठीक किया।

बाद में बाबा वेदव्यासजी के आश्रम में रहने लगे। उन्होंने एक बंगाली ब्राह्मण को, जो यक्ष्मा के रोग से पीड़ित होकर अपने जीवन से हताश हो चुका था, स्वस्थ किया। वह बाबा के दर्शन एवं मिट्टी (गंगा नदी की) के देने मात्र से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्ण स्वस्थ हो गया। कुछ दिनों बाद बाबा वेदव्यास आश्रम छोड़कर हनुमानघाट पर रहने लगे।

स्वामीजी के इस तरह के कार्यों का अत्यधिक प्रचार होने से उन्हें लोग अपने मनोरथों के लिए परेशान करने लगे। इसलिए स्वामीजी ने मौन धारण कर लिया। कोई भी जो कुछ देता था, आप उसे ग्रहण कर लेते थे, किसी भी प्रकार का विचार नहीं करते थे। काशीवासी और यात्रीगण आपका दर्शन करके अपने को धन्य तथा जीवन को कृतार्थ समझते थे। उसी समय से काशीवासी तेलंग देश का होने के कारण उनका गुरुदत्त या पितृदत्त नाम **गणपति स्वामी** और **तैलंगधर** न जानने के कारण, उन्हें **तैलंग स्वामी** के नाम से पुकारने लगे।

खाने-पीने में कुछ विचार न करने के कारण एक दिन किसी दुष्ट व्यक्ति ने उन्हें चूना घोलकर पिला दिया और स्वामीजी ने निर्विकार भाव से उसे पीकर उसके सामने ही लघुशंका करके पानी और चूना अलग-अलग निकाल दिया। एक दिन एक धनीमानी व्यक्ति ने २० भर सोने के दो कंगन स्वामीजी के हाथों में पहना दिए। पुनः कुछ दुष्ट व्यक्तियों ने काफी मात्रा में मद्यपान कराकर उनको बेहोश कर उनका कंगन लेना चाहा। मद्यपान से न तो स्वामीजी बेहोश हुए और न क्रुद्ध ही, बल्कि उन व्यक्तियों का अभिप्राय समझकर उसी समय दोनों कंगन उन व्यक्तियों को दे दिए।

तैलंग स्वामी निर्वस्त्र रहते थे। इसलिए एक दिन कई पुलिस कर्मचारी उनको पकड़कर जिले के अधिकारी के पास ले गए। अधिकारी ने उन्हें वस्त्र पहनने का आदेश दिया। उसने उन्हें झूठा संन्यासी समझकर जेल में बन्द कर दिया। दूसरे दिन सुबह लोग देखते हैं कि जेल की कोठरी पानी से भरी है और स्वामीजी मुस्कराते हुए बाहर घूम रहे हैं। अधिकारी ने पूछा, तुम कैसे बाहर निकल आए और कोठरी में इतना पानी कैसे भरा पड़ा है? स्वामीजी ने कहा कि रात्रि को जोर से लघुशंका लगी हुई थी और कमरे में ताला बन्द था। इसीलिए लघुशंका कर दिया और कमरे से बाहर निकल आया। कोई किसी का जीवन ताला में बन्द करके नहीं रख सकता है। अगर ऐसा होता तो जेल में बन्द कर देने से मृत्युकाल में मनुष्य मरता नहीं। इस आश्चर्यजनक घटना को देखकर अधिकारी अवाक् रह गए तथा उन्हें यथेच्छ घूमने की अनुमति दे दी।

स्वामीजी कुछ दिनों तक दशाश्वमेध घाट पर रहते थे और बाद में पंचगंगा घाट पर स्थित बिन्दुमाधव के मन्दिर के निकट एक दक्षिणी ब्राह्मण मंगल भट्ट के मकान में आकर रहने लगे। उस समय वे किसी से बात नहीं करते थे।

एक बार उज्जैन के राजा काशी आए। अपने बन्धु-बान्धवों के साथ नौका से मर्णिकर्णिका घाट आ रहे थे। कुछ दूर आने के बाद उन्होंने तैलंग स्वामी को जल के ऊपर बैठे हुए देखा और आश्चर्यचकित हो उठे। किसी से स्वामीजी का परिचय पूछा तो एक भक्त ने बताया कि आप प्रसिद्ध योगी हैं, जल, थल और वायु पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आपका समान अधिकार है। इस बात को सुनकर महाराज कौतूहलवश बोले, जो मनुष्य अपने शरीर स्थित शत्रुओं का दमन कर चुका है उसका बाहरी शत्रु क्या बिगाड़ सकता है? और उनको नौका पर लाने की इच्छा व्यक्त की। महाराज का अभिप्राय व्यक्त करने के पूर्व ही स्वामीजी नौका पर चढ़ गए। महाराज इससे बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्हें ऐसा देखकर विस्मय हुआ। महाराज के हाथ में अंग्रेज सरकार के द्वारा उनकी किसी वीरंता के कार्य के उपलक्ष्य में दी हुई एक तलवार थी। स्वामीजी उस तलवार को देखने के इच्छुक हुए। महाराज भी उस तलवार को स्वामीजी के हाथों में देकर अपने को बहुत सौभाग्यवान् समझने लगे। स्वामीजी ने उस तलवार को अच्छी तरह से देखकर गंगा में फेंक दिया। महाराज अत्यन्त क्रोधित होकर कहने लगे, यह कैसा कपटी साधु है जो दूसरों के द्रव्य को लेकर उसका गुण न जानकर नष्ट कर दे। इनकी साधुता पर दुःख है। न जाने इनके किस गुण को देखकर आप लोग इनकी प्रशंसा कर रहे थे। महाराज का ऐसा वचन सुनकर लोग मर्माहत हो उठे। स्वामीजी का एक भक्त विनीत भाव से महाराज से बोला कि आप क्रोध न करें। हम आपकी तलवार निकलवा देते हैं।

इस तरह बात करते-करते नाव घाट के पास आ गई और स्वामीजी ने नौका पर से उतरना चाहा। लेकिन महाराज ने उन्हें उतरने नहीं दिया और उन्हें विशेष दण्ड देने का संकल्प किया। महाराज क्रोध और क्षोभ से पीड़ित होकर जल रहे थे। ऐसा समझकर स्वामीजी ने गंगा में हाथ डाला और तुरन्त वैसी ही दो तलवारें उठाकर महाराज के हाथ में दे दीं और बोले कि जो तुम्हारी हो उसे ले लो। दोनों तलवारें बिलकुल एक-सी होने के कारण महाराज उसे पहचान नहीं सके। इस पर बाबा ने कहा कि जब तुम अपनी वस्तु नहीं पहचान सकते तो उस पर तुम्हारा स्वामित्व कैसा या वह तुम्हारी कैसे? यदि यह तुम्हारी होती तो तुम अवश्य पहचानते। जो वस्तु तुम्हारी नहीं उसके लिए इतना क्रोध क्यों? तुम्हारे जैसा मूर्ख दुनिया में कोई नहीं। एक तलवार स्वामीजी ने उन्हें देकर, दूसरी पानी में फेंक दी।

तैलंग स्वामी कभी असहनीय शीत के समय पानी में अवस्थान करते, कभी प्रचण्ड ग्रीष्म के उत्ताप से जब कोई बाहर जाने का साहस नहीं करता, वे अनायास ही उत्तप्त बालुका पर आराम से शयन करते। कभी-कभी तीन-चार घण्टे पानी में डूबे रहते तो कभी स्थिर भाव से पानी के ऊपर बहते हुए बहाव के विपरीत जाते।

उपदेश

जगत् में जो जैसा अधिकारी है उसको वैसी प्रणाली से तत्त्वज्ञान की शिक्षा देने के लिए स्वामीजी ने स्वयं देव-देवियों की मूर्ति की प्रतिष्ठा की है। मन की धारणा-शक्ति के अनुसार जीव ईश्वर की सत्ता का अनुभव करता है। स्वामीजी हिन्दू ब्राह्मण थे और हिन्दू रीति से ही पवित्र जीवन गठन कर उन्होंने हिन्दू धर्म का चरम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्कर्ष दिखलाया। उन्होंने दूसरे धर्म का दोष-गुण नहीं विचारा तथा उन्हें द्वेष की दृष्टि से न देखकर शान्त भाव से हिन्दू धर्म की सेवा की। असीम शक्ति के रहने पर भी वह सब विषयों से उदासीन रहते थे। मान, अपमान, यश और अपयश सभी उनके लिए समान थे। इसलिए उनके अन्दर हिंसा-द्वेष का कोई भाव न था। सभी के उपास्य देवता और परब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है। सहजज्ञान और सन्तुष्ट चित्त से जो भी जिसकी उपासना करे, वही दिव्य ज्ञान-लाभ प्राप्त करने में समर्थ होता है।

किसी के धर्म के प्रति अश्रद्धा करना या उसका निरादर करना कदापि उचित नहीं है। वे सम्पूर्ण जगत् के अणु एवं परमाणु को ब्रह्ममय समझते थे।

स्वामीजी कहते थे कि मन के स्थूलभाव से ईश्वर का स्थूलभाव, मन के सूक्ष्मभाव से ईश्वर का सूक्ष्मभाव और मन के विलय से ईश्वर का स्वरूप उपलब्ध होता है। मन के रहते हुए कोई भी निराकार या निर्गुण पदार्थ की धारणा नहीं कर सकता है। भावविकास के साथ भावमय भगवान् की मूर्ति का विकास होता है। भाव की घनीभूत अवस्था से मूर्ति प्रकाशित होती है। जो व्यक्ति मन की विशुद्धता और सरल भाव के अधिकारी हैं, वे ही प्रेम और भक्ति के आवेग से ईश्वर का दर्शन पाकर कृतार्थ हो सकते हैं या होते हैं।

'महावाक्यरत्नावली' में आपका अपरिमेय शास्त्रज्ञान और भगवद्भक्ति स्थान-स्थान पर प्रतिबिम्बित हो रही है। इस वेदान्त ग्रन्थ के विषय इस प्रकार हैं—बन्धन-मोक्ष वाक्य, विद्वन्निन्दा वाक्य, उपदेश वाक्य, जीव-ब्रह्मैक्य वाक्य, मनन वाक्य, जीवन्मुक्त वाक्य, स्वानुभूति वाक्य, समाधि वाक्य, अष्ट स्वरूप वाक्य, पुल्लिंग स्वरूप वाक्य, स्त्रीलिंग स्वरूप वाक्य, नपुंसकलिंग स्वरूप वाक्य, आत्मस्वरूप वाक्य, ब्रह्मस्वरूप वाक्य, अवशिष्ट वाक्य, फलवाक्य और विदेह वाक्य।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

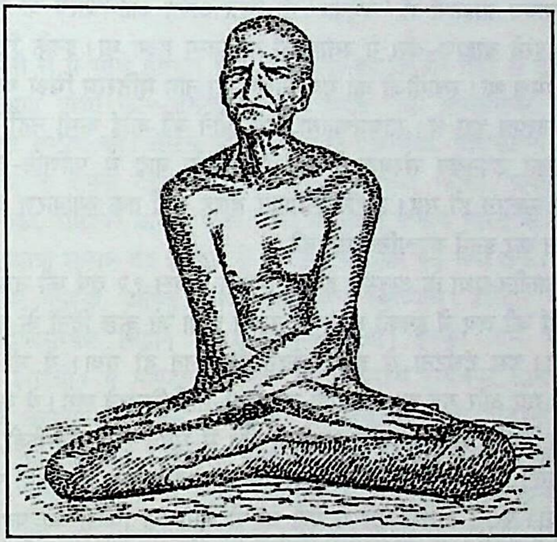

स्वामी भास्करानन्द सरस्वती

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में काशी को सुशोभित करने वाले विद्वान् संन्यासियों में स्वामी भास्करानन्द सरस्वती का स्थान निःसंदेह महत्त्वपूर्ण है। उस युग में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। भारतवर्ष के अनेक राजा-महाराजा इनके दर्शन के लिए आते थे। इतना ही नहीं, विदेशी संस्कृत के विद्वान् जब काशी पधारते थे तब वे स्वामीजी के दर्शनों के लिए अवश्य ही आते थे। जर्मनी के सुप्रसिद्ध संस्कृतज्ञ तथा दार्शनिक विद्वान् पाल डायसन सन् १८९४ ई. के आस-पास काशी आए थे और उन्होंने स्वामी भास्करानन्द सरस्वती का दर्शन किया था। इस घटना का उल्लेख उन्होंने अपने भारत-यात्रा-विवरण[१] में किया है। इनकी गणना उस युग के दर्शनीय विद्वानों में की जाती थी। कदाचित् ही कोई विशिष्ट व्यक्ति हो जो इनके दर्शन के बिना काशी से लौट जाए। साधना तथा ज्ञानविज्ञान दोनों दृष्टियों से महनीय होने के कारण स्वामीजी परमपूज्य माने जाते थे।

---

१. यह यात्रा-विवरण 'माई ट्रैवेल्स इन इण्डिया' नाम से अंग्रेजी में मद्रास की नटेसन एण्ड कम्पनी ने प्रकाशित किया है। छोटा होने पर भी यह उस युग की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करता है। रोचक एवं उपादेय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामीजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं. १८९० (१८३३ ई.) आश्विन शुक्ल सप्तमी तिथि को कानपुर मण्डल के 'मैथेलाल' नामक गाँव में हुआ था। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में 'मधुकर' के मिश्र अपने आभिजात्य के लिए नितान्त प्रसिद्ध हैं। इसी ब्राह्मण-वंश में स्वामीजी का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम मिश्रीलाल मिश्र था। स्वामीजी का गृहस्थाश्रम का नाम **मतिराम मिश्र** था। ये मध्यम परिवार में उत्पन्न हुए थे। साधारणतया खाने-पीने की कोई कमी नहीं थी। आठवें वर्ष में इनका उपनयन संस्कार हुआ और इसके बाद ये पाणिनि-व्याकरण के अध्ययन में संलग्न हो गए। इन्होंने लगातार बारह वर्षों तक व्याकरण आदि शास्त्रों का अध्ययन कर इनमें व्युत्पत्ति प्राप्त की।

तत्कालीन प्रथा के अनुसार इनका विवाह केवल १२ वर्ष की उम्र में हो गया था। १८ वर्ष की वय में इनको एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो कुछ दिनों के बाद परलोक सिधार गया। इस दुर्घटना से इनका चित्त विचलित हो गया। ये घर से नितान्त उदासीन हो गए और गृह का परित्याग कर जहाँ-तहाँ विचरने लगे। ये कभी हरिद्वार, कभी प्रयाग, कभी अयोध्या और कभी उज्जैन में घूमते रहे। स्वामीजी दो बार घर छोड़कर भागे। परन्तु घरवाले इन्हें पकड़ कर घर लौटा लाए और वहीं पर रहने का आग्रह किया। परन्तु तीसरी बार ये ऐसे घर से भागे कि किसी को पता नहीं चला और सुदूर उज्जैन में जाकर रहने लगे। वहीं पर अनेक वर्षों तक रहकर इन्होंने वेद, शास्त्र, दर्शन आदि का अध्ययन किया। वहाँ से लौटकर ये फतेहपुर जिला में स्थित असनी नामक नगर में आए जो हिन्दी के अनेक कवियों की जन्मभूमि रही है। यहीं पर इन्होंने **स्वामी पूर्णानन्दजी** से २७ वर्ष की वय में संन्यास-दीक्षा ली और तब से ये **भास्करानन्द सरस्वती** के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

तपश्चर्या

संन्यास ग्रहण करने के अनन्तर स्वामीजी भारत के तीर्थाटन के लिए निकल पड़े। वे पैदल ही यात्रा करते थे। किसी को अपने संग में नहीं लेते थे। उज्जैन से चलकर ये नर्मदा के किनारे कुछ दिनों तक वास कर अपनी तपस्या में लीन रहे। कुछ दिनों तक इन्होंने शृंगिरामपुर नामक स्थान में वास किया। वहीं पर इन्हें इनके एकादशवर्षीय इकलौते पुत्र के निधन का समाचार मिला, परन्तु ये तनिक भी विचलित नहीं हुए और अपनी यात्रा के क्रम को शिथिल नहीं होने दिया। वहाँ से घूमते ये काशी आए, परन्तु कुछ ही दिनों तक निवास कर ये फतेहपुर जिले के प्रख्यात नगर असनी चले गए। यहीं पर इन्होंने दण्ड का त्याग कर दिया। वहाँ से कानपुर आए और भक्तों के विशेष आग्रह पर अपने तीन भक्तजनों—रामचरण, गयादत्त एवं रामनारायण द्विवेदी—के संग में अपने जन्मस्थान मैथेलाल गए। पिता, माता तथा धर्मपत्नी से भेंट की, परन्तु आसक्तिहीन स्वामीजी की वीतरागिता पर इस भेंट का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने अपने शरीर के सकल आवरणों को सर्वदा के लिए परित्याग कर दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

केवल कौपीन (लँगोटी) ही उनका एकमात्र संगी रह गया। अब वृक्षों के नीचे निवास, गंगा के पवित्र तीर पर आवास, पञ्चाग्नि-साधन एवं शीत ऋतु में जलशयन आदि कठोर तपस्या की साधना ने उनके चित्त को नितान्त आकृष्ट कर लिया।

तीर्थाटन

असनी से ये सीधे हरिद्वार पैदल ही यात्रा कर पहुँचे। वहाँ से उत्तराखण्ड के समस्त प्रख्यात तीर्थों की—गंगोत्री, बदरी, केदार तथा मानसरोवर की—इन्होंने सविधि यात्रा सम्पन्न की। लौटने पर ज्वालामुखी (कांगड़ा, नैमिषारण्य मिसरिख—जहाँ दधीचि ने अपना देहत्याग किया था), अयोध्या, काशी, प्रयाग, वृन्दावन, पुष्कर, द्वारिका, रामेश्वर अर्थात् उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत के समस्त तीर्थों की मनोरम यात्रा सम्पन्न कर हरिद्वार में जम गए लगातार १३ वर्षों तक। उद्देश्य था न केवल कठोर तपस्या, अपितु शास्त्रों का गंभीर स्वाध्याय। हरिद्वार में उन्हें एक नितान्त वैदुष्यसम्पन्न विद्वान् से साक्षात्कार हुआ। इनका नाम था—**पण्डित अनन्तराम शास्त्री**। ये पण्डितजी पटना के समीपस्थ राघवपुर ग्राम के निवासी शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। इनसे स्वामीजी ने अद्वैतवेदान्त के चूड़ान्त ग्रन्थों तथा प्रस्थानत्रयी का विधिवत् अनुशीलन एवं आलोड़न किया। गुरु की अगाधभक्ति से प्रेरित होकर भास्करानन्दजी ने उनकी दया का स्मरण अपने प्रत्येक ग्रन्थ के अन्त में किया है। अपने गुरु अनन्तरामजी का ये बड़ा गुण मानते थे, क्योंकि उनकी ही कृपा से भास्करानन्दजी को शास्त्रों में अनुपम विद्वत्ता प्राप्त हुई थी। अपने ग्रन्थों के अन्त में उन्होंने यह श्लोकार्ध सर्वत्र निविष्ट किया है—

दययाऽनन्तरामस्य मृदुर्ग्रन्थोऽयमुम्भितः।

(अनन्तराम की दया से यह मधुर ग्रन्थ की रचना की गई है)। इससे उनकी विशिष्ट गुरुभक्ति का परिचय हमें प्राप्त होता है।

अपरिग्रही स्वामीजी कोई भी वस्तु अपने पास नहीं रखते थे। वस्त्र के नाम पर ये केवल एक लँगोटी धारण करते थे, परन्तु बाद में इन्होंने उसका भी परित्याग कर दिया। हरिद्वार से काशी आने के बाद ये पहले मडुआडीह के आस-पास किसी बगीचे में रहा करते थे। परन्तु अमेठी (सुलतानपुर) के राजा लालमाधव सिंह ने, जिन्होंने इनसे दीक्षा ली थी, इनसे दुर्गाकुण्ड पर स्थित अपने उद्यान 'आनन्द बाग' में चलने का आग्रह किया। स्वामीजी उनकी प्रार्थना स्वीकार कर आनन्द बाग चले आए और आजीवन इस बाग में साधना और तपस्या करते रहे। इस स्थान को छोड़कर कहीं बाहर गए ही नहीं।

काशी का यह **आनन्द बाग** एक ऐतिहासिक स्थान है जिसका निर्माण पूना के अन्तिम पेशवा अमृत राव ने किया था। इस बाग को सिपाही विद्रोह के अवसर पर नीलाम किया गया। तब अमेठी के राजा ने खरीद लिया था। स्वामी विशुद्धानन्दजी के प्रसंग में ऊपर कहा ही गया है कि इसी आनन्द बाग में स्वामी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दयानन्द का काशी के पण्डितों से सन् १८६९ ई. में शास्त्रार्थ हुआ था जिसमें दयानन्दजी को पराजित होना पड़ा था। यह बाग दुर्गा मन्दिर के पूरब में विद्यमान है। स्वामीजी इसी बाग के दक्षिण भाग में एक भूगर्भगृह में तपस्या करते थे तथा यहीं पर उन्होंने कैवल्यधाम प्राप्त किया। आज उसी स्थान पर भास्करानन्दजी की संगमरमर की भव्य समाधि बनी हुई है।

१९२५ वि.सं. (=१८६८ ई.) में स्वामीजी काशी में आए। २७ वर्षों तक लगातार क्षेत्र-संन्यास लेकर यहीं निवास किया सं. १९५२ (=१८९५ ई.) तक। भक्त गयाप्रसाद के विशेष आग्रह पर इसके बाद एक बार वे अपने जन्मस्थान पर गए थे। प्रसंग यह था कि कानपुर के इस धनसम्पन्न भक्त ने उस गाँव में एक पोखरा खुदवाया था तथा स्वामीजी की मूर्ति से संवलित एक मन्दिर भी बनवाया था। इन दोनों के उद्घाटन का प्रासंगिक अवसर था। भक्त शिष्य के गंभीर आग्रह को दयालु गुरु टाल नहीं सके और इच्छा न होने पर भी स्वामीजी वहाँ गए और कुछ दिनों में ही लौट आए। यह उनकी अन्तिम यात्रा थी।

अब उनके देहत्याग का अवसर आ गया था। इसकी पूर्व सूचना स्वामीजी ने अपनी अन्तर्दृष्टि से मानो देख ली थी। इन्होंने अपने एक नैष्ठिक भक्त बाबू पद्मदेवनारायण पाण्डेय (जो बलिया जिले के बैरिया ग्राम के निवासी तथा लेखक के जन्मस्थान के समीपस्थ उदार व्यक्ति थे) के द्वारा अपने अन्तिम विचारों को प्रकाशित कराया था। स्वामीजी की इच्छा थी कि जैसे वे जीवनभर अपरिग्रही रहे, उसी प्रकार उनका अन्तिम समय भी अपरिग्रही होना चाहिए। न उनके नाम पर कोई संस्थान खोला जाए और न कोई मठ ही स्थापित किया जाए। न उनकी कोई गद्दी चलनी चाहिए और न उनके नाम पर कोई विद्यालय ही प्रतिष्ठित होवे।

संवत् १९५६ की आषाढ़ शुक्ल प्रतिपद् की वह मध्यरात्रि वेला थी। १८९९ ई. की ९ जुलाई की अर्धरात्रि १२ बजे परिव्राजकाचार्य महामान्य भास्करानन्द सरस्वती का महानिर्वाण सम्पन्न हो गया। ''स्वामीजी ने पद्मासन पर, अपने नित्य के योगिप्रिय आसन पर, बैठे-बैठे अपने नश्वर शरीर का परित्याग कर दिया—मुख सदा की भाँति प्रसन्न, नेत्रों से सर्वदा की भाँति ज्ञान-सुधा की वृष्टि'' (हिन्दी बंगवासी, जुलाई १८९९)। अमृत बाजार पत्रिका ने (१८९९ ई., २६ जुलाई) इसकी सूचना देते हुए स्वामीजी के भव्य सात्त्विक गुणों का संकेत बड़ी ही सुन्दर भाषा में, प्रौढ़ शब्दों में दिया है।[१]

इस अंग्रेजी वाक्य का तात्पर्य है—''वह व्यक्ति (स्वामीजी) तो चला गया, परन्तु वह अपने पीछे छोड़ गया है अपने ही उदात्त व्यक्तित्व को और अपने निरंजन

१. The man is gone but he has left behind him his own noble self, his stainless and immaculate life, his holy and saintly existence the pattern of purity—the paradigm of human perfection.—A.B. Patrika, July 26, 1899.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवं पावनतम जीवन को, अपनी तपःपूत एवं पवित्रतम सत्ता को, पवित्रता के आदर्श को और मानवीय पूर्णताओं के अनुपम उदाहरण को।'' स्वामी भास्करानन्दजी के आध्यात्मिक जीवन की यह एक निष्कलंक शाब्दिक झाँकी है।

त्याग की साधना

स्वामी भास्करानन्द त्याग के जीवन्त रूप थे। इनमें त्याग इतना अधिक था, अपरिग्रह की वृत्ति इतनी जागरूक थी कि अपने भक्त राजा और महाराजाओं के द्वारा सादर तथा साग्रह निमंत्रित किए जाने पर भी ये उनकी राजधानी में न तो कभी गए और न इन्होंने उनके द्वारा प्रदत्त किसी प्रकार की आर्थिक सहायता ही स्वीकार की। काशी आने के पहले ये अपने अनावृत (नंगे) शरीर पर केवल एक लँगोटी लगाए रहते थे परन्तु भूतभावन की इस भव्य नगरी में आने पर तो इन्होंने उस नगण्य लँगोटी का भी परित्याग कर दिया और पूरे दिगम्बर वेश में अपने आराध्यदेव शंकर की प्रतिमूर्ति बनकर बैठ गए। ये अनिकेतन तो नहीं थे, परन्तु अनावरण अवश्य थे। इनके शरीर पर झीनी चादर डाल दी जाती थी जब कोई विशिष्ट व्यक्ति—विशेष कर विदेशी—इनके दर्शन के लिए आता था। इनका जीवन तपःपूत था। इनके जीवन में एक ही धारा प्रवाहित होती थी और वह थी अखण्ड तपस्या की। ये आनन्द बाग (दुर्गाकुण्ड) में एक भूगर्भ में साधना और तपस्या किया करते थे। आनन्द बाग का वह स्थान आज भी सुरक्षित है जहाँ ये समाधि लगा कर बैठा करते थे। इन्होंने क्षेत्र-संन्यास ले लिया था। अतः काशी से बाहर जाने की कथा तो दूर रही, ये अपनी साधना-स्थली से भी कभी बाहर नहीं जाते थे।

आकर्षण के केन्द्र

ऐसी दिव्य विभूति के प्रति सर्वसाधारण का आकर्षित होना स्वाभाविक था। धनी-मानी, राजा-महाराजा इनके अलौकिक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर इनके उपदेश सुनने के लिए आया करते थे। अमेठी के **राजा लालमाधव सिंह** इनके एकनिष्ठ भक्त और शिष्य थे। उन्होंने ही भास्करानन्दजी को अपने आनन्द बाग में तपस्या के लिए स्थान दिया था। बड़हर रियासत की **रानी वेदशरण कुँअरि** स्वामीजी की अनन्य सेविका तथा शिष्या थीं। अयोध्या के राजा ददुआजी ने स्वामीजी को अपनी राजधानी में ले जाने के लिए बड़ी प्रार्थना की, बड़ा ही आग्रह किया परन्तु स्वामीजी ने इसे स्वीकार नहीं किया। नागोद (मध्यप्रदेश) के राजा **यादवेन्द्र सिंह** स्वामीजी के उतने ही बड़े भक्त थे, जितने बड़े श्रद्धालु थे **काशी नरेश महाराजा प्रभुनारायण सिंह**। चाँदपुर के राजा स्वामीजी के परम भक्त थे और वे उनकी प्रतिमा बनाकर घर पर ही इनकी पूजा करते थे।

चमत्कार

भास्करानन्दजी सिद्ध महात्मा थे। इनकी वाणी सिद्ध थी। अतः ये अपने पवित्र मुँह से जो भी आशीर्वाद देते थे उनका प्रत्यक्षफल दिखाई पड़ता था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनके अनेक चमत्कारों की कथा प्रसिद्ध है जिनमें से दो-तीन का ही उल्लेख पर्याप्त होगा।

(१) एक बार काशी के ब्रह्मनाल मुहल्ले के निवासी पं० सीतलप्रसादजी का नौजवान पुत्र मकान की ऊपरी छत से गिर गया था जिसके बचने की कोई आशा नहीं थी। वे घबरा कर स्वामीजी के पास पहुँचे और उनसे अपना दुखड़ा सुनाते हुए कहा कि पुत्र के बचने की कोई आशा नहीं है। स्वामीजी ने उसे सांत्वना देते हुए भगवान् का चरणामृत उसे देकर पुत्र को पिला देने के लिए कहा। सीतलप्रसादजी ने यह चरणामृत पुत्र को पिला दिया जिसके फलस्वरूप उनका एकलौता मरणासन्न पुत्र जीवित हो गया। इस घटना का उल्लेख श्रीशिवकुमार शास्त्री ने 'यतीन्द्रजीवनचरितम्' में किया है।

(२) एक बार प्रयाग की प्रसिद्ध वेश्या जानकीबाई—जो छप्पन छुरी के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध थी—स्वामीजी के पास आई और कण्ठ की रूक्षता की बात कह सुनाई। स्वामीजी ने उसे अपने समीप भक्ति-संगीत सुनाने का आदेश दिया और उसे आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा गला ठीक हो जाएगा। अकस्मात् चोर एक दिन उसके घर में घुस आए और उसके गले पर चाकू से प्रहार किया। संयोगवश इसी प्रहार के फलस्वरूप उसका कण्ठावरोध नष्ट हो गया और वह मधुर गीत गाने लगी। फिर तो बाद में इसने बड़ा धन तथा यश कमाया।

(३) काशी के तत्कालीन अंग्रेज कलक्टर की पत्नी लन्दन में बीमार पड़ी हुई थी। उसका कुशल-समाचार न मिलने के कारण कलक्टर साहब बहुत परेशान थे। उन्होंने स्वामीजी के पास अपना कष्ट सुनाया। स्वामीजी ने कहा कि तुम्हारी पत्नी सकुशल है और शीघ्र उसकी कुशलता का समाचार तुम्हें मिल जाएगा। इसके एक सप्ताह बाद उसके पास पत्नी का पत्र आ गया। उसने स्वामीजी के पास आकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की।[१]

(४) एक निःसन्तान ब्राह्मण को स्वामीजी की अनुकम्पा से पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई थी। वह स्वामीजी से पुत्र की प्रार्थना किया करता था। स्वामीजी उसकी बातें सुनते और टाल देते थे। एक बार वह आया और अपनी पूर्व प्रार्थना को दुहराया। स्वामीजी प्रसन्न मुद्रा में थे। उन्होंने कहा कि यदि वह इस समय अपनी सहधर्मिणी से समागम करे, तो उसे वांछित फल की प्राप्ति होगी। ब्राह्मण ने तदनुसार ही आचरण किया और सफल मनोरथ हुआ।[२]

(५) बाबू रमेशचन्द्र मजूमदार नामक सज्जन ने स्वामीजी की एक अलौकिक घटना का वर्णन किया है। वे फोटोग्राफर थे। एक दिन वे विशुद्धानन्द

१. इन घटनाओं का उल्लेख लेखक से स्वामीजी के सेवक के पौत्र मणिराम मिश्र ने किया जो आज भी स्वामीजी की पूजा-अर्चा में अपना दिन बिताते हैं तथा उनके समाधि-मन्दिर के नैष्ठिक व्यवस्थापक हैं।

२. भास्करानन्द-चरितामृत (बँगला), पृ. २६६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सरस्वती के यहाँ कश्मीरनरेश की फोटो खींचने के लिए गए थे, परन्तु सरस्वतीजी ने फोटो लेने की आज्ञा नहीं दी। हताश घर लौट आए। दूसरे दिन प्रात: भास्करानन्दजी ने उन्हें बुला भेजा और पूछा—क्यों, कल विशुद्धानन्दजी ने तुम्हें फोटो नहीं लेने दिया। आज मेरे यहाँ ले सकते हो। कश्मीर के सेनाध्यक्ष सर रामसिंह आने वाले हैं। रमेश बाबू ने स्वामीजी की आज्ञा से दोनों का एक ग्रुप फोटो लिया जो भास्करानन्दचरितामृत में छपा है, परन्तु भास्करानन्दजी गत दिन की घटना क्योंकर जान गए। रमेश बाबू ने किसी से इसे नहीं कहा था। 'अगमजानी' इसे ही तो कहते हैं जो अगम्य को जान जाए। स्वामीजी ऐसे ही तापस थे।

स्वामीजी के ग्रन्थ

स्वामी भास्करानन्दजी ने साधना एवं तपस्या से अपना कुछ समय निकालकर सरस्वती की सेवा में भी लगाया। अध्यात्मविषयक ग्रन्थों की सुलभ-सुबोध व्याख्या लिखकर उन्होंने अध्यात्मप्रेमियों का बड़ा उपकार किया। इसी प्रकार कठिन तथा दुरूह काव्य की संक्षिप्त टिप्पणी का निर्माण कर उन्होंने काव्यप्रेमियों का कम उपकार नहीं किया। स्वामीजी के द्वारा प्रणीत ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(क) स्वराज्यसिद्धि की टीका—वेदान्त का यह कठिन ग्रन्थ व्याख्या की अपेक्षा रखता है। उस आवश्यकता की पूर्ति स्वामीजी की टीका से भलीभाँति हो जाती है। इस ग्रन्थ में विशुद्ध ज्ञान के समाश्रयण से मोक्ष-प्राप्ति के मार्ग का निश्चय रूपेण उपाय प्रदर्शित किया गया है। स्वामीजी की टीका सुबोध एवं सरल है। रचनाकाल—१९४८ विक्रमी (=१८९१ ई.)। प्रकाशन काशी से १९५३ वि.सं. में (=१८९६ ई.)।

(ख) दशोपनिषद् की टीका—जिसका नाम प्रकाश है। स्वामीजी ने दशों उपनिषदों के ऊपर अपनी यह सुबोध व्याख्या प्रस्तुत की है। उपनिषदों के ऊपर व्याख्याओं की कमी नहीं है। स्वामी भास्करानन्दजी का लक्ष्य सामान्य अध्यात्मतत्त्व जिज्ञासु जनों के लिए उपनिषदों के महनीय एवं गूढ़ तत्त्वों का उद्घाटन करना है। शैली बड़ी ही सीधी-सादी है। टीका के सहारे साधारण संस्कृतज्ञाता भी उपनिषदों के दुर्ग में प्रवेश कर सकता है—इसमें सन्देह करने के लिए स्थान नहीं है। रचनाकाल है—१९५२ विक्रमी संवत् (=१८९५ ई.)। प्रकाशन काशी से १९५३ वि.सं. (=१८९६ ई.)। इन दोनों ग्रन्थों का प्रकाशन तो स्वामीजी के जीवनकाल में हुआ था, परन्तु तीसरे ग्रन्थ का प्रकाशन स्वामीजी की निर्वाणप्राप्ति के अनन्तर ही हो सका।

(ग) नलोदय-काव्य की संक्षिप्त व्याख्या—नलोदय-काव्य अपनी यमक-सम्पत्ति के लिए नितान्त प्रसिद्ध है। कुछ विद्वान् इसे महाकवि कालिदास की ही रचना मानते हैं, परन्तु नलोदय की यमकमयी रचना-शैली कालिदास की पद्धति से नितान्त भिन्न है। इसके वास्तविक रचयिता रविदेव हैं। रामर्षि (१६०० ई.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगभग) की प्राचीन टीका उपलब्ध है। स्वामीजी की टिप्पणी का प्रकाशन 'सुबोधिनी' के साथ हुआ है जिसके रचयिता पण्डित **प्रज्ञाकर मिश्र** हैं जो **आनन्दकर मिश्र** के पौत्र एवं **विद्याकर मिश्र** के पुत्र हैं। सुबोधिनी के विवरण से ग्रन्थकार मैथिल पण्डित प्रतीत होता है। यह सुबोधिनी टीका विस्तृत तथा पाण्डित्यपूर्ण है जिसकी सहायता से ग्रन्थ का आशय भलीभाँति समझा जा सकता है। स्वामी भास्करानन्दजी की टीका सुबोधिनी को सचमुच सुबोधिनी बना देती है। ग्रन्थ के अन्त में स्वामीजी का यही कहना है—

सुबोधिनी सुबोधिनी यथा भवेन्नलोदये।
तथा श्रमोऽयमर्भकप्रमोदकृद् यतेरणुः॥

स्वामीजी ने स्वल्पश्रम से साध्य अपनी टीका को जो 'अर्भक-प्रमोदकृत्' अर्थात् बालकों को आनन्द देने वाली लिखा है वह यथार्थ है। इसका प्रकाशन स्वामीजी के ही अनन्य शिष्य अयोध्यानरेश महाराज प्रतापनारायण सिंह के.सी. आई.ई. की आज्ञा से किया गया। ग्रन्थ काशी के ही तत्कालीन प्रसिद्ध यन्त्रालय 'भारतजीवन' में मुद्रित किया गया था। प्रकाशन वर्ष १८५९ वि.सं. अर्थात् १९०२ ई. है। स्वामीजी के निधन के दो वर्ष अनन्तर इसका प्रकाशन हुआ। सुबोधिनी के प्रणेता पं० प्रज्ञाकर मिश्र मैथिल का परिचय ज्ञात नहीं है, अन्वेष्टव्य है।

स्वामी भास्करानन्दजी ने 'अनुभूति-विवरणादर्श' नामक संस्कृत-ग्रन्थ का प्रणयन किया था। इसकी टीका पण्डित सरयूप्रसाद मिश्र ने की थी। स्वामीजी के नैष्ठिक भक्त प्रसिद्ध चौधरी महादेवप्रसादजी इस कार्य के लिए उक्त पण्डितजी को छः मास २०) मासिक वृत्ति देते थे। देखिये मिश्रजी के रघुवंश-पद्यानुवाद का आरम्भिक विवरण पृ. १३, जो १९११ ई. में प्रकाशित हुआ।

स्वदेशी भक्त तथा दर्शकवृन्द

स्वामी भास्करानन्दजी के आवास का द्वार सब भक्तों के लिए खुला रहता था चाहे वह धनसम्पन्न सेठ हो, चाहे प्रभूत भूसम्पत्ति का स्वामी राजा-महाराजा हो अथवा वह नितान्त अकिंचन सामान्य कोटि का व्यक्ति हो। इनके यहाँ भक्तों का ताँता लगा रहता था। स्वामीजी के केवल दिव्य दर्शन पाने के लिए अथवा अपनी किसी दुर्लभ अभिलाषा की सिद्धि के लिए दूर-दूर से भक्तजन तथा दर्शक आया करते थे। राजा-महाराजा लोग अपनी बढ़िया सवारी छोड़कर अपने आवास-स्थान से आनन्दबाग तक पैदल ही चलकर आने में अपना अहोभाग्य मानते थे। कश्मीर के नरेश दलबल के साथ स्वामीजी के दर्शनार्थ नगर के अपने निवास-स्थान से दुर्गाकुण्ड तक पैदल ही जाया करते थे। १८९९ ई. की १४ जनवरी को तत्कालीन कश्मीरनरेश महाराज सर प्रताप सिंह, अपने मध्यम भ्राता राज्य के सेनापति राजा रामसिंह तथा कनिष्ठ भ्राता राजा अमरसिंह के साथ आनन्दबाग में स्वामीजी के दिव्यदर्शन की इच्छा से पैदल ही पधारे थे। इसका विवरण देते हुए काशी के प्रख्यात

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समाचारपत्र **भारतजीवन** ने १८ जुलाई, १८९९ के अंक में यह समाचार दिया था—

''जिस समय श्रीमान् (कश्मीराधिपति) काशीजी में स्वामीजी के दर्शन के लिए आए थे उस समय जिन लोगों ने देखा है, वे कह सकते हैं कि श्रीमान् के रोम-रोम में स्वामीजी की भक्ति का उमंग टपका पड़ता था।''

स्वामीजी के प्रति दर्शकों में इतनी भक्ति तथा अनुरक्ति थी कि वे केवल दर्शन की लालसा से ही सैकड़ों मील की दूरी पार कर काशी आया करते थे। इस तथ्य का उल्लेख अमेरिकन साहित्यिक मार्क ट्वेन ने बड़े ही उल्लास से किया है।[१]

अयोध्यानरेश सर प्रतापनारायण सिंह बहादुर स्वामीजी के बड़े ही अनुरागी भक्तों में अन्यतम थे। उनके दर्शन के निमित्त वे काशी अनेक बार आया करते थे। एक समय की घटना की सत्यता का प्रमाण उनके ही पत्र से मिलता है। उन्हें आये अनेक दिन हो गये थे। वे प्रतिदिन स्वामीजी का दर्शन करते एवं उपदेशामृत का पान कर अपने को कृतकृत्य करते थे। उसी समय अयोध्या से उनके लिए तुरन्त लौट जाने की अकस्मात् सूचना मिली। शासनिक कार्य था नितान्त आवश्यक। उन्होंने स्वामीजी से लौटने के लिए आदेश पाने की प्रार्थना की, परन्तु स्वामीजी ने उन्हें कड़े शब्दों में रोक दिया। परन्तु कार्य की आवश्यकता की दृष्टि से वे प्रार्थना करते ही रहे। अन्त में बाध्य होकर स्वामीजी ने कहा कि यदि इतना अधिक आवश्यक काम उपस्थित है, तो तुम जा सकते हो, परन्तु जिस गाड़ी से जाने के लिए उद्यत हो, उसे छोड़ दो। उसके बाद वाली ट्रेन से जा सकते हो। स्वामीजी का आदेश पाकर राजासाहब काशी स्टेशन पर पहुँचे दूसरी गाड़ी से जाने के लिए। स्टेशन पर पहुँचने पर उनके आश्चर्य की सीमा न रही जब स्टेशन मास्टर से पता चला कि इससे पहले चलने वाली ट्रेन आगे जाकर ज्ञानपुर के पास दुर्घटनाग्रस्त हो गयी थी। राजासाहब की जान में जान आई। स्वामीजी का आदेश मानने से उन्हें एक महान् दुर्घटना से बच जाने का सौभाग्य प्राप्त हो सका।

आगामी घटना की जानकारी का यह अद्भुत उदाहरण स्वामीजी की अलौकिकता का स्पष्ट परिचायक है।

भिनगा के राजा उदयप्रताप सिंह स्वामीजी के दीक्षित शिष्य थे। अपनी राजधानी से आने में उन्हें अनेक अड़चनें होती थीं। फलतः उन्होंने काशी में ही अपना निजी मकान बनाने की योजना बनाई जिसमें वे सपरिवार काशीवास कर सकें। इसके लिए उन्होंने अपने गुरु के समीप ही स्थान चुना और अपना विशाल महल बनवाया। यह भवन दुर्गाजी के मन्दिर के पास 'आनन्दबाग' के समीप ही दक्षिण ओर है। यहीं वे रहते थे जहाँ से स्वामीजी के दर्शन तथा सत्संग का लाभ उन्हें अनायास ही प्राप्त होता था। राजा साहब बड़े विरक्त पुरुष थे। उन्होंने ही क्षत्रिय बालकों की शिक्षा-दीक्षा के लिए काशी में एक विद्यालय की स्थापना की जो

---

१. Suddenly a man came up who had travelled hundreds of miles, for this very object. —Mark Twain in the Englishman, Calcutta, 1896

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज बढ़कर एक स्वायत्तशासी महाविद्यालय के रूप में विराजमान है। 'उदयप्रताप कॉलेज' के संस्थापक राजासाहब ही तो थे।

इसी प्रकार दरभंगानरेश राजा लक्ष्मीश्वर सिंह स्वामीजी की बड़ी भक्ति करते थे। उन्होंने लिखा है—"मैंने अपने जीवन में अनेक सुख-समृद्धि की प्राप्ति की है, परन्तु उससे, इस विशाल भूसम्पत्ति से जो सुख मिलता था, वह केवल बाहरी था। स्वामी भास्करानन्दजी महाराज के प्रथम दिव्यदर्शन का सौभाग्य जिस दिन मुझे प्राप्त हुआ, उसे मैं अपने जीवन का परम सौभाग्य का दिन मानता हूँ और मेरे हृदय में जो परमोल्लास उत्पन्न हुआ, वह मेरे जीवन की एक अविस्मरणीय अनुभूति है।"—वे जीवनभर स्वामीजी के चरणसेवक बने रहे।

स्वामीजी के तीन शिष्यों ने उनकी कीर्ति को फैलाने तथा सुरक्षित रखने का महनीय कार्य किया है। इनमें प्रथम शिष्य—**चौधुरी महादेवप्रसाद**—जिला मुजफ्फरपुर (बिहार) के नान्हपुर परगना के जमींदार चौधरी रुद्रप्रसादजी के पुत्र थे। इन्होंने ही कायस्थ पाठशाला की प्रयाग में स्थापना की। इन्होंने शिक्षा के प्रचार में अपनी समस्त सम्पत्ति का दान कर दिया था। इन्होंने काशी के पण्डित महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री को प्रेरित कर उनसे भास्करानन्दजी का जीवनचरित संस्कृत में लिखवाया जो **यतीन्द्रजीवनचरितम्** के नाम से प्रकाशित है। इस काव्य में स्वामीजी का जीवनचरित तथा उपदेश दोनों सम्मिलित हैं। इनके दूसरे शिष्य बलिया जिले के बैरिया गाँव के निवासी जमींदार **श्री पद्मदेवनारायण पाण्डेय** थे जिन्होंने स्वामीजी के जीवनकाल में ही उनकी प्रतिमा का निर्माण करा कर आनन्दबाग में ही एक छोटे से मंदिर में स्थापना की जो आज भी उपासना का केन्द्र है। इस प्रकार स्वामीजी अपने जीवनकाल में ही पूजे जाने लगे थे। इनके तीसरे शिष्य थे कानपुर के उद्योगपति **गयाप्रसाद खत्री**। इनको कोई सन्तान नहीं थी, अतः इन्होंने अपनी सम्पत्ति की व्यवस्था के लिए एक ट्रस्ट 'छोटेलाल-गयाप्रसाद' के नाम से स्थापित किया। इसी ट्रस्ट के द्वारा आनन्दबाग, वाराणसी में स्वामीजी की समाधि पर एक संगमरमर का बहुत ही सुन्दर मंदिर सन् १९१० ई. में बनाया गया जो आज भी वैसा ही सुन्दर है। इन्हीं तीनों शिष्यों ने इनकी कीर्ति को भारत में फैलाने का श्लाघनीय प्रयास किया। इसी ट्रस्ट (न्यास) के न्यासियों ने स्वामीजी के जन्मस्थान गाँव मैथेलाल में एक छोटा मन्दिर बनवाया है तथा वहाँ के लोगों की सुविधा के लिए एक तालाब भी खुदवा दिया है।

स्वामीजी के शिष्यों की संख्या बड़ी विस्तृत रही। ऊपर विवरण में उनके उत्तरप्रदेशीय शिष्यों का ही परिचय दिया गया है। बंगाली सज्जनों में भी उनके शिष्यों तथा परिचितों की कमी नहीं थी। काशी के तथा बाहर के बंगालियों में गण्यमान्य व्यक्ति उनके प्रेमी एवं प्रशंसक रहे हैं। कतिपय प्रधान व्यक्तियों का ही निर्देश यहाँ किया जा रहा है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिहार प्रान्त में शिक्षा के प्रसार के विशेष उत्तरदायी विशिष्ट शिक्षाधिकारी **श्री भूदेव मुखोपाध्याय** स्वामीजी के भक्त शिष्यों में अन्यतम थे। वे इनके दर्शनार्थ बहुशः आया करते थे। आनन्दबाग में स्थापित स्वामीजी की प्रस्तरमूर्ति के नीचे यह परिचयात्मक पद्य भूदेव बाबू की ही मनोज्ञ रचना है—

जातो ब्रह्मकुले स्वतो हि पवित:, पूतः पुनर्विद्यया
ज्ञानेन ज्वलितस्तपोभिरुदितो ब्राह्मं महो मूर्तिमत्।
भित्त्वा संतमसं प्रबोध्य जगतीमानन्दयन् प्राणिनो
ज्ञानप्रेममयोऽर्कवेन्द्रमिलितः श्रीभास्करानन्दकः॥

काशी के ही तत्कालीन प्रख्यात होमियोपैथ **डॉ. ईश्वरचन्द्र चौधरी** स्वामीजी के अन्यतम भक्त शिष्य थे। उनके पुत्र को स्वामीजी ने नीरोग किया था। वह अष्टादशवर्षीय बालक रोग से नितान्त आक्रान्त था। पिता ने स्वामीजी से उसकी दशा का वर्णन कर औषध के लिए प्रार्थना की। स्वामीजी ने प्रसादरूप से एक फल खाने को दिया। उसी के सेवन से वह भला-चंगा हो गया। इसी प्रकार १८९४ ई. में चौधरीजी की भगिनी के ऊपर कालरा का भीषण आक्रमण हुआ, इतना अधिक कि हाथ-पैर सब ठंडे पड़ गए। जीवन की आशा क्षीण हो गई। स्वामीजी ने गुलाब का फूल सूँघने को दिया। रोगिणी ने सूँघा जिससे वह विकट संकट दूर हो गया। वह बच गई। फलतः चौधरीजी स्वामीजी को देवस्वरूप मानते थे।

कलकत्ते से बड़े-बड़े वकील, जज, डॉक्टर तथा शिक्षाविद् स्वामीजी के दर्शनार्थ आते थे और सफल मनोरथ होकर लौटते थे। ऐसे व्यक्तियों में मुकुन्ददेव मुखोपाध्याय (डिप्टी मजिस्ट्रेट), तेजचन्द्र मुखर्जी (सेशन जज), महाराजा यतीन्द्रमोहन टैगोर (लक्षपति जमींदार), प्रतापचन्द्र मजूमदार (विख्यात होमियोपैथिक डॉक्टर) आदि महानुभाव स्वामीजी के प्रशंसक, आराधक एवं उपासक भक्त थे। ऐसे ही भक्तजनों में **सुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय** का नाम बड़े आदर से लिया जा सकता है। वे स्वामीजी के अनन्य सेवक तथा नैष्ठिक भक्त थे। उन्होंने बँगला में स्वामीजी की बड़ी ही प्रामाणिक अथच प्रमेयबहुल तथ्यपूर्ण जीवनी **भास्करानन्दचरितामृत** के नाम से लिखकर प्रकाशित की है। बड़ी छानबीन के साथ इसका प्रणयन हुआ है। चमत्कारी घटनाओं की सचाई पर विशेष अनुसंधान किया गया है और सत्यापित होने पर ही उन्हें ग्रन्थ में स्थान दिया गया है। स्वामीजी के कीर्तिप्रसार में इससे अधिक सेवा हो ही क्या सकती है।[१] स्वामीजी ने कितने नास्तिकों को अपने उपदेश से आस्तिक बनाया, इसकी गणना नहीं की जा सकती।

---

१. कलकत्ते से प्रकाशित प्रथम संस्करण १९०६ ई. तथा तृतीय परिवर्धित संस्करण १९२२ ई.। इस परिच्छेद में वर्णित घटनाओं के लिए लेखक सुरेन्द्रबाबू का बड़ा आभार मानता है। इसके लिए उनका यही ग्रन्थ प्रधान आधार है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विदेशी भक्त और दर्शकवृन्द

स्वामी भास्करानन्दजी के त्याग एवं तपस्या की, अलौकिक शक्ति एवं आध्यात्मिक चमत्कार की कीर्ति उत्तर प्रदेश में इतनी फैली कि काशी में आने वाला प्रत्येक विदेशी अपनी भारत-यात्रा को तब तक पूर्णतया सम्पन्न नहीं मानता था, जब तक वह स्वामीजी के चरणों का दर्शन नहीं कर लेता था। उनके विदेशी भक्तों की एक लम्बी परम्परा है जिसका पूरा परिचय दीर्घ स्थान की अपेक्षा रखता है। अनेक विदेशी भक्त स्वामीजी से मन्त्र-दीक्षा देने के लिए विशेष आग्रह करते थे, परन्तु वे वैदिक-धर्मावलम्बियों को छोड़कर किसी भी अन्य धर्माश्रयियों को कभी दीक्षा नहीं देते थे। ईसाई धर्म के मुख्य तथ्यों से उनका परिचय प्रशंसनीय था और वे उनको स्वधर्म की विधिवत् उपासना करने के लिए ही शिक्षा देते थे। वे विदेशी भक्त स्वामीजी के सामने नतजानु होकर इनके दक्षिण हाथ का चुम्बन करते थे। अपनी भक्ति एवं आस्था दिखाने का यही पश्चिमी तरीका है। ऐसे भी भक्त होते थे—साहब तथा मेम दोनों ही, जो केवल दर्शनमात्र के लिए सुदूर विदेश से आकर अपनी भक्ति दिखाते तथा स्वामीजी का दर्शन कर अपनी चिर अभिलाषा पूरी करते। स्वामीजी के भक्तों एवं दर्शकों में स्वदेशी एवं विदेशी व्यक्तियों की गणना की संख्या अधिक है। यूरोप का कोई भी ऐसा देश नहीं था जहाँ का कोई निवासी भारत-यात्रा के प्रसंग में श्री भास्करानन्दजी का दर्शन कर अपना अहोभाग्य न मानता हो। ऐसे भक्तों तथा दर्शकों के नाम तथा परिचय के लिए सुरेन्द्र बाबू के बँगला ग्रन्थ का परिशिष्ट देखना नितान्त आवश्यक है।[१]

प्रयाग में उस समय गत शताब्दी के उत्तरार्ध में बेचलर एण्ड को. नामक एक प्रतिष्ठित संस्था थी जो जर्मनी से संगमरमर के छोटे टुकड़ों पर स्वामीजी की छोटी शुभ्र मूर्ति बनवाकर मँगाती थी और धड़ल्ले से दस रुपयों में बेचती थी। ऐसी लोकप्रियता विराजती थी स्वामीजी की। सुनते हैं कि जर्मन सम्राट् विलहेल्म (द्वितीय) के हाथों कभी वह मूर्ति पड़ी। वह उससे इतना चमत्कृत हुआ कि उसने अपने विशेष अधिकारी को, जिसका नाम गफ कनिंगम् मार्क था, काशी स्वामीजी को जर्मनी लाने के लिए भेजा। वह काशी आया और जर्मन सम्राट् के विशेष आग्रह से स्वामीजी को जर्मनी चलने के लिए कहा, परन्तु स्वामीजी ने जाना अस्वीकार कर दिया, तथापि वे स्वामीजी से उनके स्वास्थ्य तथा उनके आशीर्वाद के लिए सर्वदा पत्राचार करते थे।[२]

---

१. द्रष्टव्य—श्री सुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय प्रणीत 'भास्करानन्दचरितामृत' नामक बँगला ग्रन्थ, पृ. २३७-७४।

२. इसी जर्मन अधिकारी ने जर्मनी से स्वामीजी के आशीर्वाद के लिए जर्मन साम्राज्य के संस्थापक बादशाह विलहेल्म प्रथम तथा उनके पौत्र तत्कालीन बादशाह का फोटो भेजा था। उसका पत्र इस प्रकार है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काशी का उत्तर प्रदेश के अंग्रेज अधिकारी इंग्लैण्ड में स्थित अपने परिवार के कुशलक्षेम के लिए स्वामीजी की सेवा में सर्वदा उपस्थित होते थे। वे पुत्र की कामना से तथा आर्थिक अभ्युदय के लिए प्रार्थी होकर काशी आते और स्वामीजी का आशीर्वाद लेकर अपने स्थानों पर चले जाते तथा कालान्तर में सफल मनोरथ होते थे। अनेक विदेशी अपने कुतूहल की शान्ति के लिए भी आते, परन्तु विदेश के संस्कृत-प्राध्यापक दर्शन एवं अध्यात्म-विषयक अपनी जिज्ञासा की शान्ति के लिए विशेषकर स्वामीजी की सेवा में उपस्थित होते। जर्मनी के प्रख्यात दार्शनिक डॉ. पाल डायसन ने अपने यात्रा-विवरण में स्वामीजी से अध्यात्मविषयक समस्याओं का सुन्दर तथा सन्तोषजनक समाधान पाकर अंपने संतोष का विशेष विवरण दिया है। स्वामीजी के विदेशी भक्तों तथा दर्शकों में दो-तीन व्यक्तियों का ही संक्षिप्त परिचय यहाँ देना सामयिक होगा।

उत्तर प्रदेश के तत्कालीन छोटे लाट लाटूश साहब समय-समय पर अपनी धर्मपत्नी के साथ काशी के कलक्टर तथा कमिश्नर के संग बिना किसी सूचना के ही स्वामी भास्करानन्दजी के दर्शन के निमित्त पधारते थे जिससे उन्हें एकान्त में निश्चिन्त वार्तालाप करने का अवसर मिलता था। पूर्वसूचना होने पर काशी के गण्यमान्य व्यक्तियों से सम्पर्क होने के कारण स्वामीजी के दर्शनों में बाधा पड़ती थी। स्वामीजी के व्यक्तित्व के विषय में उनका महत्त्वपूर्ण कथन नीचे दिया जा रहा है जो उनके पत्र से यहाँ उद्धृत है।[१]

स्वामीजी और मार्क ट्वेन

अमेरिका के प्रख्यात हास्य-लेखक मार्क ट्वेन अपनी भारत-यात्रा के प्रसंग में काशी आए थे और स्वामीजी का दर्शन कर उन्होंने अपने को कृतज्ञ तथा सफल- मनोरथ माना था। बात यह है कि कोई भी विदेशी स्वामी भास्करानन्दजी के दर्शन के बिना अपनी काशी-यात्रा को पूरा सम्पन्न मानता ही न था। मार्क ट्वेन

5th February, 1895

Dear Sir,

I have a special pleasure in sending you the photos of the Emperor Wilhelm I, the founder of the German Empire and of his grandson, our present Emperor.

I wish you health and long life.

Your most obedient servant
Gruf Konigs Mark.

To, Swami Bhaskarananda. (भास्करानन्दचरितामृत में उद्धृत, पृ. २५८)

१. The manners of the Swami were those of a perfect gentleman, free from any embarassment or self-assertion, anxious to give pleasure to his guest and to show that he was pleased and interested in the conversation.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने अपनी प्रतिक्रिया का विवरण विस्तार से अपने 'मोर ट्रैम्प्स अब्रोड' ग्रन्थ में तथा कलकत्ते के टाउनहाल में अपने अभिनन्दन के प्रसंग में दिया है। वे स्वामीजी को एक अद्‌भुत व्यक्ति मानते थे। उन्होंने कहा कि "भारत के द्वारा किए गए भौतिक उन्नयनों की बात तो मैं पहले से ही जानता हूँ, परन्तु स्वामीजी के दर्शन के समान अनुभव तो जीवनभर में एक ही बार होता है।" इससे बढ़कर महत्त्वपूर्ण उद्‌गार और हो ही क्या सकता है? "मैं यह कहने में बिन्दुमात्र भी संकुचित नहीं होता कि मैंने अपने समस्त भ्रमणों में इस संन्यासी के समान आश्चर्यजनक मनुष्य किसी को देखा ही नहीं। इनका दर्शन पूरे जीवन में एक बार ही होता है, दुबारा नहीं होता।"[१]

मार्क ट्वेन ने अपनी यात्रा के विवरण में स्वामीजी के निवास-स्थान 'आनन्द बाग' में पहुँचने का वर्णन किया है—"जब हम लोग वहाँ पहुँचे, तब हम लोगों को इधर-उधर घूमकर प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। भेंट होने की आशा भी क्षीण थी, क्योंकि उस दिन स्वामीजी ने राजाओं और महाराजाओं से भेंट करना अस्वीकार कर दिया था और केवल साधारणजनों से ही भेंट करते थे। ऊँचा पद उनकी दृष्टि में कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु नहीं है। वे कभी-कभी राजा से ही भेंट करते हैं और भिखमंगों को बाहर निकाल देते हैं। वे ही दूसरे समय भिखमंगों का ही स्वागत करते हैं और राजाओं को दूर हटा देते हैं।"[२] ऐसे विलक्षण थे स्वामीजी।

कलकत्ते के टाउनहाल की सभा में मार्क ट्वेन ने कहा—"स्वामीजी ऐसे व्यक्ति हैं जो भारतवर्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक अपनी तपस्या एवं पवित्रता के लिए पूजे जाते हैं।" सभा में उन्होंने निरावरण स्वामीजी की फोटो को सबको दिखलाया, परन्तु उनमें न कोई हँसी की बात थी और न किसी अपमान की छाया। वे अमेरिका के सबसे प्रख्यात हास्य-लेखक हैं, जिनके स्वभाव में हँसोड़पना कूट-कूट कर भरा हुआ है, परन्तु जब वे गंभीर होते हैं, तो नितान्त गंभीर होते हैं। स्वामीजी की फोटो दिखलाते समय वे नितान्त गंभीर भाव से बोलते थे। उस सभा

---

१. I have no hesitation in saying that in all my travels, I have never seen anybody so wonderful as that recluse. These modern improvements have been familiar to me for y ears but such an experience as the other is only met with once in a life time.

२. When we arrived, we also had to stand around in the garden (Ananda Bag) a little while and wait and the outlook was not good, for he (Swamiji) had been turning away Rajas and Maharajas that day and receiving only the riffraff—Rank is nothing to him. To him all men are alike. Sometimes he receives a prince and denies himself to a pauper, at other times he receives the pauper and turns the prince away.
—More Tramps Abroad

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में उत्तेजित होकर मार्क ट्वेन ने कहा—'वे एक देवता हैं।'[१] मार्क ट्वेन से स्वामीजी का यह साक्षात्कार ४ फरवरी, १८९६ ई. को आनन्द बाग में हुआ था।

मार्क ट्वेन ने अपनी 'मोर ट्रैम्प्स एब्रोड' नामक प्रसिद्ध पुस्तक में स्वामी भास्करानन्दजी के अतुलनीय व्यक्तित्व का वर्णन बड़े ही चमत्कारी शब्दों में किया है।[२]

उनका कहना है कि "ताजमहल की बड़ी ख्याति है, नितान्त प्रसिद्ध है। परन्तु आश्चर्यजनक वस्तु की दृष्टि से वह क्या है? एक तुच्छ सामान्य ही वस्तु है। उसकी स्वामीजी जैसे महापुरुष के साथ कथमपि तुलना हो ही नहीं सकती। वे एक महनीय रहस्यमय व्यक्तित्वसम्पन्न महापुरुष हैं जिन्हें करोड़ों मनुष्य श्रद्धापूर्वक, धार्मिक भावना से एवं बिना किसी सन्देहलेश के हृदय से साक्षात् ईश्वर मानते हैं तथा नम्रता एवं कृतज्ञतापूर्वक ईश्वर के रूप में पूजन करते हैं। उनके शब्दों का चमत्कार दर्शनीय है।"

स्वामीजी और जंगी लाट

१८९८ ईस्वी की २० दिसम्बर को भारत सरकार के सेना के सर्वोच्च अधिकारी जंगी लाट (कमांडर इन चीफ) का आगमन स्वामीजी के दर्शन के निमित्त काशी के 'आनन्द बाग' में हुआ। जंगी लाट का नाम था सर विलियम लाकहर्ट, जिन्होंने अफगान युद्ध में बहादुर अफरीदियों को अपनी सैनिक योग्यता एवं वीरता के कारण परास्त किया था और इसी कारण विश्वभर में अंग्रेजी शासन की प्रतिष्ठा के उन्नायकों में गिने जाने लगे थे। लाट साहब के साथ उनकी पत्नी, उनके सैनिक सचिव कर्नल वी.डफ., काशी के कलक्टर तथा कमिश्नर सब दल-बल के साथ उपस्थित थे। जंगी लाट के लिए स्वामीजी के आवास पर आना कोई नई बात न थी, क्योंकि इससे पूर्व भी अनेक वाइसराय (बड़ा लाट) स्वामीजी के दर्शन के लिए आए थे और दर्शन कर अपनी अभिलाषा पूरी की थी। स्वामीजी ने उनका बड़ा स्वागत किया और अपने द्वारा उपहार में दी गई मालाएँ लाट साहब तथा उनके साथियों को पहना दीं। वार्तालाप का क्रम आरम्भ हुआ। लाटसाहब अफरीदियों को परास्त करने में अपनी बहादुरी की डींग हाँकते हुए अभिमान

---

१. "He is a man who is worshipped for his holiness from one end of India to the other."
He (Mark Twain) pointed to the photograph but neither in mockery nor contempt. It may surprise many readers but when Mark Twain is serious, he is very serious. Mark Twain pursued with animation—"he is a divinity."

२. What is the Taj, as a marvel, a spectacle and an uplifting and over-powering wonder, compared with a living, breathing, speaking personage, whom several millions of human beings devoutly, sincerely and unquestioningly believe to be a God and humbly and gratefully worship as a God. —More Tramps Abroad

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से फूल गए और उसका प्रदर्शन भी उन्होंने अपने उच्च स्वर से बड़ी भावुकता से कर दिखलाया।

स्वामीजी वृत्तान्त सुनकर मुस्कराते रहे। इस समय एक ऐसी घटना घटी जिसे सुनकर तथा देखकर श्रोता आश्चर्यचकित हो उठे। उस समय वहाँ एक पेन्सिल पड़ी हुई थी। स्वामीजी ने लाटसाहब से उसे उठाकर उन्हें देने के लिए कहा। लाटसाहब उठकर उस पेन्सिल को उठाने लगे। परन्तु आश्चर्यम्, महदाश्चर्यम्! वह पेन्सिल टस से मस नहीं हुई। उतने बड़े अभिमानी विजयी सेनापति के अनेक प्रयत्न करने पर भी अपने स्थान से टली नहीं। स्वामीजी ने तब इसका रहस्य बतलाना शुरू किया। उन्होंने कहा—तुमने युद्ध में जय-लाभ किया है, इस प्रकार की भावना मत करो। जय-पराजय का कर्ता तो केवल एक ईश्वर है। मैंने जिस प्रकार तुम्हारी शक्ति का हरण कर लिया, वे भी उसी प्रकार तुम्हारी बुद्धि का हरण कर सकते थे। ऐसा होने पर जिस कौशल के बल पर तुमने अफरीदियों का पराजय किया है, वह बुद्धि युद्ध में कथमपि उपस्थित ही नहीं हो सकती थी। फलत: ईश्वर के ऊपर ही सबको निर्भर करना चाहिए। जय-पराजय का, शक्ति के ह्रास तथा वृद्धि का वही एकमात्र स्वामी है। मनुष्य तो उसके हाथ का एक कठपुतला है—ईश्वर के ऊपर भरोसा रखो, अभिमान का कोई अवसर नहीं।

लाकहार्ट साहब स्वामीजी के इस उपदेश से बड़े प्रभावित हुए। वे उनके आस्थावान् भक्त थे। अपनी पत्नी के साथ समय-समय पर स्वामीजी का दर्शन करते थे।[१]

स्वामीजी की विलक्षण अध्यात्मशक्ति का परिचय देते हुए काशी के प्रख्यात पत्र 'भारत-जीवन' ने (१७ जुलाई, १८९९ ई. के अंक में[२]) लिखा था—

"यह स्वामी महाराजजी का ही योगप्रसाद था कि केवल भारतीय राजा-महाराजाओं के रत्नजड़ित मुकुट ही स्वामीजी की चरणद्युति से भास्वर नहीं होते थे, वरन् यूरोप और अमेरिका के बड़े-बड़े विद्वान् और धनवान् जन बड़ी नम्रता और श्रद्धा-भक्ति से परमपद-प्राप्त स्वामीजी के चरण-दर्शन से अपने को कृतकृत्य मानते थे। यह स्वामीजी महाराज के योगबल ही का प्रभाव था कि विदेशी, विजातीय, विधर्मी जन द्वेषरहित होकर नतग्रीव होते थे।"[३]

---

१. इस घटना के प्रत्यक्षदर्शी श्री शैलेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के आधार पर यह घटना वर्णित है। द्रष्टव्य—भास्करानन्द चरितामृत (पृ. २७०-७७) में उद्धृत उनका पत्र नम्बर १४।

२. यह अंक स्वामीजी के निर्वाण के बाद प्रकाशित होने वाला प्रथम अंक था।

३. स्वामी भास्करानन्द सरस्वती के जीवनचरित एवं व्यक्तित्व के विषय में द्रष्टव्य सन्दर्भ ग्रन्थ—
(१) पण्डित शिवकुमार शास्त्री : यतीन्द्रजीवनचरितम् (संस्कृत, काशी)।
(२) श्रीसुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय : भास्करानन्दचरितामृत (बँगला, कलकत्ता, १९२२ ई., तृतीय संस्करण)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भास्करानन्द-प्रशस्ति

स्वामी भास्करानन्द सरस्वती की ज्ञानगरिमा तथा विमल ज्ञान-वैराग्य की भावना से समाकृष्ट भक्तजनों ने संस्कृत एवं हिन्दी उभय भाषाओं में सुललित पद्यों के द्वारा आपकी विमल प्रशस्ति का निर्माण किया है। उनमें से चुनकर कुछ प्रशस्ति-पद्य यहाँ उद्धृत किए जाते हैं जिनके अध्ययन से स्वामीजी के विरक्त व्यक्तित्व का एक आभास पाठकों को मिल सकेगा।

(१)

सदानन्ददेहं परानन्दकन्दं यतिं भास्करानन्दमीशं प्रसन्नम्।
भवेद् यस्य सान्निध्यमात्रेण जन्तुश्चिदानन्दरूपो गुरुं तं नमामि॥

—महादेवप्रसाद चौधरी (यतीन्द्रस्तोत्र)

(२)

ज्ञात्वा वेदार्थसङ्घं मुनिवररचितं प्राप्तबोधः सविज्ञः
मत्वा चालीकमेतत् सकलमिह जगत् योगमार्गैकलग्नः।
ध्यायन् तं देवमाद्यं भवभयहरणं भास्करानन्दविद् यो
दुर्गायाः पूर्वभागे विलसति विपिने काशिकायां यतीन्द्रः॥

—ज्योतिर्वित् सोनेलाल शर्मा (यतीन्द्रस्तोत्र)

(३)

भवोद्भूतभोगं सुरेशस्य लोकं त्रिवर्गं च तुच्छं सदा मन्वते यः।
पिबन्तं रसं ब्रह्मचिद्रूपमग्र्यं भजे भास्करानन्दमीशं मुनीशम्॥

—गङ्गाचरण वेदान्तवागीश (भास्करानन्दाष्टक)

(४)

यस्तत्त्वमस्यादिविचारदक्षः स्वच्छान्तरात्मा श्रुतिमार्गगामी।
समं सुवर्णं सिकता च यस्य तं भास्करानन्दगुरुं नमामि॥

—वृन्दावन शर्मा (गुर्वष्टक)

(५)

विभुं विश्वनाथं सदोदारकीर्तिं शिवं भोगदं रोगकालं विशालम्।
प्रसन्नेन्द्रियं धर्ममूलं वरेण्यं सदा ध्यानगं भास्करानन्दमीडे॥

—महादेव शुक्ल (यतीन्द्रस्तोत्र)

---

(३) मार्क ट्वेन : मोर ट्रैम्प्स अब्रोड (५५वाँ परिच्छेद)।

Mark Twain : More Tramps Abroad (London)

(४) प्रोफेसर जॉन कैम्पबेल ओमन : दि मिस्टिक्स, एसेटिक्स एण्ड दि सेण्ट्स ऑफ इण्डिया।

Prof. John Campbel Oman : The Mystics, Ascetics and the Saints of India.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(६)

कलिकालकराल-मुखातिविभीतमुमुक्षुसुरक्षणदक्षदय: ।
स च पुत्रकलत्रसुखैषिजनार्थकृते ननु कल्पतरोरुदय: ॥ १११ ॥

—शिवकुमार शास्त्री (यतीन्द्रजीवनचरित)

(७)

जोग व्रत साधैं कोऊ देव अवराधैं कोऊ
इन्द्रियन बाँधैं जपि बीज आखरन को।
तीरथ अटन कोऊ राम को रटन पाप
ताप के कटन, शोधैं अन्त:करन को।
वेद मत धारैं कोऊ करत अचारैं कोऊ
जग व्यवहारैं त्यागि, चाहत तरन को।
मेटि सब दोसो देहु आपनो परोसो
'लछिमन' को भरोसो स्वामी रावरे चरन को॥

—लाल लक्षिमन सिंह (गुरुपंचरत्न)

(८)

ब्रह्म समान अमान सदा समता करै रंक करोरपती को।
त्यागि बिषै विष से अवधूत पुनीत करै विषसो धरती को।
भागि भरो जन जो जग में ढिग जाय करै के लिए विनती को।
लोचन-गोचर सोई करै भवमोचन भास्करानन्द यती को॥

—अष्टक

(९)

अतिमति दायक सहायक सुयोगिन के
होत ही दरस पाप पुंज के हरन हैं।
योगीजन धनिक धनेश धरामण्डल के
जासु रज नीको करैं भाल आभरन हैं।
ध्यान के धरत ज्ञान परम प्रकाश करै
वृन्दावन सद ब्रह्म पद वितरन हैं।
बारिज बरन सुख संपति करन स्वामी
भास्करानन्द महाराज के चरन हैं॥

—अज्ञात

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामी मधुसूदन सरस्वती

इनका संक्षिप्त परिचय उनके ग्रन्थों की सहायता से प्राप्त है। इनके वंश के मूल पुरुष का नाम श्रीराम मिश्र था। बंगाल के फरीदपुर के अन्तर्गत 'कोटालपाड़ा' ग्राम सरस्वतीजी का जन्मस्थल था। इनके पिता का नाम प्रमोदन पुरन्दर था जिनके चार पुत्रों में मधुसूदन तृतीय पुत्र थे। इनका मूल नाम था—कमलनयन। नवद्वीप में हरिराम तर्कवागीश से इन्होंने न्यायशास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया था। न्याय के अगाध विद्वान् गदाधर भट्टाचार्य इनके सहाध्यायी थे। न्याय के आमूलचूल अध्ययन के अनन्तर ये काशी पधारे और यहाँ विश्वेश्वर सरस्वती से इन्होंने अद्वैत वेदान्त का गाढ़ अनुशीलन किया और उन्हीं से संन्यास की दीक्षा ग्रहण की। मधुसूदन अपने गुरु को श्री शंकराचार्य का नूतन अवतार मानते थे जिसका उल्लेख इन्होंने अपने 'सिद्धान्तबिन्दु' के मंगल श्लोक में किया है। माधव सरस्वती से इन्होंने शास्त्रों का अध्ययन किया था। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के मतानुसार माधव नारायण भट्ट के पिता रामेश्वर भट्ट के छात्र माधव सरस्वती से अभिन्न थे। श्रीराम या रामानन्द इनके परम गुरु माने जाते हैं। इन तीनों गुरुओं का स्मरण एक साथ मधुसूदन ने अपने गीताभाष्य की समाप्ति पर किया है—

श्रीराम-विश्वेश्वर-माधवानां प्रसादमासाद्य मया गुरूणाम्।
व्याख्यानमेतद् विहितं सुबोधं समर्पितं तच्चरणाम्बुजेषु॥

मधुसूदन सरस्वती का पाण्डित्य सर्वतोमुखी था। ये वेदान्त के जैसे प्रगाढ़ पण्डित थे; नव्य न्यायादि शास्त्रों में भी इनकी वैसी ही अप्रतिहत गति थी। किंवदन्ती है कि जब सरस्वतीजी एक बार नवद्वीप में आये थे, तो वहाँ के नैयायिकों में खलबली मच गई थी। इसका चित्रण एक कवि ने इस प्रकार किया है—

नवद्वीपं समायाते मधुसूदनवाक्पतौ।
चकम्पे तर्कवागीशः कातरोऽभूद् गदाधरः॥

सुनते हैं कि ये अपने सतीर्थ्य गदाधर के घर पर ही टिके थे। जब गदाधर अपने अन्तेवासियों को नव्यन्याय का अध्यापन करने लगे, तब मधुसूदन ने सोपहास पूछ डाला—क्या छात्रावस्था में संकलित अपनी टिप्पणी ही पढ़ाते हो, या और कुछ अधिक? इसी प्रसंग में शास्त्रचर्चा छिड़ गयी। तब गदाधरी के स्वनामधन्य लेखक गदाधर को सरस्वती की अपूर्व तर्कशैली का अवलोकन कर नतमस्तक होना पड़ा था और इन्हें साष्टांग प्रणाम कर इनके नैयायिक वैदुष्य को मानना पड़ा था। मधुसूदन सरस्वती ने 'अद्वैतसिद्धि' के अपनी नाना विद्याओं, विशेषकर न्याय के, मनन तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तर्क के उपयोग करने का स्वत: संकेत प्रस्तुत किया है इस पद्य में—

गुरूणां माहात्म्यान्निजविविधविद्यापरिचयान्
श्रुतेर्यन्मे सम्यङ्मननपरिनिष्पन्नमभवत्।
परब्रह्मानन्दस्फुरणमखिलानर्थशमनं तदेतस्मिन्
ग्रन्थे निखिलमतियत्नेन निहितम्॥

—अद्वैतसिद्धि की परिसमाप्ति

मधुसूदन सरस्वती की वेदान्त-रचनाएँ इस प्रकार हैं—

(क) सिद्धान्तबिन्दु—यह शंकराचार्य की दशश्लोकी की टीका है जो बलभद्र के अनुरोध से लिखी गयी थी। यह टीका क्या है, अखिल वेदान्त के तत्त्वों का परिनिष्ठित निरूपण एवं अनुशीलन है। (ख) वेदान्तकल्पलतिका—भारतीय दर्शनों में मोक्ष की गम्भीर एवं तुलनात्मक आलोचना यहाँ प्रस्तुत की गयी है। (ग) अद्वैतरत्नरक्षण—नैयायिक शंकर मिश्र के 'भेदरत्न' का यह खण्डन है। (घ) संक्षेपशारीरक सारसंग्रह—संक्षेपशारीरक की व्याख्या, (ङ) गूढ़ार्थदीपिका—भगवद्गीता का विस्तृत भाष्य, जिसमें नाना शास्त्रों के प्रमेयों का विस्तार से आलोड़न, मन्थन तथा आलोचन किया गया है। यही मधुसूदनी टीका लोकप्रिय आख्या द्वारा प्रसिद्ध है जो सरस्वती के लोकातीत वैदुष्य की परिचायिका है। (च) अद्वैतसिद्धि—यह उनके अद्वैती ग्रन्थों का मुकुटमणि है तर्कों के विन्यास में, भेदभाव के पुंखानुपुंख खण्डन में एवं अद्वैत तत्त्व के विपुल परिष्करण में। माध्वसम्प्रदाय के प्रख्यात विद्वान् व्यासराज ने न्यायामृत की रचना कर भेदवाद को वेदप्रतिपाद्य, न्यायानुमोदित एवं तर्कप्रमाणसिद्ध करने का जो विपुल प्रयास किया, उसी का यह तर्ककर्कश तीव्र खण्डन है। नृसिंहाश्रम ने भी न्यायामृत का खण्डन किया था, परन्तु वह उतना तीव्र नहीं था जितना तीव्र है मधुसूदन सरस्वती का अद्वैतसिद्धि में निबद्ध खण्डन। इस खण्डन का रामाचार्य ने अपनी न्यायामृततरङ्गिणी में उत्तर दिया। ये रामाचार्य गोदावरीतीरस्थ अम्बापुर के निवासी तथा उत्तरादिमठ के प्रसिद्ध साधु द्वैतवादी रघूत्तमतीर्थ के शिष्य थे जिनका निधन १४९६ ई० में हुआ था। किंवदन्ती ऐसी भी है कि इन्हीं रामाचार्य ने मधुसूदन के समीप छद्म वेश में प्रत्येक पंक्तिश: अद्वैतसिद्धि का पाठ ग्रहण किया और गुरुदक्षिणा के रूप में अद्वैतसिद्धि का खण्डन गुरु को समर्पित किया। इस घटना का संकेत अद्वैतसिद्धि के अन्त में स्पष्टत: मिलता है—

इह कुमतिरतत्त्वे तत्त्वादी वराकः प्रलपति यदकाण्डे खण्डनाभासमुच्चैः।
प्रतिवचनममुष्मै तस्य को वक्तु विद्वान् न हि रुतमनुरौति ग्रामसिंहास्य सिंहः॥

मधुसूदन सरस्वती की कृष्ण-भक्ति अतुलनीय है। वे जैसे ज्ञानी थे, वैसे ही भक्त भी थे। इस प्रकार उनके समान अद्वैत वेदान्त तथा कृष्ण-भक्ति का मधुमय सामञ्जस्य निराला ही दिखाई पड़ता है। उन्होंने अपने गीताभाष्य में विष्णु भगवान् के प्रति अपनी भक्ति का परिचय सर्वत्र ही दिया है। श्रीकृष्ण की उनकी स्तुति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कितनी भव्य, भावुक तथा मनमोहक है—

वंशी-विभूषितकरान् नव-नीरदाभात् पीताम्बरादरुणबिम्ब-फलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दु-सुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात् कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

भक्तिशास्त्र में उनका अनमोल ग्रन्थ है—भगवद्भक्ति-रसायन तथा उसके प्रथम उल्लास की टीका, श्रीमद्भागवत के प्रथम या प्रथम तीन श्लोकों की टीका, शिवमहिम्न स्तोत्र की हरिहरात्मक टीका। आनन्दमन्दाकिनी तथा कृष्णकुतूहल सरस्वतीजी के क्रमशः काव्य तथा नाटक हैं। मधुसूदन तुलसीदास के प्रति श्रद्धा रखते थे और इस विषय में उनका यह पद्य नितान्त लोकप्रचलित है :

आनन्दकानने काश्यां तुलसी जङ्गमस्तरुः।
कवितामञ्जरी यस्य रामभ्रमर-भूषिता॥

श्रद्धा हो क्यों नहीं? आखिर गोसाईंजी भी अद्वैत ज्ञान के साथ भक्ति के मञ्जुल सामञ्जस्य के ही तो उपासक प्रचारक थे। भागवत के प्रथम श्लोक की व्याख्या में कितनी नम्रता से सरस्वतीजी ने अपने उद्देश्य का परिचय दिया है :

अनुदिनमिदमायुः सर्वदाऽसत्प्रसङ्गैर्बहुविध-परितापैः क्षीयते व्यर्थमेव।
हरिचरित-सुधाभिः सिच्यमानं तदेतत् क्षणमपि सफलं स्यादित्ययं मे श्रमोऽत्र॥

मधुसूदन के एक शिष्य थे पुरुषोत्तम सरस्वती जिन्होंने गुरु के ग्रन्थ सिद्धान्तबिन्दु पर 'बिन्दुसंदीपन' नामक टीका लिखी और उनके दूसरे शिष्य थे शेष गोविन्द जिन्होंने सिद्धान्तबिन्दु पर ही सिद्धान्तरहस्य नामक टीका लिखी थी।

इसी परम्परा के अन्तर्भुक्त १७वीं तथा १८वीं शती में भी अनेक अद्वैती संन्यासियों ने सुन्दर ग्रन्थों का निर्माण किया—(क) नारायण तीर्थ ने अनेक दर्शनों पर ग्रन्थों की रचना की। वेदान्त के विषय में इनका ग्रन्थ सिद्धान्तचन्द्र (अपर नाम लघुव्याख्या) सिद्धान्तबिन्दु की व्याख्या है। भक्तिशास्त्र में इनकी भक्तिचन्द्रिका नितान्त प्रख्यात है जिसमें शाण्डिल्यसूत्रों का भाष्य प्रस्तुत किया गया है। (ख) ब्रह्मानन्द सरस्वती जगद्-विख्यात वेदान्त के विद्वान् थे। ये वंगदेशीय प्रतीत होते हैं क्योंकि 'गौड ब्रह्मानन्द' के नाम से इनकी प्रसिद्धि है। इनकी रचनाएँ हैं—(१) अद्वैतचन्द्रिका (मधुसूदन-रचित अद्वैतसिद्धि की व्याख्या। इसके दो संस्करण हैं—लघुचन्द्रिका तथा गुरुचन्द्रिका), (२) न्यायरत्नावली (सिद्धान्तबिन्दु की टीका) तथा (३) अद्वैतसिद्धान्त-विद्योतन।

इसके अनन्तर भी अद्वैत वेदान्त का परम्परागत पठन-पाठन, प्रचार-प्रसार आज तक काशी में चल रहा है। इस संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि काशी के विद्वान् संन्यासियों ने तथा पण्डित गृहस्थों ने वेदान्त के इतिहास में अपनी विमल तपस्या से, अपने तर्कमण्डित ग्रन्थों से तथा अपने सुयोग्य शिष्यों से अपनी अनुपम कीर्ति स्थापित की। द्वैतमत का तर्कसम्मत प्रौढ़ खण्डन कर अद्वैत मत का प्रसारण तथा संरक्षण काशी के वेदान्ती पण्डितों की अपूर्व देन है।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री देवतीर्थ स्वामी

(प्रसिद्ध नाम—काष्ठजिह्व स्वामी)

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में काशी के संन्यासियों में काष्ठजिह्व स्वामी का शीर्षस्थ स्थान था। ये जितने बड़े विद्वान् थे उतने ही बड़े साधक थे। शास्त्रीय विषयों के साथ तांत्रिक विषयों का भी इन्होंने सम्यक् अनुशीलन किया था। तत्कालीन काशीनरेश महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह के आराध्य गुरु होने के कारण भी इनकी ख्याति कुछ कम नहीं थी। काशीनरेश जैसे विद्वान् तथा विद्याव्यसनी पुरुष थे, स्वामीजी भी उनके अनुरूप ही गुरु मिल गए थे। दोनों का मिलन मणिकांचनयोग ही समझना चाहिए। विद्या की वृद्धि में, आध्यात्मिकता की समृद्धि में इन दोनों विद्वानों का सान्निध्य सोने में सुगन्ध के समान था। रामचरितमानस के टीकाग्रन्थों के इतिहास में काष्ठजिह्व स्वामी की टिप्पणी और महाराज ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह की व्याख्या इस अनुपम संयोग का परिणाम है।

स्वामीजी बड़े ही विनम्र व्यक्ति थे। इनकी विनम्रता का सूचक तो इनका नाम ही है। इनके विषय में कहा जाता है कि एक बार इन्होंने अपने किसी गुरुतुल्य व्यक्ति के लिए अपशब्द का प्रयोग कर दिया था। इसके कारण इनको घोर दुःख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और आत्मग्लानि हुई। फलस्वरूप इन्होंने अपनी जीभ में काठ की बनी खोल चढ़ा ली जिससे ये फिर कभी अपशब्द न कह सकें। इनका गुरुप्रदत्त नाम **देव स्वामी** था परन्तु काठ की जीभ लगा देने के कारण इनका नाम काष्ठजिह्व स्वामी पड़ गया।

जीवनचरित

स्वामीजी ने अपने जीवन के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थों में कहीं कुछ भी निर्देश नहीं किया है जिससे इनके जीवनचरित को समग्र रूप से जिज्ञासु के सामने प्रकट नहीं किया जा सकता। उनके एक ग्रन्थ के अध्ययन से प्रतीत होता है कि स्वामीजी का जन्म-स्थान हिन्दी कवियों के लिए प्रसिद्ध 'असनी' ग्राम है। इस विषय में प्रमाणरूप उनका एकमात्र **अश्विनीकुमार बिन्दु** नामक ग्रन्थ ही है जिसमें ३१ पद तथा कवित्त हैं। स्वामीजी 'असनी' को अश्विनीकुमार से सम्बद्ध बताते हैं। इस नगर की प्रशंसा में इन्होंने बहुत-कुछ लिखा है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ये असनी के ही निवासी थे और स्वयं कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। असनी की प्रशंसा में इनके एक-दो पद्य इस प्रकार हैं—

असनी के कवि समान आन कोऊ कवि नहीं।
काऊ मान्य सभा चतुर बातन में दबि नहीं॥
चँवर ढरन कविता असजलधि उभे फबि नहीं।
सुधा आदि मधुर वस्तु उनमा अस चबि नहीं॥
इनकी गति अगम तल पहुँच सकत रबि नहीं।
देवन को भाग आन पाय सकत हबि नहीं॥

—अश्विनीकुमार बिन्दु, पृ. ४-५

इसी तरह के बड़े प्रशंसात्मक पद स्वामीजी ने इस नगर के विषय में लिखे हैं। इससे ज्ञात होता है कि काष्ठजिह्व स्वामी का इस नगर के प्रति इतना आग्रह, इतनी प्रशंसा, भौगोलिक विविध स्थानों का इतना परिचय, असनी के प्रति इनके गाढ़ अनुराग का पूर्ण परिचायक है। असनी के आस-पास के भौगोलिक स्थानों की उनकी जानकारी इतनी विस्तृत है कि यह अनुमान लगाना अनुचित नहीं है कि इनका इस नगर से गाढ़ परिचय था तथा यह इनका जन्मस्थान था।

स्वामीजी की शिक्षा-दीक्षा का कुछ भी परिचय प्राप्त नहीं होता है। हस्तलेखों में इनके गृहस्थाश्रम का नाम मिलता है और वह है **विश्वेश्वरदत्त मिश्र**। इनके गुरु का नाम **विद्यारण्य तीर्थ** था जिनसे इन्होंने संन्यास-दीक्षा ग्रहण की थी। अनुमान है कि इनके गुरु काशी में ही रहते थे और काष्ठजिह्व स्वामीजी की साधनास्थली गुरु के सम्पर्क में आने पर यह काशी नगरी ही बनी। इनके गुरु के नाम से दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं—(१) **विष्णुसहस्रनाम-परिचर्या**[१] (२) **श्यामसुधा**[२]।

---

१. शिवालाघाट हनुमानजी के पास आनन्दवन यंत्र में लिथो में मुद्रित, काशी, संवत् १९०९ (१८५२ ई.)

२. भारत जीवन यन्त्रालय, काशी में मुद्रित तथा संवत् १९४५ (१८८८ ई.) में प्रकाशित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम ग्रन्थ १८५२ ई. में लिथो में प्रकाशित हुआ था। यह विष्णुसहस्रनाम की टीका है। परन्तु प्रत्येक नाम की टीका न होकर स्थान-स्थान पर कुछ प्रख्यात नामों के ही ऊपर टिप्पणी है। इन टिप्पणियों से विद्यारण्य तीर्थ के वैदुष्य का पता चलता है। अपने अर्थ के लिए स्वामीजी ने वेद-मंत्रों को उद्धृत किया है और इनका अर्थ भी किया है। फलतः इनकी वेद तथा शास्त्र में गहरी पैठ रही; यह भलीभाँति कहा जा सकता है। द्वितीय पुस्तक हिन्दी भाषा में है जिसमें नाना देवताओं के विषय में भक्तिभाव से पूरित बड़े ही कमनीय पद हैं। इसमें ३०२ पद हैं। अन्तिम पद के अध्ययन से इसका रचनाकाल रामनवमी संवत् १८९८ (१९४१ ई.) प्रतीत होता है। ग्रन्थ के मुखपृष्ठ पर जो सूचना दी गई है उससे प्रतीत होता है कि काष्ठजिह्व स्वामी ने ही अपने गुरुजी के नाम पर उसे बनाया।

यह **श्यामसुधा** भगवान् कृष्णचन्द्र की ललित लीलाओं के वर्णन में लिखी गई है। कविता बहुत ही सुन्दर है। भाव बड़े कोमल तथा हृदय को बलात् आकृष्ट करने वाले हैं। एक पद्य यहाँ दिया जाता है—

छवि छलकि रही है लालन की।
चंदा के चहुदिसि तारा जस तैसी भीर गोपालन की॥
सुन्दर भौंह नयन नासा पुट का बरनौं दुति गालन की।
मधुर हसनि अनियारी चितवनि दमकनि कुण्डल हालन की।
काँस फूल के चँवर बनाये ग्वालन छाँह रसालन की।
धूप महक दीपन की जगमग बरसनि सुमनसमालन की॥
तरवा चाटति है श्रुति गैया जहाँ बिभूति निहालन की।
देव रूप रसिकन को कबहूँ चाहत औरी चालन की॥

इन्हीं विद्यारण्य तीर्थजी के द्वारा संन्यास आश्रम में दीक्षित होने पर विश्वेश्वरदत्त मिश्र **देवतीर्थ स्वामी** के नाम से प्रसिद्ध हुए। ये काशीनरेश महाराज ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह के गुरु-रूप में प्रतिष्ठित हुए। गुरु और शिष्य दोनों का जीवन रामनगर में बड़ी शान्ति और सरलता से साथ-साथ व्यतीत हुआ। महाराज की इनके ऊपर अटूट श्रद्धा थी और स्वामीजी की भी इस सुयोग्य शिष्य पर अपार अनुकम्पा थी। उस समय के चित्र में (जो यहाँ दिया गया है) स्वामीजी उपदेश-मुद्रा में चित्रित किए गए हैं। उनके सामने महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह अपने प्रधान सभासदों के साथ बैठे हैं और स्वामीजी के उपदेशों को श्रद्धा से सुन रहे हैं।

ग्रन्थ-रचना

काष्ठजिह्व स्वामी के दो रूप आलोचकों के सामने दृष्टिगत होते हैं। एक तो इनका साधक-रूप और दूसरा इनका कविरूप। कविरूप में इनका साधक-रूप इस प्रकार घुल-मिल गया है कि एक को दूसरे से पृथक् करना बड़ा कठिन है। स्वामीजी जितने बड़े साधक थे उतने ही बड़े कवि भी थे। इनके साधक जीवन की कहानी अभी तक अन्तराल में ही छिपी है। परन्तु इनकी काव्यकला की कथा मुद्रित होकर रसिकों के हृदय को उल्लसित तथा आनन्दित करती है। स्वामीजी का संस्कृत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

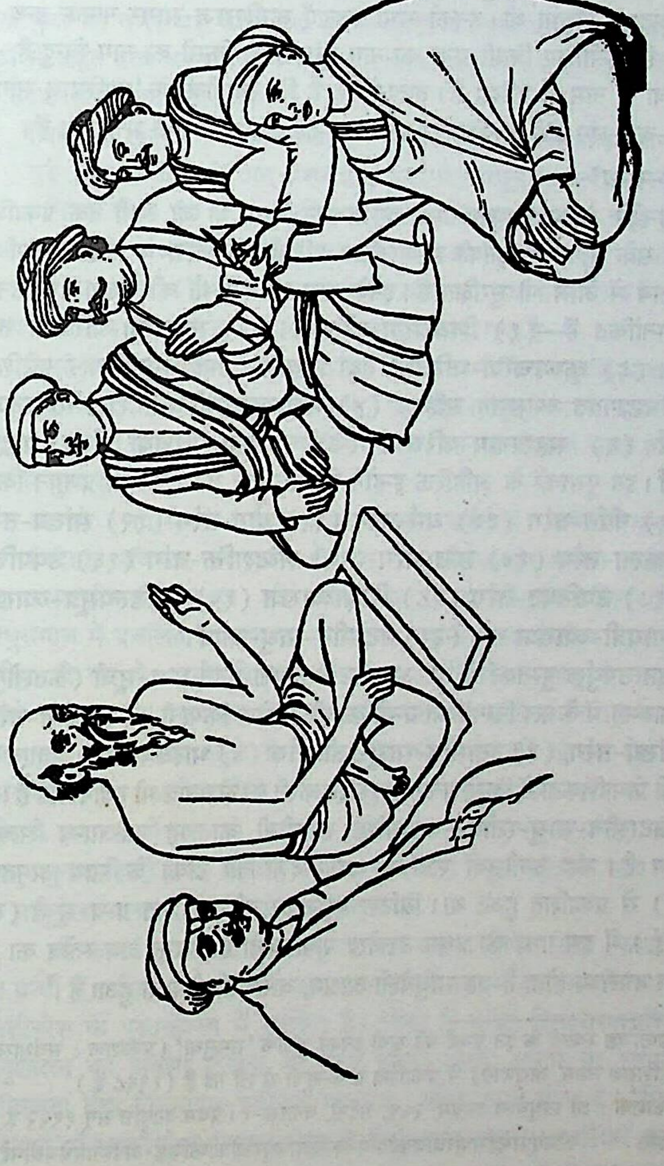

श्री काष्ठजिह्व स्वामी उपदेश देते हुए और श्रोता के रूप में तत्कालीन काशीनरेश महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह अपने प्रधान सभासदों के साथ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और हिन्दी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। कहा जा चुका है, काष्ठजिह्व स्वामी स्वर्गीय काशीनरेश महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह के गुरु थे। उन्हीं के आग्रह तथा अनुरोध से स्वामीजी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की। ये अलौकिक महात्मा थे। इसके साथ महान् विद्वान् भी थे। शास्त्र, संगीत एवं साहित्य के क्षेत्र में इनकी अद्‌भुत प्रतिभा थी। इनकी सभी रचनाएँ **काशिराज-सागर** नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत हैं। इसीलिए किसी ग्रन्थ का नाम तरंग है तो किसी का नाम बिन्दु है, तो कोई सुधा के नाम से प्रसिद्ध है। तात्पर्य यह है कि स्वामीजी के 'काशिराज सागर' के छोटे-बड़े अंग होने के कारण ये ग्रन्थ तत्-तत् अन्वर्थक नामों से प्रसिद्ध हैं।

संस्कृत-ग्रन्थ[१]

इन्होंने अनेक संस्कृत-ग्रन्थों का प्रणयन किया था जो अभी तक प्रकाशित नहीं हो सके हैं, परन्तु इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ काशीनरेश के रामनगर दुर्ग के पुस्तकालय में आज भी सुरक्षित हैं। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या तथा उनके नाम निम्नांकित हैं—(१) **शिवचरण-परिचर्या**। (२) **रामचरण-परिचर्या** तथा **विवृति**। (३) **कृष्णचरण-परिचर्या** तथा **विवृति** (रामायण-व्याख्यान परिशिष्ट तथा श्रीमद्भागवत व्याख्यान सहित) (४) **महाभाष्य-परिचर्या** (५) **रामानुज-परिचर्या** (६) **सहस्त्रनाम-परिचर्या** (७) **रामरक्षा-परिचर्या** (८) **पद्धति परिचर्या**। इन पुस्तकों के अतिरिक्त इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थों का भी प्रणयन किया था—(९) **नीति-तरंग** (१०) **धर्म-तरंग** (११) **योग-तरंग** (१२) **सांख्य-तरंग** (१३) **कला-तरंग** (१४) **छन्द-तरंग** (१५) **शब्दशक्ति-तरंग** (१६) **उपपत्ति-तरंग** (१७) **उपनिषद-तरंग** (१८) **शिक्षाव्याख्या** (१९) **शांडिल्यसूत्र-व्याख्या** (२०) **गायत्री-व्याख्या** तथा (२१) **उदासीन-साधु-स्तोत्र**।[२]

इन उपर्युक्त पुस्तकों में डॉ. आउफ्रेट ने अपनी बृहत् ग्रन्थ-सूची (कैतलोगुस कैतलोगारुम) में केवल निम्नांकित ग्रन्थों का ही उल्लेख किया है—(१) **योग-तरंग**, (२) **सांख्य-तरंग**, (३) **उदासीन-साधु-स्तोत्र** तथा (४) **भास्करस्तोत्र**। अतएव इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता में किसी प्रकार का संदेह करने का लेशमात्र भी स्थान नहीं है।

उदासीन-साधु-स्तोत्र—काष्ठजिह्व स्वामीजी का यह स्तोत्रग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय है। यह उन्नीसवीं शती में ब्रह्मानन्दजी की टीका के साथ अमृतसर (पंजाब) से प्रकाशित हुआ था। ब्रिटिश म्युजियम की प्रकाशित ग्रन्थ-सूची (सन् १८९२ ई.) में इस ग्रन्थ का प्रथम उल्लेख पाया जाता है। परन्तु अब स्तोत्र का जो संस्करण उपलब्ध होता है वह साधुबेला आश्रम, वाराणसी से छपा हुआ है।[३]

---

१. काष्ठजिह्व स्वामी के इन ग्रन्थों की सूची इनकी पुस्तक 'रामसुधा' (प्रकाशक : सर्वभारतीय काशिराज न्यास, वाराणसी) में प्रकाशित ग्रन्थ-सूची से ली गई है (१९६८ ई.)

२. प्रकाशक : श्री साधुबेला आश्रम, २५९, भदैनी, बनारस-१। प्रथम आवृत्ति सन् १९५२ ई.

३. "इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-काशिराजगुरुश्रीकाष्ठजिह्व-अपरनामधेयश्रीमद्देव-तीर्थस्वामिविरचितं उदासीनसाधुस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥ पृ. ५०॥"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस स्तोत्रग्रन्थ से ज्ञात होता है कि काष्ठजिह्व स्वामी का दूसरा नाम **देवतीर्थ स्वामी** था। इस स्तोत्र में २२ पद्य हैं जिनमें १९ श्लोकों के अन्त में निम्नांकित पदों की बार-बार आवृत्ति की गई—उदासीन-साधून् नमस्ये नमस्ये।

इस स्तोत्र में उदासीन सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त साधुपद-वाच्य विरक्त पुरुषों के नाना गुणों का वर्णन बड़े सरल तथा सुबोध शब्दों में किया गया है। किन्हीं-किन्हीं पद्यों में अद्वैत तत्त्व का प्रतिपादन बड़ी ही ललित भाषा में उपलब्ध होता है। एक-दो उदाहरण ही यहाँ पर्याप्त होंगे।

जितद्वन्द्वदोषान् विरक्तानसक्तान्, महाधारणाध्यानयोगाधिरूढान्।
गुरुं ब्रह्म जानन्ति ये तान् प्रशस्तान्, उदासीनसाधून् नमस्ये नमस्ये॥

निम्नलिखित पद्य में 'तत्त्वमसि' महासिद्धान्त वाक्य का अर्थ बड़ी ही सुन्दर तथा सरल रीति से अभिव्यक्त किया गया है। 'तत्' अर्थात् ब्रह्म 'त्वम्' अर्थात् जीव, इन दोनों का 'असि' (हो) पद के द्वारा किस प्रकार की लक्षणा से ऐक्य सिद्ध किया जाता है, इसका संक्षेप में वर्णन इस पद्य में प्रस्तुत किया गया है—

असीति क्रियेयं त्वमो नो तदोऽपि, तदा तत्त्वमोर्नित्यमङ्गाङ्गिभावः।
तदैक्ये द्वयोः सिद्धमाहुश्च ये तान्, उदासीनसाधून् नमस्ये नमस्ये॥

उदासीन साधुओं का सामान्य आचरणपरक यह पद्य नितान्त सरल तथा प्रसाद गुण से युक्त है—

अरण्ये नदीसैकते वा वसन्तस्तथा पर्वतानां दरीमाश्रयन्तः।
विदेहाः प्रविष्टाः परे धाम्नि ये तान्, उदासीनसाधून् नमस्ये नमस्ये॥

उदासीन-साधु-स्तोत्र की रचना के विषय में निम्नांकित किंवदन्ती साधुसमाज में प्रचलित है। एक बार काष्ठजिह्व स्वामी श्वित्र (सफेद चरक) रोग से पीड़ित हो गए थे। इसके निराकरण के लिए इन्होंने किसी साधु से उपाय पूछा। उसने बतलाया कि आजकल अनेक उदासीन महात्मा काशी में निवास कर रहे हैं। अतः यदि आप उनकी स्तुति में किसी स्तोत्र की रचना करें तो इस रोग से मुक्ति मिल सकती है। अतः स्वामीजी ने उस साधु के कथनानुसार इस स्तोत्र की रचना की और ये इस रोग से मुक्त हो गए। इस स्तोत्र की टीका (मंजुलानाम्नी) संस्कृत में तथा अनुवाद हिन्दी में पं. महादेव पाण्डेय ने किया है। मूल स्तोत्र के साथ यह टीका भी साधुबेला आश्रम (काशी) से प्रकाशित है।

श्री काष्ठजिह्व स्वामी के संस्कृत-ग्रन्थों का नामनिर्देश ऊपर किया गया है। इन ग्रन्थों में अधिकांश ग्रन्थ अभी तक हस्तलेख के रूप में उपलब्ध हैं तथा महाराज काशीनरेश के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। लीथो में मुद्रित **शिवचरणपरिचर्या** के अनुशीलन का अवसर लेखक को प्राप्त हुआ। उसके आधार पर स्वामीजी की तान्त्रिकता तथा निगमागम-प्रवीणता का सद्यः संकेत प्राप्त होता है। 'शिवचरण-परिचर्या' में स्वामीजी ने भगवान् शङ्कर के निर्गुणरूप, सगुणरूप, परिवार का स्वरूप, भूषण, वाहन आदि सब के तात्त्विक आध्यात्मिक रूप की बड़ी ही सुन्दर, प्रामाणिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा शास्त्रसम्मत व्याख्या श्लोकों में की है। इसी के साथ देवीस्तुति, गणेशस्तुति तथा काशीस्तुति आदि कई स्तोत्र भी दिए गए हैं। इन समस्त पदार्थों के अन्तराल में विद्यमान जो इनका आध्यात्मिक रूप है उसका संकेत स्वामीजी ने पदे-पदे किया है। एक-दो दृष्टान्त ही नमूने के तौर पर दिए जाते हैं।

शिवरूप का रहस्य

योऽखण्डमण्डलनिभः प्रणवस्य मूर्धा यस्माद् भवन्ति विरमन्ति च यत्र सर्वे।
बिन्दुः स एव परमार्थवपुः शिवोऽयं यं तं चतुर्थमिति वेदविदो वदन्ति॥

—शिवचरणपरिचर्या, श्लोक ३

शिवजी के पञ्चतत्त्वों के प्रतीक रूप में विद्यमान भूषणों का रूप देखिए—

भूरेव भूतिः सलिलं च गङ्गा—जलं तृतीयं नयनं च तेजः।
व्यालः समीरो डमरुर्नभो मह-च्चिन्त्यानि चैवं शिवभूषणानि॥

—वही, श्लोक ८

काष्ठजिह्व स्वामी द्वारा रचित दो परिचर्यायें निर्दिष्ट हैं—**रामचरण-परिचर्या** तथा **शिवचरण-परिचर्या**। प्रथम ग्रन्थ के अन्त में लिखा है कि वह काशीराज को देवार्चन का तत्त्व बतलाने के लिए विरचित है। शिवचरण-परिचर्या का विवरण ऊपर दिया गया है। तृतीय ग्रन्थ श्रीकृष्ण-चरण-परिचर्या नामक है जिसके प्रणेता **विद्यारण्य तीर्थ** बताए गए हैं। इन तीनों का एक जिल्द में प्रकाशन **देवचरण-परिचर्यात्रयी** के नाम से एवं स्वामी महादेवाश्रम के आदेश से 'लाइट यंत्रालय', काशी में १५ मई सन् १८७९ ईस्वी को मुद्रित किया गया है।

एक पद्य में स्वामीजी ने देवताओं की उपासना के प्रसंग में वेद, स्मृति आदि का तुलनात्मक विचार प्रकट किया है—

उत्तमो वैदिको मन्त्रः स्मार्त आचार उत्तमः।
आगमोऽस्योत्तमो भावः पौराणी स्तुतिरुत्तमा॥

इस संक्षिप्त विवरण से स्वामीजी की व्याख्या-पद्धति का किंचित् रूप उद्भासित होता है। हिन्दी के पदों में भी इस पद्धति का प्रयोग उपलब्ध होता है। तात्पर्य यह है कि श्री काष्ठजिह्व स्वामीजी की साधना बड़ी ही उच्चकोटि की थी। ये एक सिद्ध पुरुष थे—इसमें सन्देह नहीं। इसी साधना का परिणत फल है—हिन्दी में पदावली की रचना। इसमें भी आध्यात्मिकता का साम्राज्य विराजमान है। तन्त्रविद्या में विपुल-वैदुष्य-सम्पन्न होने के कारण स्वामीजी की रचना **काशिराज-सागर** तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र आदि के प्रभूत संकेतों से युक्त होने के कारण संस्कृत-विद्वानों के लिए अगम्य है, साधारण व्यक्ति की तो कथा निराली है।

हिन्दी-ग्रन्थ

काष्ठजिह्व स्वामी ने अनेक ग्रन्थों की हिन्दी में रचना की है। साधु होते हुए भी ये स्वभाव से कवि थे। अतः इन्होंने गीतों में अपनी काव्यरचना की है। भोजपुरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षेत्र के निवासी होने के कारण इन्होंने भोजपुरी लोकसाहित्य में उपलब्ध होने वाले जो छन्द हैं—जैसे कजली, होरी, घाटो, चैता आदि—उनमें अपनी काव्यरचना की है। प्रधानतया इन्हीं छन्दों में इनकी कविता निबद्ध है। इनकी कविता में भोजपुरी भाषा की माधुरी और सरसता पाई जाती है। ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने लगभग (२०००) दो हजार गेय पदों की रचना की है। इनके बिखरे हुए गेय पदों को काशीनरेश महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह की आज्ञा से संग्रह कर प्रकाशित किया गया है। स्वयं महाराजा ने कई ग्रन्थों पर टीका लिखी है। हिन्दी में स्वामीजी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिनकी सूची निम्नांकित है—

(क) देवसुधा (पदावली)

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित पुस्तकें हैं—

(१) गणेशबिन्दु, (२) रामसुधा, (३) श्यामसुधा, (४) पंचकोशसुधा आदि।

(ख) देवबिन्दु (पदावली)

इसके अन्तर्गत ये ग्रन्थ आते हैं—

(५) जानकीबिन्दु, (६) अयोध्याबिन्दु, (७) मथुराबिन्दु, (८) काशीबिन्दु, (९) कान्तिबिन्दु, (१०) बैजनाथबिन्दु, (११) गयाबिन्दु, (१२) प्रयागबिन्दु, (१३) अश्विनीकुमारबिन्दु, (१४) जैनबिन्दु और (१५) हनुमद्‌बिन्दु।

(ग) देवसर्वस्व (पदावली)

इस संग्रह में नीचे लिखे ग्रन्थ हैं—

(१६) उपासनासर्वस्व, (१७) विनयामृत, (१८) रामलगन, (१९) श्यामलगन, (२०) रामरंग, (२१) श्यामरंग, (२२) भूषणरहस्य, (२३) आनापुर के पद (बनौधा), (२४) बुन्देलखण्ड के पद और (२५) बन्दिन के जगावै के पद।

इन उपर्युक्त ग्रन्थों में से आजकल मुद्रित और प्रकाशित इनकी पुस्तकों का यहाँ संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

देवरत्न

(१) देवरत्न—यह ग्रन्थ स्वामीजी के सुन्दर पदों का संग्रह है। इसमें ३१३ पद हैं। इसके दो खण्ड हैं—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। इनके पदों में शब्दों की मधुरता, अर्थ की गंभीरता तथा कल्पना की नवीनता रसिक आलोचकों को अपने पूर्ण वैभव से मुग्ध कर देती है। तद्भव शब्दों तथा स्थानीय पदों का प्रयोग अधिकता से किया गया है जिससे इनकी कविता बड़ी मनोहारिणी हो गई है। साहित्यिक शैली तथा रसों की दृष्टि से स्वामीजी की कविता की विविधता देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ता है। संगीत-क्षेत्र में भी इनके गीति-पदों का विस्तार लोकगीतों से लेकर ख्याल और ध्रुपद पर्यन्त है। रागों की विविधता भी अपूर्व है। ऐसे विशाल साहित्य का यह संग्रह सच्चा प्रतिनिधि है। इस संकलन के कुछ सरस पदों को देखिए—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिय जू के अरुनारे दोउ तरवा,
अनुरागन के घरवा॥ टेक॥
का गुलाब का कमल कँटीलो; का बड़ लाल अनरवा।
का कुसुंभ जल बुन्द परत ही; बिगरत रंग निचोरवा॥ १॥
का मखमल का सरसो कलँगी; का मालती पतरवा।
इनकी कोमलता के आगे; का कपोल बट परवा॥ २॥
ऊरध पदुम कलपतरु अंकुस; रेखन को उजियरवा।
एक-एक रेखन पर वारों; त्रिभुवन को सिंगरवा॥ ३॥
जिनके धोवत डरत देवता; जिनि चुइ परइ अतरवा।
इनसे लगन नहीं तौं बिरथा; दण्ड, कमण्डल करवा॥ ४॥

स्वामीजी ने लोक-साहित्य में प्रचलित अनेक छन्दों का भी प्रयोग किया है। यह नीचे का पद कितना सुन्दर है—

बावरे कहैं जमुना तट में,
वह तो श्याम बसैं याही घट में॥ टेक॥
जैसे खेलारी पुतरी नचावैं; रहिकै अन्तरपट में।
तैसे नचावत मन इन्द्रिन को, अलख जगत झंझट में॥
सपने में सब साज पसारै, ज्यों बनिया चौहट में॥
जागत साज समाज कहाँ वह; नट को सो चटपट में॥
सब सोवहु पर जागि रह्यो जो, दीपक सो बड़ि ठट में।
जागे पर आनन्द बखानत; छपि माया को बट में॥
बन-बन में क्या ढूँढ़ौ वाकौ, क्या ग्रन्थन के गठ में।
कहुँ एकन्त में देव मिलौंगो; मति राधा के सट में॥

इस कविता में स्वामीजी ने कृष्ण को यमुना के घाट पर खोजने की अपेक्षा अपने घट (शरीर) में खोजने का उपदेश दिया है। इनका कहना है कि वह श्यामसुन्दर बाह्यजगत् में बन-बन में ढूँढ़ने से नहीं मिलता और न ग्रन्थों के पृष्ठों के भीतर ही वह छिपा हुआ है। वह तो शान्त भाव से एकान्त में चिन्तन करने वाले साधक के चित्त में निवास करता है। वह घाट पर नहीं; बल्कि घट में निवास करता है।

(२) रामसुधा—स्वामीजी की दूसरी पुस्तक रामसुधा है। इसमें ११३ पद हैं। इसमें कुछ में तो रामचन्द्र के चरित का वर्णन है और कुछ में उनके जीवन के आदर्शों को लेकर उपदेश तथा शिक्षा दी गई है। रामायण के आधार पर इस 'रामसुधा' की रचना की गई है। परन्तु पुनरुक्ति रूप में नहीं बल्कि निरुक्ति रूप में। विभिन्न रामायणों के विरोधों का समन्वय, अपेक्षित शंकाओं का समाधान एवं अद्भुत अर्थों का प्रतिपादन इस ग्रन्थ की महती विशेषता है। इस ग्रन्थ का उत्तरकाण्ड महत्त्व तथा विस्तार की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत 'रामसेवा' नामक खण्ड का उपासना की दृष्टि से, 'सीता हनुमत संवाद' खण्ड का सैद्धान्तिक दृष्टि से एवं षड्ऋतु-वर्णन का साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है। यह पूर्ण ग्रन्थ ही राग-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रागिनियों में निबद्ध है। इस ग्रन्थ-लेखक के गूढ़ अर्थों को अभिव्यक्त करने के लिए काशीनरेश ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह ने इसकी सारगर्भित टीका लिखी है। इस प्रकार ग्रन्थ गुरु और शिष्य दोनों के सम्मिलित प्रयत्न का सुन्दर परिणाम है। गीति छन्द में लिखा गया यह प्रभात-वर्णन कितना सरस और सुन्दर है—

मंगल ऊषा समय दिन मुख है।
जहँ तहँ लोग जागे, गौवा दुहन लागे,
लोहिया लगन को रुख है।
नखत झलमलाये चंदहु लटकि आये,
रजनी होहे रही पुख है॥

इस ग्रन्थ में स्वामीजी ने राम के वनवास में छहों ऋतुओं के निवास का वर्णन किया है। वसन्त का यह वर्णन कितना सरस तथा मधुर है—

महँकै सिय अंग बसन्त सोई, कर पल्लव कोमल लाल लसे।
मुख चंद चुवै रस बोल सदा; पद पंकज मानस में बिकसे॥

इसके अतिरिक्त स्वामीजी ने निम्नांकित ग्रन्थों की भी हिन्दी में रचना की है जिनमें से कुछ प्रकाशित तथा कुछ अप्रकाशित हैं—

(१) देवरामायण, (२) कृष्णसुधा, (३) पंचक्रोशीसुधा, (४) मथुराबिन्दु, (५) गयाबिन्दु[१] आदि। 'गयाबिन्दु' काव्यग्रन्थ में गया के तीर्थस्थानों के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। इसमें केवल ३५ गेय पद हैं। भाषा सरल तथा सरस है। 'मथुराबिन्दु'[२] काव्य में ८५ पद हैं जिसमें राधाकृष्ण की लीलाओं का वर्णन राग-रागिनियों में किया गया है। कृष्णसुधा[३] में कृष्णचरित के अनेक मार्मिक रहस्यों, षड्ऋतुचर्या, लोकजीवनोपयोगी विविध विषयों का संकलन तथा आध्यात्मिक तत्त्वों का विश्लेषण है। यह ग्रन्थ काशीराज की टीका से संवलित है।

रामायण-परिचर्या

यह काष्ठजिह्व स्वामी का सबसे बड़ा तथा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। रामायण के गंभीर तात्पर्य को प्रकट करने में यह ग्रन्थ नितान्त समर्थ है। स्वामीजी ने इस रामायण की जो टीका लिखी है वह वास्तव में टीका नहीं बल्कि टिप्पणी है। वह सारगर्भित होने के कारण अत्यन्त कठिन तथा दुरूह है। इस टिप्पणी का नाम 'परिचर्या' था। इसके अर्थ को स्पष्ट करने के लिए महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह ने इसका उपबृंहण (विस्तार) करते हुए जो टीका लिखी उसका नाम 'परिशिष्ट' है। इतने पर भी यह टीका साधारण जनता के लिए बोधगम्य नहीं हो

१. वाराणसी संस्कृत प्रेस में छपा, सन् १८६७ ई.
२. बनारस लाइट छापाखाना में गोपीनाथ पाठक द्वारा मुद्रित, संवत् १९२६ वि. (१८६९ ई.)
३. रामनगर, वाराणसी से प्रकाशित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकी। तब तीसरे व्यक्ति श्री हरिहरप्रसादजी—जो महाराज के फुफेरे भाई लगते थे और कमच्छा में बटुकभैरव-मंदिर के पास एक मकान में रहते थे—ने इसके अर्थ को अधिक सरल तथा जनसामान्य को समझने के लिए सहज बनाते हुए अपनी टीका लिखी जिसका नाम **प्रकाश** है। इसलिए इन तीनों ग्रन्थकर्ताओं की टीका के साथ यह ग्रन्थ 'रामायण परिचर्या-परिशिष्ट-प्रकाश' नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन महाराजा प्रभुनारायण सिंह के आदेश से खड्गविलास प्रेस, पटना से बालकाण्ड तथा अयोध्याकाण्ड का प्रकाशन सन् १८९८ ई. में तथा अरण्यकाण्ड से उत्तरकाण्ड तक का प्रकाशन सन् १८९६ ई. में हुआ।

रामायण-परिचर्या की रचना की कथा

काष्ठजिह्व स्वामी ने 'रामायण-परिचर्या' की रचना कैसे की? इसकी भी एक अपनी रामकहानी है। ऐसा कहा जाता है कि महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह के राजवैद्य पं. बिहारीलाल वैद्यराज ने विजयादशमी के दिन स्वामीजी से यह प्रार्थना की कि महाराजा की बहुत इच्छा है कि आप रामायण की एक टीका लिखें जिससे सर्वसाधारण उसका अर्थ सरलता से समझ सके। स्वामीजी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। ये इसके बीस-पचीस दिनों बाद काशी आए और कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी संवत् १८९४ वि. (सन् १८३७ ई.) हनुमत् जयन्ती के दिन अस्सीघाट पर स्थित हनुमानजी के मन्दिर में जाकर पूजा की और उस मंदिर में स्थापित श्रीरामयंत्रराज की विधिवत् अर्चना की। इसके पश्चात् इन्होंने उस मंदिर के पुजारी श्री लक्ष्मणदास (लछुमनदास) से अनुमति लेकर रामायण की उस हस्तलिखित प्रति को प्राप्त किया जो सं. १७०० वि. (१६४३ ई.) में लिपिबद्ध की गई थी। इस विषय में 'रामायण-परिचर्या-परिशिष्ट-प्रकाश' की भूमिका में जो विवरण दिया गया है वह इस प्रकार है—

हनुमन्त जन्म दिन गोसाईं जी के मंदिर जाय,
पूजा करी जाग्रत श्रीरामयंत्रराज की।
तहाँ मारुतनन्दन की अर्चा किई तैसी
श्री महाराज लछमनदास साधु सिरताज की॥
मुदित मन आज्ञा भई, सुद्ध खास पोथी मिली;
सत्रह सौ साल की।
साधु चरन कमल धूरि सीसै धरि तिलक करौ
सम्बत, जुग, अंक, आठ, एक मिली आज की॥

इस प्रकार सन् १८३७ ई. में काष्ठजिह्व स्वामी ने 'रामायण-परिचर्या' को लिखना प्रारम्भ किया। श्री हरिहरप्रसादजी ने 'रामायण-प्रकाश' नामक अपनी टीका का संवत् १९१२ वि. (सन् १८५५ ई.) में निर्माण करना आरम्भ किया और इस टीका की समाप्ति संवत् १९२८ वि. (सन् १८७१ ई.) में हुई। इन दोनों के आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह ने 'रामायण-परिचर्या' पर अपनी 'परिशिष्ट' नामक टीका का निर्माण सन् १८३७ ई. और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन् १८५५ ई. के बीच किया होगा। परन्तु किस संवत् में उन्होंने इस टीका का प्रारम्भ किया था? यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। सन् १८३५ ई. में महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह राजगद्दी पर बैठे। परन्तु रामायण के प्रति उनका इतना प्रगाढ़ अनुराग था कि राजगद्दी पर बैठने के केवल दो वर्ष बाद ही सन् १८३७ ई. में उन्होंने अपने राजवैद्य को स्वामीजी से रामायण की टीका लिखवाने के लिए प्रेरित किया।[१]

रामायण-परिचर्या की रचना का उद्देश्य

काष्ठजिह्व स्वामी ने अपने टीका की रचना का उद्देश्य बतलाते हुए लिखा कि मैंने महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह के 'नितनव आनन्द' हेतु इसका निर्माण किया। इस टीका की रचना में स्वामीजी को एक वर्ष से भी कम समय लगा था क्योंकि सन् १८३७ ई. की हनुमत् जयन्ती से प्रारम्भ करके इन्होंने इसे सन् १८३८ ई. की रामनवमी को ही समाप्त कर दिया था। इसका निर्देश स्वामीजी की इस पंक्ति में पाया जाता है—

बान, अंक, आठ, एक सम्बत में जौन दिन।
जनक उछाह रामदेव सिरताज के॥

'परिचर्या' के अन्त में स्वामीजी ने जीवन के उद्देश्य के सम्बन्ध में यह पद्य लिखा है जिससे इनके जीवन-दर्शन का पता चलता है—

एहि नामहिं की सुचिता कन ते, सुचिता भई तीरथ लाखन में।
अमरत्व मिठास दोऊ जु नये; इनहीं के सुधा रस चाखन में।
बल, तेज बढ़ावन नामहूं को गुन, कामदुघां वर माखन में।
भल राम-सिया पद-मूल गह्यौ, अब को उरझै तरु-साखन में॥

महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह ने अपनी 'परिशिष्ट' नामक टीका के अन्त में भगवान् के प्रति प्रार्थना और अपनी चेष्टा की लघुता के विषय में यह सुन्दर श्लोक लिखा है—

हित्वाऽवलम्बमखिलं शरणं प्रपन्नो, याचे पुनः पुनरिदं रचिताञ्जलिस्त्वाम्।
सद्यः प्रसीदसि यया करुणैकसिन्धो, सा दीनता वसतु मे हृदि दीनबन्धो॥
मम कपि-चेष्टितमेतद्, दृष्ट्वा सन्तः प्रसीदन्तु।
ऋक्षवनौकश्चरितं दृष्ट्वा श्रीरामचन्द्र इव॥

इसी प्रकार 'प्रकाश' नामक टीका के रचयिता श्री हरिहरप्रसादजी की टीका के अन्त के ये दो श्लोक द्रष्टव्य हैं—

पुनन्तु साधुचरणाः साङ्गा वेदाः पुनन्तु च।
रामप्रिया भगवती सरयूश्च पुनातु माम्॥
जित-नूतन-वारिद-द्युतिर्जयति श्रीरघुनन्दनच्छविः।
जित-चम्पक-काञ्चन-द्युतिर्जयति श्रीधरणीसुताछविः॥

---

१. 'रामायण-परिचर्या' की रचना का यह प्रामाणिक विवरण 'रामायण-परिचर्या-परिशिष्ट-प्रकाश' की भूमिका से लिया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टीका के अन्त की तिथि इस प्रकार है—

माघ कृष्ण एकादशी सिद्धि, परव।
निधि, ब्रह्म अब्द शुभ मेदन सो सरसै॥

इस उल्लेख के अनुसार प्रकाश की रचना सं. १९२८ वि. अर्थात् सन् १८७१ ई. में समाप्त हो गई थी।

मानस-परिचर्या का अनुशीलन करने से काष्ठजिह्व स्वामी के गंभीर शास्त्रीय चिन्तन, तांत्रिक वैदुष्य तथा लोकातीत व्यक्तित्व का पूरा परिचय मिलता है। ये संस्कृत व्याकरण के भी ज्ञाता थे। फलतः रामचरितमानस में आए हुए अपाणिनीय प्रयोगों को भी शुद्ध रूप सिद्ध करने के लिए इन्होंने अनेक स्थलों पर सूत्रों का उल्लेख किया है। परिचर्या का सम्पूर्ण विवेचन तो उस ग्रन्थ का सम्पूर्ण रूप से अध्ययन करने पर ही हो सकता है। परन्तु यहाँ पर स्थालीपुलाकन्याय से उनके द्वारा प्रतिपादित मानस के एक-दो स्थलों की विशेषता का ही उल्लेख किया जा सकता है।

(क) रामचरितमानस के पाँचवें काण्ड का 'सुन्दर' नामकरण गोस्वामीजी ने क्यों किया? इसकी सुन्दर विवेचना स्वामीजी ने की है। उत्तर तथा दक्षिण दोनों दिशाओं में ध्रुव नामक तारा है। उत्तर में सुमेरु पर्वत है। उसका प्रतिरूप दक्षिण में लंका विराजमान है। सुमेरु के तीन शिखरों के समान लंका में भी त्रिकूट (तीन शिखर) हैं जिनके नाम हैं (१) नील, (२) सुन्दर तथा (३) सुबेल। नीलकूट पर लंका बसी है। सुन्दरकूट पर अशोकवाटिका की स्थिति है और सुबेलकूट के ऊपर लंका की रणभूमि अवस्थित थी, जहाँ राम और रावण का युद्ध हुआ था। सुन्दरकूट पर विराजमान अशोकवाटिका की कथा का ही वर्णन इसमें मुख्यतः हुआ है। अतः इस काण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड रखा गया है। इस सूचना का आधार **उपमेरुतंत्र** नामक तंत्रशास्त्र का एक ग्रन्थ है जिसमें ये बातें लिखी हुई हैं। ऐसा स्वामीजी का कहना है। नीचे के दोहे में सुन्दरकाण्ड की कथा का संक्षिप्त उल्लेख पाया जाता है—

रघुवर ससि, सीता प्रभा; हनुमत उदय हुलास।
सुन्दर सुन्दर काण्ड यह, सुन्दर लह्यौ प्रकास॥

(ख) मानस के षष्ठ काण्ड का नाम गोस्वामीजी ने 'लंकाकाण्ड' रखा है जबकि वाल्मीकि ने इसका नाम युद्धकाण्ड लिखा है। अतः विचारणीय प्रश्न यह है कि गोस्वामीजी ने इसका नामकरण लंका क्यों किया? इस प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने कई कारण दिए हैं—

(१) ल=लक्ष्मी; अंक=चिह्न (लक्ष्मी के चिह्नभूत सोना, चाँदी, हीरा आदि से सम्पन्न होने के कारण)।

(२) ल=पृथ्वी; अंक=गोदी (पृथ्वी की कन्या सीता को अपनी गोद में धारण करने के कारण 'लंका' नाम पड़ा)।

(३) ल=हनुमान्; अंक=दाह, जलाना (अर्थात् हनुमान के द्वारा जलाए जाने के कारण 'लंका' नाम पड़ा)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(४) ल=लवणसमुद्र; अंक=परिखा, घेरा (लवणसमुद्र से घिरे रहने के कारण लंका नाम)। स्वामीजी ने अपने तर्कों के प्रमाण में एकाक्षरी कोश तथा मेदिनी कोश का प्रमाण भी दिया है। अतः इन्होंने लंका नामकरण के जो कारण दिए हैं वे प्रमाण-पुरस्सर हैं।

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्य-विहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ, कवीश्वरकपीश्वरौ ॥

इस श्लोक पर टिप्पणी करते हुए स्वामीजी ने लिखा है कि कवीश्वर वाल्मीकि कपीश्वर हनुमान् ''दूनौ जनो रामचरित के विहारी। एक दक्षिणाचारी एक उत्तराचारी।'' स्वामीजी की इस संक्षिप्त टिप्पणी की व्याख्या करते हुए महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह ने परिशिष्ट में लिखा है कि **''वाल्मीकिजी चित्रकूट रामसो मिलन मानस में लिखा। अतएव वे हुए दक्षिणाचारी। हनुमान उत्तरचारी। कदली बिपिन विहारार्थ भीम से मिलन। वनपर्व, अध्याय १४५, महाभारत में।''** राजा साहब की इस टीका पर हरिहरप्रसादजी ने अपने 'प्रकाश' में यह लिखा है, ''दोनों को प्रणाम। वाल्मीकिजी वक्ताशिरोमणि, हनुमान् श्रोताशिरोमणि। पुण्यारण्यविहारिणौ—दोनों वनवासी हैं—एक दक्षिण, एक उत्तरवासी होने से दोनों तुल्य हैं।''

ऊपर के उद्धरण में तीनों ग्रन्थकारों की गद्य-शैली का नमूना प्रस्तुत करने के लिए ही उनकी वाणी अक्षरशः उद्धृत की गई है। इस गद्य-शैली के विषय में यह ध्यान रखना चाहिए कि यह 'हरिश्चन्द्री हिन्दी' के उदय के पहले की हिन्दी है। 'हरिश्चन्द्री हिन्दी' का उदय सन् १८७९ ई. में हुआ। परन्तु जिस हिन्दी का उद्धरण ऊपर दिया गया है उसका जन्म सन् १८३७ ई. में हुआ। इस प्रकार यह हरिश्चन्द्र से लगभग ४० वर्ष पहले की हिन्दी का नमूना है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों को शैली की दृष्टि से स्वामीजी की हिन्दी का अध्ययन करना चाहिए।

(ग) गोस्वामीजी ने अयोध्याकाण्ड में यह प्रसिद्ध चौपाई लिखी है—

लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू॥

इस चौपाई का सीधा अर्थ यह है कि भाग्य के उल्टा होने के कारण सुधाकर अर्थात् चन्द्रमा को लिखते समय गलती से राहु लिख गया। परन्तु सुधाकर लिखते समय राहु कैसे लिखा जा सकता है? इस समस्या का समाधान काष्ठजिह्व स्वामी ने अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल से पहली बार किया है। स्वामीजी ने इस पर केवल इतनी ही संक्षिप्त टिप्पणी जड़ी है कि—**एक ओर अधिक मसी गिर जाने से।** इस संक्षिप्त तथा गूढ़ टिप्पणी का भाव राजा साहब की व्याख्या से ही स्पष्ट होता है। उन्होंने लिखा है कि 'लिखना' शब्द का अर्थ 'चित्र बनाना' है, लेखनकर्म करना नहीं है। 'राहोः शिरः' इस उक्ति के अनुसार राहु के चित्र में केवल उसका सिर ही बनाया जाता है। चन्द्रमा का चित्रण केवल 'सिर' मात्र से किया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी 'सिर' के चित्र में अधिक स्याही के गिर जाने से सिर की मोटी आकृति बन जाने से वह राहु का प्रतीक हो जाता है। अत: इस प्रकार सुधाकर अर्थात् चन्द्रमा का सिर चित्रित करते समय राहु का चित्र बन जाना स्वाभाविक है। ऐसे विचित्र अर्थ की ओर स्वामीजी का संकेत है।

(घ) गोस्वामीजी ने मानस में संस्कृत के कुछ श्लोक भी लिखे हैं। उन श्लोकों में संस्कृत के कुछ विद्वान् अपाणिनीय प्रयोग करने का आक्षेप गोस्वामीजी पर लगाते हैं। परन्तु स्वामीजी ने अपने प्रकाण्ड व्याकरण-ज्ञान के द्वारा गोस्वामीजी के संस्कृत के प्रयोगों को शुद्ध तथा पाणिनीय सिद्ध किया है। उदाहरण के लिए तुलसीदासजी के द्वारा किए गए रामवर्णन 'केकीकण्ठाभनीलं सुरतरुविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नम्।' (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, मंगलश्लोक) में 'केकीकण्ठाभनीलं' के प्रथम पद में 'केकि'—ह्रस्व इकार होना चाहिए। केका (वाणी मयूरस्य) से सम्पन्न होने के कारण मयूर को 'केकी' (केकिन्) कहते हैं। फलत: किसी पद के साथ समास होने पर ह्रस्व इकार होना ही उचित है। अत: तुलसीदासजी का 'केकीकण्ठ' पद अपाणिनीय है। इसी प्रकार उत्तरकाण्ड के द्वितीय श्लोक के उत्तरार्ध 'जानकी-कर-सरोज-लालितौ चिन्तकस्य मनभृंगसंगिनौ' में विद्यमान 'मनभृंग' पद अपाणिनीय है, क्योंकि 'मनस्' शब्द के सकारान्त होने के कारण 'मनोभृंग' होना ही समुचित है। इन दोनों आक्षेपों के उत्तर में स्वामीजी का कहना है कि व्याकरण के अनुसार ये दोनों पद बनते हैं। 'मनस्' शब्द सकारान्त होने के साथ ही साथ अकारान्त (मन) भी है। मयूरवाची शब्द दोनों प्रकार का है—केकिन् (इन्नन्त) तथा केकी (दीर्घ ईकारान्त)। इसी प्रकार तुलसीदास के अपाणिनीय प्रयोगों को श्री काष्ठजिह्व स्वामी संस्कृत व्याकरण की रीति से अशुद्ध नहीं मानते। वे अन्य व्याकरण-सम्प्रदायों की ओर संकेत करते हैं। उनकी आस्था प्रतीत होती है कि तुलसीदास के अनेक संस्कृत पद पाणिनीय व्याकरण से संगत न होने पर भी अशुद्ध नहीं हैं। अन्य व्याकरण-सम्प्रदायों से उनकी शुद्धता प्रमाणित की जा सकती है। इस विषय की विशेष मीमांसा के लिए स्वामीजी की 'रामायण-परिचर्या' के तत्तत् स्थल देखना चाहिए।

इस प्रकार **रामायण-परिचर्या** को श्री काष्ठजिह्व स्वामी की हिन्दी-रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ माना जाना चाहिए।

काशिराज-सागर

स्वामीजी ने संस्कृत में छोटे-छोटे अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है, जिनमें दार्शनिक स्तोत्रों का प्राचुर्य है। यह 'काशिराज-सागर:' उनकी संस्कृत-रचनाओं में निगूढ़ार्थ-सम्पन्न सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। श्री काष्ठजिह्व स्वामीजी तांत्रिक साधना के महनीय उपासक, तन्त्रसिद्धांतों के गम्भीर मनीषी तथा तन्त्रों के अन्तरंग रहस्यों के पुंखानुपुंख ज्ञाता विद्वान् थे और उन्होंने इस संस्कृत-ग्रन्थ में देववाणी के माध्यम से अपनी चिर चिन्तना से परिनिष्ठित तत्त्वों का विवरण प्रस्तुत किया है, परन्तु ग्रन्थ,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इतना गूढ़ तथा दुरूह है कि उसके तात्पर्य को समझना आज के पाण्डित्य के लिए एक दुर्धर्ष चुनौती बना हुआ है। उनके संस्कृत-स्तोत्रों पर टीकाएँ सुनी जाती हैं। उनके **शिवचरण-परिचर्या** को काशी के एक उत्कृष्ट विद्वान् पण्डित चन्द्रशेखर त्रिपाठी ने अपनी अभिराम व्याख्या के द्वारा सरल-सुबोध बनाने का प्रयास किया है— ऐसा सुना जाता है। इनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थ हैं—(१) शारीरक सूत्रवृत्ति, (२) परिभाषेन्दुशेखरविचार, (३) श्लोकबद्ध अष्टाध्यायी, (४) पूजापुष्करिणी, (५) रामकथा तथा (६) मत्स्यपुराणटीका। ये त्रिपाठीजी पण्डित कमलापति त्रिपाठी के पूज्यपिता के ज्येष्ठ पितृव्य थे। शास्त्रीय वैदुष्य से मण्डित होने के साथ ही साथ उत्कृष्ट साधक थे। इनके विद्या-वैभव की इतनी कीर्ति थी कि तत्कालीन काशीनरेश महाराज ईश्वरीप्रसादनारायण सिंहजी उनका दर्शन करने तथा आशीर्वाद लेने के लिए उनके घर स्वयं आते थे। इस कोटि के किसी विद्वान् ने यदि व्याख्या लिखने की कृपा की होती तो 'काशिराज-सागर' पाठकों के लिए सरल-सुबोध बन गया होता। परन्तु ऐसा न हो सका। काशीनरेश के पुस्तकालय में सुरक्षित हस्तलेख के रूप में वर्तमान यह ग्रन्थ आज भी किसी उत्कृष्ट तन्त्र-रहस्यवेत्ता विद्वान् की व्याख्या की अपेक्षा कर रहा है। व्याख्या के अभाव में इसे समझ पाना विद्वानों के लिए एक दुरूह व्यापार है। श्री काष्ठजिह्व स्वामीजी के तान्त्रिक वैदुष्य का यह ग्रन्थ सचमुच मेरुदण्ड है।

सामान्य जनता में स्वामीजी एक ललित गीतिकार के रूप में चिरस्मरणीय रहेंगे। इनके हिन्दी में निबद्ध पदों की संख्या बड़ी विशाल है जिनमें से थोड़े ही पद मुद्रित होकर रसिकों के सामने प्रस्तुत हैं। ऊपर निर्दिष्ट ग्रन्थों में पद ही पद तो हैं। स्वामीजी राम तथा श्याम दोनों के ही भक्त थे। फलत: दोनों की ललित लीलाओं के वर्णनपरक पदों का प्राचुर्य है। इन पदों का अनुशीलन करने से लेखक की यह दृढ़ धारणा बन गई है कि वेदान्त के मर्मज्ञ स्वामीजी किशोरी जानकीजी के चरणों के दिव्य उपासक थे। भक्तिरस से स्निग्ध, आनन्दसागर में डुबकी लगाने वाले स्वामीजी सियाजू के चरणों पर अपने आपको निछावर करने वाले साधक थे। 'जानकीबिन्दु' में मनोरम पदों का संग्रह स्वामीजी के हृदयंगम भावों का तथा मधुरिम काव्यकला का स्पष्ट निदर्शन है।

जानकीजी के नाम की महिमा देखिए—

जानकी नाम मनोहर मीठ॥
जापक जन सुषदायक सीधो जनु सिद्धिन को पीठ॥ १॥
महावर हूँ को करत रँगीलो जैसे रस मंजीठ।
रसना पर आवत जनु आयो सिय दरसन को चीठ॥ २॥
जाके मनन गुनन ते झलकत अंदर निरमल डीठ।
बरबस काल फाँसते छोरत बड़े जबर बड़ ढीठ॥ ३॥
अंदर बाहर को मल सोधत जस अंबर को रीठ।
जाके रस के आगे लागत देवसुधा हूँ सीठ॥ ४॥

—जानकीबिन्दु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जानकीजी के कँगना की शोभा निरखिए—

मोरे मन बसल सियाजू कै कंगना॥
कंचन को पँचरंग जड़ित मनि अभरन माँह कइउ रँग रँगना।
लाल पीत सित नील विचित्रित बरषा में जनु साँझि पतँगना॥ १॥
गोल गोल कोरन में मोती कमल निकट जनु बाल बिहँगना।
कील जड़े कंचन के जेंहि ते परि न सकै भागन में भँगना॥ २॥
षेलत दुइ रवि मंडल मानहुँ नरम कलैया लहि कै गँगना।
कर पदुमन को नित विकसावन कारन धरे मनहुँ भल ढँगना॥ ३॥
देवराज पद कों को चाहत को चाहत तरिवर से टँगना।
श्री जानकी चरन-पंकज कै मन रंगो एतनै बर मँगना॥ ४॥

—देवरत्न,[१] पदसंख्या १९५

निम्नलिखित पद में सीताजी को 'इष्टदेवता' के रूप में उल्लिखित किया गया है। स्वामीजी का कहना है कि मानव मन तृन घास का (सूखे विषयों का) भूखा है। उसे रामरस कैसे चिखाया जाए? राम-रसायन को घोल कर पीने से ही जानकीजी प्रसन्न होकर तुम्हारे पास स्वतः आ जावेंगी—

मैं कैसे कै चिषावों राम रसवा।
मन चाहै तृन घसवा॥ १॥
इरषा जर से इहि जिभिया के मीठौ दूध तिताय।
खुलत न मुख कै पाप जंत्रिका हारेउँ करि करि कसवा॥ २॥
सतसंगति कै रंग न लागे जदपि करै सतसंग।
शून्य हृदै बँसवा के जैसे मलया गिरि कै बँसवा॥ ३॥
हरिअर तरु पर पंछी सुख से बोलत अमृत बानी।
अवचट लागल दोउ पंखन में लाग लगी कै लसवा॥ ४॥
जे मन चाहै तेही में जौ रामरसायन घोरौं।
इष्ट देवता सिय करुणा से सुढर ढरै तौ पसवा॥ ५॥

—विनयामृत,[२] पदसंख्या ९

स्वामीजी महाराज के इन भक्तिरस से स्निग्ध पदों में जितना अवगाहन किया जाएगा, उतना ही साधकों का मन भगवान् के चरणारविन्द में आसक्त होगा और इस प्रपंच से छूट कर वह इस धराधाम पर ही जीवन्मुक्त हो जाएगा।

श्रीकाशिराजोज्ज्वलगौरवेश्वरी-प्रसादभूभृद्गुरुवर्यसत्कथः ।
श्रीकाष्ठजिह्वापर-नाम-विश्रुतः श्रीदेवतीर्थो यतिराड् विराजते॥

●

१. प्रकाशक—श्री काशिराज सरस्वती भण्डार, दुर्ग रामनगर, वाराणसी, १९६२ ई.
२. २९ पदों का यह लघुकाव्य श्रील श्रीयुत महाराज ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह काशीनरेश बहादुर की आज्ञा से अम्बिकाचरण चट्टोपाध्याय के द्वारा 'अमर यन्त्रालय' में मुद्रित हुआ था (वाराणसी, संवत् १९४१=१८८४ ई.)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

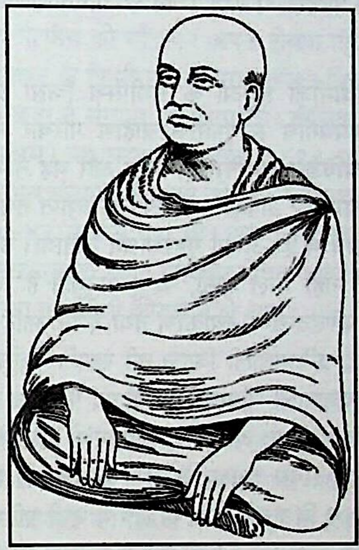

स्वामी महादेवाश्रम

(प्रसिद्ध नाम—श्रीरामनिरञ्जन स्वामी)

उन्नसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में स्वामी महादेवाश्रमजी अपने अलौकिक वैदुष्य, असाधारण आचरण तथा उदात्त आध्यात्मिकता के कारण काशीस्थ संन्यासियों में अग्रणी माने जाते थे। ये **रामनिरञ्जन स्वामी** के नाम से विशेषकर प्रख्यात थे। यह नाम उनके गृहस्थाश्रम के नाम के कारण ही प्रसिद्ध हो गया था। ये काशी में गऊघाट (या गायघाट) पर निवास करते थे। इसलिए 'गऊघाट के स्वामीजी' के नाम से काशीस्थ जनता में लोकप्रिय थे। ये काष्ठजिह्व स्वामी के समसामयिक ही नहीं, अपितु अन्तरंग सुहृद् थे। दोनों स्वामीजी जब आपस में मिलते थे, तब कौन प्रणम्य है?—इस विषय को लेकर दोनों में खूब नोंकझोंक होती थी। महादेवाश्रमजी काष्ठजिह्व स्वामी से कहते थे, "भाई, आप ही मेरे लिए प्रणम्य हैं। आप मेरी अपेक्षा साधुता तथा शास्त्रीय ज्ञान दोनों में विशेष योग्यता रखते हैं। अतएव मुझे आपके आगमन पर अभ्युत्थान करना चाहिए।" उधर काष्ठजिह्व स्वामी कहा करते थे, "मैं केवल साधक हूँ, शास्त्र के गम्भीर ज्ञान के आश्रय तो आप ही हैं। मुझमें इतनी योग्यता नहीं कि प्रथमतः मैं ही प्रणम्य होऊँ। फलतः मैं आपको अभ्युत्थान करने का अधिकारी हूँ। आप मेरा अभ्युत्थान नहीं किया करें।" दोनों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामीजी विद्वत्ता तथा आध्यात्मिकता में बढ़े-चढ़े थे। 'को बड़ छोट कहत अपराधू।' परन्तु ये दोनों जन आपस में इस प्रकार हास्य-विनोद किया करते थे। दोनों ही संन्यासियों की मण्डली में शीर्ष स्थान के अधिकारी माने जाते थे।

अध्ययन-अध्यापन

श्रीरामनिरञ्जन स्वामीजी हथुआ के समीपस्थ किसी ग्राम के निवासी थे। उनका जन्म एक मध्यमवर्गीय सरयूपारीण ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका पूर्वाश्रम का नाम था—**पण्डित रामनिरञ्जन मिश्र** और यह नाम इतना लोकप्रिय था कि दीक्षानाम **महादेवाश्रम** की अपेक्षा कहीं अधिक व्याप्त तथा विश्रुत रहा। इन्होंने हथुआ के राजा के आश्रय में ही अपना गृहस्थाश्रम बिताया। उनके अध्ययन की तो विशेष जानकारी हमको नहीं मिल सकी, परन्तु अनुमान है कि ये हथुआराज की राजकीय पाठशाला के पण्डितजी से व्याकरण तथा दर्शन आदि शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन कर एक सुबुद्ध प्रतिभाशाली विद्वान् की ख्याति से तुरन्त मण्डित हो गए। छात्र होने के नाते उसी पाठशाला में अध्यापक के पद पर शीघ्र ही नियुक्त किए गए। इन्होंने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया और बड़े मनोयोग से उस विद्यालय में छात्रों का अध्यापन करने लगे। उस समय हथुआ के राजा तिलकधारी शाही थे और उनकी दृष्टि में पण्डित रामनिरञ्जन मिश्र की विद्या के क्षेत्र में बड़ी प्रतिष्ठा थी।

इसी काल में एक ऐसी घटना घटी जिसने मिश्रजी के जीवन को एक नूतन मोड़ दिया। **पण्डित सीताराम शास्त्री** नामक एक विद्वान् राजदरबार में आए और मिश्रजी से शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की। मिश्रजी वादविवाद में, शास्त्रार्थ में अखाड़े के एक महारथी थे। इन्होंने सीताराम शास्त्री की चुनौती स्वीकार कर ली और दोनों में शास्त्र की किसी गम्भीर समस्या के सुलझाने के लिए शास्त्रार्थ होने लगा। सुनते हैं यह शास्त्रार्थ तीन दिन और तीन रात तक लगातार चलता रहा। कोई भी वादी अपना पक्ष दुर्बल मानने के लिए तैयार न था। राजा तिलकधारी शाही शास्त्रार्थ के अध्यक्ष थे। उन्होंने आगन्तुक पण्डित की प्रतिष्ठा-रक्षा के लिए अपने ही दरबारी पण्डित रामनिरञ्जनजी के पक्ष को दुर्बल बताया और शास्त्रार्थ को समाप्त करने की सम्मति दी। शास्त्रार्थ तो समाप्त हो गया, परन्तु रामनिरञ्जनजी को राजा का यह निर्णय पक्षपातपूर्ण प्रतीत हुआ। फलतः उनके हृदय में तीव्र वैराग्य की भावना जागरित हो उठी। उन्होंने राजकीय पाठशाला की सम्मान-सम्पन्न अध्यापकी ही नहीं छोड़ी, बल्कि घर-गृहस्थी को भी सदा के लिए तिलाञ्जलि दे डाली और काशी में संन्यास-दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

स्वामीजी : काशी में

कुछ दिनों में पैदल चलकर मिश्रजी काशी आए। कोई जाना-पहिचाना व्यक्ति तो था ही नहीं जिसके यहाँ अपना डेरा-डण्डा डालकर विश्राम करते। राजघाट के पास ही एक शिवाले में विश्राम कर थकान मिटाने के लिए सो गए। उसी समय गायघाट के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

ही एक ब्राह्मण देवता **त्रिलोचन पाण्डेय** वहाँ पहुँचे। मिश्रजी को जगाया और उनका सब वृत्तान्त सुनकर अपने घर चलने की प्रार्थना की। मिश्रजी का गृहस्थ के घर में टिकने का तथा आराम करने का प्रलोभन शान्त हो गया था। उन्होंने त्रिलोचन पाण्डेय से उनके पुत्र जगन्नाथ पाण्डेय को माँग कर अपना सेवक तो बनाया, परन्तु उनके घर नहीं गए और पञ्चगङ्गाघाट के किसी मठ में विरक्त जीवन बिताने लगे। यहीं पर किसी विरक्त संन्यासी से मिश्रजी ने संन्यास की दीक्षा ली। दीक्षित होने पर इनका गुरुप्रदत्त नाम हुआ—**महादेवाश्रम**। यह घटना अनुमानतः १८२४-२५ ई. के आस-पास की प्रतीत होती है। उस समय संन्यासीजी अपने जीवन की प्रौढ़ावस्था में विद्यमान थे। उस समय उनकी वय ४०-४२ से कम नहीं थी। कुछ दिनों तक वे पञ्चगङ्गाघाट पर ही विराजमान रहे। अनन्तर एकान्त स्थान खोजकर सेवक जगन्नाथ पाण्डेय स्वामीजी को गायघाट के ऊपर किराए की किसी कोठरी में ले आए।

स्वामीजी की ख्याति

एक विचित्र घटना ने रामनिरञ्जन स्वामी को रातोंरात काशी की जनता में प्रसिद्ध बना डाला। बात यों हुई, काशीनाथ खत्री नामक किसी धनाढ्य व्यक्ति का पुत्र मर गया। उसका शव गऊघाट पर गङ्गा में उतारा गया। खत्रियों की यह चाल है कि पूरे परिवार तथा सम्बन्धीजनों की स्त्रियाँ मातमपुरसी के लिए शव के साथ गङ्गा पर उतरती हैं और अपनी छाती पीट-पीट कर रोती-धोती हैं। बड़ा कोहराम मचता है उस समय। ऐसी ही घटना उस समय घटी। रोने-धोने का हल्ला स्वामीजी की कोठरी में पहुँचा जिससे उनकी ध्यान-पूजा में बड़ा विघ्न उपस्थित हुआ। उन्होंने अपने सेवक जगन्नाथ पाण्डेय से सब बातें जानीं। विघ्न के निवारण का सद्यः कारगर उपाय न देखकर स्वामीजी ने सेवक पाण्डेय से कहा—"जाकर कह दो, हल्लागुल्ला ज्यादा मत मचावें। कमण्डल का यह थोड़ा जल ले जाओ। मृत बालक के मुँह में डाल दो और कहो कि सब भाग जायँ।" जगन्नाथ पाण्डेय ने तदनुसार कमण्डल का वह जल मृतक के मुँह में डाला। थोड़ी देर में उसमें चेतना आ गई। स्वामीजी महाराज का यशोगान करते हुए शोककर्ताओं का वह दल आनन्द से जीवित बालक के साथ घर लौट आया। इस घटना के अनन्तर काशी की जनता स्वामीजी के अलौकिक चमत्कार से परिचित हो गई। स्वामीजी के पास दीन-दुःखियों का ही नहीं, राजा-महाराजाओं का जमघट सदा लगने लगा। इस घटना की सूचना लेखक को स्वामीजी के निरन्तर सेवक पण्डित जगन्नाथ पाण्डेय के पौत्र पण्डित लक्ष्मीनारायण पाण्डेय से मिली जिन्होंने अपने पितामह से इस विचित्र घटना को सुन रखा था।

अब श्रीरामनिरञ्जन स्वामी की कीर्ति दिगन्तव्यापिनी हो गई। हथुआ के राजा तो स्वामीजी के पास भोजन तथा वस्त्र की पूरी व्यवस्था कर किसी नौकर के हाथ प्रतिवर्ष भेजते ही थे। उनकी व्यवस्था में किसी प्रकार की कमी या त्रुटि नहीं होती थी। बहुत-सी सनदें तथा पत्र लक्ष्मीनारायण पाण्डेय ने लेखक को दिखलाए जिनमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हथुआ के राजा बड़े आदर तथा सम्मान के साथ स्वामीजी के लिए वस्त्र आदि उपकरणों के साथ नकद रुपया भी जगन्नाथ पाण्डेय के द्वारा भेजवाते थे। बाँसी के राजा महेन्द्रसिंह द्वारा भेजे गए सामान तथा ५०) रुपया की सनद देखने को मिली जिसके लिखने का समय १९२० विक्रमी संवत् है (१८६३ ई.)। धनाढ्य राजाओं और जमींदारों का स्वामीजी के प्रति इतना आकर्षण हुआ कि बिहार के समग्र भूमिहार राजा स्वामीजी के शिष्य हो गए। उत्तर प्रदेश के राजा-महाराजाओं की भी इसी प्रकार पूज्यबुद्धि स्वामीजी की ओर बनी रही। इस कार्य के लिए उन्होंने स्थान-स्थान पर भूमि भी सेवाकार्य के लिए प्रदान की। अयोध्या के राजा ददुआजी स्वामीजी के सेवानुरक्त प्रशंसक तथा दीक्षासम्पन्न शिष्य थे। हथुआनरेश की तो कथा ही न्यारी है। स्वामीजी तो कभी उनके दरबार के राजपण्डित ही थे। फलतः स्वामीजी के सेवाकार्य के लिए वे सबसे अधिक जागरूक शिष्य थे। उनके द्वारा भेजे गए संस्कृत में लिखित पत्रों को लेखक ने देखा है। उनसे उनकी रामनिरञ्जन स्वामी के प्रति अगाध भक्ति तथा प्रगाढ़ अनुराग पदे-पदे अभिव्यक्त होता है। इसके प्रमाण में केवल एक ही पत्र नीचे दिया जा रहा है। इन पत्रों में एक ही त्रुटि लक्षित होती है कि इसके लिखने का संवत् नहीं दिया गया है जिसके अभाव में इनका पौर्वापर्य निश्चित नहीं किया जा सकता। पत्र इस प्रकार है—

श्रीपरब्रह्मणे नमः

श्री श्री श्री श्री श्री परमेश्वर भक्तजन समुद्धरण-हेतु धृतमाया-विग्रह निजानन्दानुभव-तिरस्कृत-जगत्प्रपञ्च श्रीनारायणस्वामि श्रीचरणकमलयुगल-परागपीठेषु श्रीमहाराजकुमार युवराज श्रीतिलक शाहि शर्म श्री वीर प्रतापशर्मणोः प्रणति कोटयः संयन्तुतरामहार्छवं सम्प्रति कुशलं शरीरमावयोः श्री महागुरूणां पितृणां श्री साम्बशिवं स्मरन् मनसा वचसा च जल्पन् त्रिभिरेवरश्रमेण विमुक्ति संसार सागराघाता युक्तयोगिनामिव तेनातीवाकुल-मनसोरावयोर्व्यावहारिकं सुखं महामोहविलसितं स्याच्छीचरणं भक्ताः पितर इति मत्वा हार्दया वचो विधातुमुचितमेव गुणारणाननुध्यानेनावयोरिति प्रार्थना श्रीचरणं सविधे लेखोयं कार्तिकं सप्तम्यां मङ्गले शुभम्।

विलक्षण भविष्यवाणी

काशीनरेश महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह आरम्भ से ही स्वामीजी के भक्त थे तथा उन्हें गुरुकल्प मानते थे। एक विशिष्ट घटना ने इन्हें स्वामीजी का बहुत समीपी तथा अन्तरंग बना दिया। इस घटना की चमत्कारमयी भविष्यवाणी ने स्वामी रामनिरञ्जनजी की आध्यात्मिक प्रतिभा को सदा सर्वदा के लिए चारों ओर बिखेर दिया एवं उनके व्यक्तित्व की अलौकिकता को सद्यः परिस्फुरित कर दिया। घटना आश्चर्यमयी तथा ऐतिहासिक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह को रामनगर के राज-सिंहासन पर बैठे अनेक वर्ष बीत गए थे, परन्तु उत्तराधिकारी राजकुमार का अभाव उन्हें सातिशय पीड़ा पहुँचा रहा था। न उन्हें कोई पुत्र था, न उनके अनुज नरनारायण बाबू को। फलतः आपस में परामर्श तथा विचार कर इस अभाव की पूर्ति के लिए बाबू नरनारायण सिंह ने गोद लेने का विचार किया। उचित पात्र भी चुन लिया गया। केवल स्वामीजी के आदेश की प्रतीक्षा थी। सो एक बार वे गऊघाट पर स्वामी रामनिरञ्जनजी के पास गए और बड़े ही विनीत शब्दों में गुरुजी के सामने अपना विचार प्रकट किया और उनके चरणों में नतमस्तक होकर उनका दिव्य आशीर्वाद माँगा। प्रस्ताव सुनते ही स्वामीजी ने तुरन्त उत्तर दिया—"दत्तक लेने की आवश्यकता ही नहीं। तुम्हारे यहाँ तो एक दिव्य राजपुरुष आ रहा है जो गोब्राह्मण का सेवक, सनातन धर्म का रक्षक तथा तुम्हारे वंश को उजागर करने वाला होगा। विश्वास रखो, उसके आने में विशेष विलम्ब नहीं है।" इस दिव्यवाणी को सुनकर नरनारायण बाबू तो आनन्द से गद्गद हो गए। स्वामीजी का आशीर्वाद लेकर वह सानन्द रामनगर लौटे। थोड़े ही दिनों बाद १८५५ ई. में श्री प्रभुनारायणसिंहजी का जन्म हुआ। रामनिरञ्जन स्वामीजी ने उनका जो भविष्य बतलाया था वह अक्षरशः सिद्ध हुआ। वे सचमुच ही बड़े धर्मात्मा, सनातनधर्म के उन्नायक, संस्कृत-शास्त्रों के पण्डित तथा कमनीय कविता के स्रष्टा सिद्ध हुए। महाराजा प्रभुनारायण सिंह को महाकवि कालिदास का 'अभिज्ञानशाकुन्तल' इतना प्रिय था कि उन्होंने उस नाटक के रमणीय दृश्यों के भित्तिचित्र अपने महल के एक स्वतन्त्र कमरे में बनवाए। वे सचमुच ही वंश को उजागर करने वाले सिद्ध हुए; क्योंकि उनके ही शासनकाल में रामनगर को एक स्वतन्त्र रियासत का दर्जा मिला था। महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंहजी ने उन्हें समय आने पर अपने उत्तराधिकारी युवराज के पद पर अभिषिक्त किया। पिता बाबू नरनारायण सिंह ने स्वामीजी से उन्हें दीक्षा दिलवा दी तथा उनके जीवन को आध्यात्मिक दिशा की ओर अग्रसर कर अपने शेष जीवन को सन्तोष एवं आनन्द से बिताया। ऐसी थी चमत्कारिणी भविष्यवाणी श्री रामनिरञ्जन स्वामीजी की। इसके अनन्तर स्वामीजी के साथ काशीनरेश के वंश का अच्छेद्य सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस ऐतिहासिक घटना का विवरण लेखक को पूर्व काशीनरेश डॉ. विभूतिनारायण सिंहजी ने दिया जो अपने वंश के प्राचीन पारम्परिक इतिवृत्त से पूर्ण परिचय रखते थे तथा जो महाराजा प्रभुनारायण सिंह के योग्य पौत्र होने का गौरव धारण करते थे।

यह विवरण विश्रुत अनुश्रुति के आधार पर संकलित किया गया है। स्वामीजी के द्वारा प्रणीत **पञ्चाक्षरी-भाष्य-व्याख्या** नामक अपूर्व वेदान्तग्रन्थ की उपलब्धि लेखक को हुई है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में हथुआनरेश राजा कृष्णप्रताप शाही के सभा पण्डित **रघुवीर कवि** ने ११५ श्लोकों में स्वामीजी का तथा हथुआनरेश के पूर्व पुरुषों का क्रमिक वर्णन कर तत्कालीन नवीन ऐतिहासिक तथ्यों का महनीय विवरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तुत किया है। उसी के आधार पर श्री रामनिरञ्जन स्वामी के जीवनवृत्त की कतिपय घटनाएँ दी जाती हैं। यह नूतन वृत्त इस प्रकार है।

नवीन वृत्त

हथुआ नगर के समीपस्थ किसी ग्राम में घृतकौशिकवंशीय पण्डित **रामधन मिश्र** रहते थे जो बड़े तपस्वी, शान्त-दान्त तथा अनेक शास्त्रों में निष्णात व्यक्ति थे। उनके पुत्र सामान्य विद्वान् थे। फलतः रामधनीजी ने भगवद्भक्त एवं विद्वान् पौत्र की कामना से घोर तपस्या की जिसके फलस्वरूप स्वामीजी का जन्म हुआ। पितामह ने ही इनका नाम **रामनिरञ्जन** रखा। इनके दो ही गुरु हुए। घर पर पितामह से आरम्भिक संस्कृत-शिक्षा ग्रहण कर वे काशी पधारे जहाँ **पण्डित प्राणनाथजी** से दर्शन के विविध अंगों का ज्ञान बड़ी निष्ठा तथा अश्रान्त परिश्रम के बल पर प्राप्त कर वे वैदुष्य-मण्डित दार्शनिक पण्डित बन गए। लगभग बीस वर्ष की वय में वे घर लौटे जहाँ अपने ही घर पर संस्कृत-अध्यापन का कार्य करने लगे। एक विचित्र घटना ने उनके जीवन की दिशा में एक नवीन तथा सुखकर मोड़ उत्पन्न कर दिया। वह घटना थी अपने ही ग्राम के किसी सम्पन्न व्यक्ति के कन्या-विवाह में समागत वरपक्षीय विद्वान् का इनके द्वारा शास्त्रार्थ में पराजय। वरपक्षीय विद्वान् को इस घटना से बड़ी चोट पहुँची तथा वे नितान्त खिन्न तथा म्लानमुख होकर बारात से बैरन लौट गए। पं. रामनिरञ्जन मिश्र को भी इस घटना ने उद्वेलित कर दिया और वे भी आधी धोती ओढ़े हुए घर छोड़कर एकान्त विरक्त होकर हथुआ चले आए। हथुआराज के तत्कालीन शासक राजा छत्रधारी शाही ने मिश्रजी को अपने राजमहल में आश्रय दिया और उनसे भारतीय धर्म तथा वेदान्त की शिक्षा ग्रहण करना आरम्भ किया। राजमाता काञ्चनकुमारी पुत्र के इस सद्व्यवहार से अधिक प्रसन्न हुईं और वह भी मिश्रजी को अपना गुरु बनाकर अध्यात्म तथा पुराण की शिक्षा विधिवत् लेने लगीं। संस्कृत-विद्यालय में भी पण्डितजी को अध्यापक बना दिया गया जहाँ उनकी कीर्ति सुनकर दूर-दूर से छात्रगण विद्याध्ययन के लिए आने लगे। इस प्रकार छात्रों को विद्यादान देते हुए पण्डितजी ने लगभग बीस साल हथुआ में बिताए। राजा साहब बड़े ही शास्त्ररसिक थे। पण्डितजी से वे नियमित रूप से वेदान्त का श्रवण व मनन करते थे। परन्तु रामनिरञ्जनजी का विरक्त मन इस अध्यापन की वृत्ति से ऊब गया और अपने वैराग्य की पूर्णता के लिए काशी के लिए मचलने लगा। हथुआनरेश ने वेदान्त-शिक्षण के लिए मिश्रजी से दक्षिणा माँगने को कहा। इस पर उन्होंने काशीवास करने की तथा संन्यास लेने की राजा से दक्षिणा माँगी। राजासाहब ने मिश्रजी की बात तो मान ली, परन्तु एक ही शर्त पर कि वे यावज्जीवन उन्हीं की भिक्षा ग्रहण करेंगे। पण्डितजी ने इसे स्वीकारा और काशी आकर संन्यासी बन गए। तब उनका दीक्षा-नाम तो पड़ा **महादेवाश्रम**, परन्तु लोकप्रिय गृहस्थ नाम की इतनी ख्याति थी कि सब लोग इन्हें **रामनिरञ्जन स्वामी** के नाम से ही पुकारते रहे। काशी में रहकर ये हथुआनरेश की ही प्रधानतया भिक्षा ग्रहण करते थे। उन्हीं की ओर से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनके जीवनयापन की सम्पूर्ण सुखद व्यवस्था की गई थी। काशी में स्वामीजी ४८ वर्षों तक दण्ड धारण करते रहे। राजा-महाराजाओं के द्वारा सत्कृत्य तथा पूजित होते रहे, विशेषत: काशीनरेश ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह तथा उनके अनुज नरनारायण बाबू के द्वारा। स्वामीजी को वि.सं. १९२७ (=१८७० ई.) के मार्गशीर्ष अमावस्या के दिन शिवसायुज्य प्राप्त हुआ। उस समय उनकी आयु ८५ साल की थी। फलत: उनका जन्म वि.सं. १८४२ (१७८५ ईस्वी) मानना उचित प्रतीत होता है।

इस विषय में रघुवीर पण्डितजी का कहना है (श्लोक ६५)—

नागद्व्यङ्कमहीमिते क्षितिपते: श्रीविक्रमस्याब्दके
मार्गे दर्शतिथौ शिवत्वमगमत् सच्चिन्मुदात्मप्रभु:।

स्वामीजी की निर्वाणतिथि (अगहन की अमावस्या) को अनेक वर्षों तक महाराजा रामनगर प्रतिवर्ष अपने किला में संन्यासियों का भण्डारा किया करते थे। स्वामीजी की पावन स्मृति में ऊपर तत्कालीन पत्रों की सहायता से दिखलाया गया है कि स्वामीजी छत्रधारी शाही की ही प्रधानतया भिक्षा ग्रहण करते थे। काशी की दिव्य विभूति थे श्री रामनिरञ्जन स्वामीजी जिनकी यह प्रशस्ति यथार्थ है—

अभूदभूतप्रतिमस्तपस्वी स्वधर्मकर्माभिरतो यशस्वी।
काशीनरेशादि-महीप-पूज्यो यतीश्वरो रामनिरञ्जनाख्य:॥

स्वामीजी का ग्रन्थ

स्वामीजी के मुद्रित ग्रन्थ का नाम—**पञ्चाक्षरीभाष्यप्रकाशिका**। यह पद्मपादाचार्यरचित **पञ्चाक्षरीभाष्य** का विशदार्थप्रतिपादक एवं अद्वैतवेदान्त के गूढ़ सिद्धान्तों का रोचक विवेचक व्याख्या-ग्रन्थ है। मूल में तो केवल २३ ही अनुष्टुप् हैं, परन्तु इसकी व्याख्या के प्रसंग में स्वामीजी ने अद्वैत के खण्डनकर्ताओं के मतों का निरसन बड़े कौशल एवं युक्तियों के सहारे किया है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से अद्वैत-वेदान्त के समस्त तत्त्वों का ज्ञान भलीभाँति हो जाता है। संस्कृत भाषा में निबद्ध-ग्रन्थ की शैली बड़ी ही आवर्जक एवं आकर्षक है। लब्धकीर्ति अद्वैताचार्यों की प्रख्यात रचनाओं में यह अपनी प्रौढ़ता तथा प्रामाणिकता के कारण स्थान पाने की क्षमता रखता है। इसके अनुशीलन से रामनिरञ्जन स्वामी के उत्कट वैदुष्य का परिचय पदे-पदे मिलता है। हथुआनरेश कृष्णप्रताप शाही ने स्वामीजी के निर्वाण के अनन्तर बड़े परिश्रम से इसे प्राप्त किया और इसे मुद्रित कर जिज्ञासु पण्डितों में इसका वितरण किया। इसका मुद्रण अम्बिकाचरण चट्टोपाध्याय ने अपने अमर यन्त्रणालय में १८८७ ई. में काशी में किया। राजा कृष्णप्रतापजी संस्कृत के प्रेमी, यज्ञानुष्ठानों के कर्ता तथा विद्यारसिक नरेश थे। १८८५ ई. में उन्होंने काशी में बड़ा ही विशाल यज्ञ किया था जिसका वर्णन रघुवीर पण्डित ने इस ग्रन्थ के आरम्भ में किया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ का प्रकाशन स्वामीजी की मृत्यु के १७ साल पीछे हुआ। इस ग्रन्थ के पुनर्मुद्रण की आवश्यकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामीजी के सेवक

स्वामीजी का यह विवरण उनके पट्टशिष्य एवं नैष्ठिक सेवक **पण्डित जगन्नाथ पाण्डेय** के परिचय के बिना अधूरा ही रह जाएगा। फलतः पाण्डेयजी का भी संक्षिप्त परिचय दिया जाता है। उनकी सेवा की चर्चा तो ऊपर की जा चुकी है। वे स्वामीजी के एकान्त भक्त थे और उन्होंने उन्हीं के चरणों में समर्पित जीवन बिताया। वे संस्कृत के अच्छे पण्डित थे। स्वामीजी के कैलासवासी हो जाने के तीस वर्षों बाद उन्होंने १९०१ ई. में गायघाट पर अग्निष्टोम यज्ञ किया। यज्ञ १६ जून से आरम्भ होकर २३ जून को समाप्त हुआ। इसके मुद्रित निमन्त्रणपत्र को लेखक ने देखा है। इसके आरम्भ में स्वामीजी की इन शब्दों में स्तुति है—

श्रीमत्परमहंसार्य-परिव्राजक-पूजितः ।
जयति स्म पुरा रामनिरञ्जनयतीश्वरः ॥

अपने विषय में पाण्डेयजी का कथन है—

शिष्यस्तदीयो गुरुपादभक्तः पाण्डे जगन्नाथ इति प्रतीतः ।
धृताग्निहोत्रः पुरि काशिकायां गोघट्टवासी विनयाऽवनम्रः ॥

यह यज्ञ बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ था। इसमें समग्र वैदिक विधानों का यथावत् अनुष्ठान किया गया था। पाण्डेयजी ने इसे स्वामीजी की सेवा का परिणत फल माना है। वे स्वयं अग्निहोत्री थे। फलतः अग्निष्टोम के पूरे अधिकारी थे। उनके कुल में इस यज्ञ के चार वर्षों बाद एक दूसरा भी **अग्निष्टोम यज्ञ** हुआ १९०५ ई. में, जिसका सम्पादन **जगन्नाथ पाण्डेय** के जेठे पुत्र अग्निहोत्री शीतलाप्रसादजी ने किया था। यह यज्ञ १९६३ विक्रमी सं. चैत्र शुक्ल द्वितीया से आरम्भ होकर चैत्र शुक्ल सप्तमी तक (तदनुसार ६ अप्रैल १९०५ ई. से लेकर ११ अप्रैल तक) निर्विघ्न चल कर समाप्त हुआ था। इस प्रकार स्वामीजी के सेवक ही स्वयं अग्निहोत्री न थे, अपितु उनके पुत्र भी अग्निहोत्री थे। दोनों ने इस महनीय यज्ञ का सम्पादन कर वैदिक कर्म का यथेष्ट निष्ठापूर्वक विधान किया था। यह वंश आज भी है और उसमें ब्राह्मण-आचार-विचार का निष्ठापूर्वक पालन होता है। इस वंश में स्वामीजी का हाथ से बना एक प्राचीन चित्र भी है जिसकी नित्य पूजा होती है।

पण्डित विश्वेश्वरदत्त पाण्डेय

स्वामी महादेवाश्रम के शिष्य थे जिसका उल्लेख इन्होंने अपने ग्रन्थ में किया है। 'हरसूब्रह्म' बिहार प्रान्त के रोहतास मण्डल के चैनपुर गाँव के निवासी ब्राह्मण थे जिन्होंने वहाँ के शासक राजा के अत्याचारों से पीड़ित होकर अपने जीवन का बलिदान कर दिया। अतः वे ब्रह्मरूप में माने जाते हैं और दूर-दूर के लोग पुत्र-कामना, रोगनिवृत्ति, दारिद्र्य-निवारण आदि भौतिक दुःखों की निवृत्ति के लिए पूजन के निमित्त आते हैं और मनोरथ पूर्ण होने पर विशेष अर्चना करते हैं। इसी ब्राह्मण के वंशज रघुवर पण्डित के पुत्र पं. रामहर्ष पाण्डेय इनके पिता थे। ये काशी में ही रहते थे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा स्वामी महादेवाश्रमजी के विशेष कृपापात्र थे। इनकी दो स्तुतिपरक संस्कृत-रचनाएँ हैं—(१) **रामनाममाहात्म्य** तथा (२) **पतितपावनस्तोत्र**। काशी के करनघंटा मुहल्ले में स्थित 'आर्ययन्त्रालय' में ये ग्रन्थ विक्रम सं. १९३८=१८८१ ईस्वी में मुद्रित हुए थे। इन्होंने ग्रन्थ में अपने को भागवताध्यापक लिखा है जिससे इनका कथावाचक व्यास होना सिद्ध होता है। स्तोत्रों के श्लोक सुन्दर एवं भक्तिपूरित हैं। प्रथम स्तोत्र में 'कलौ केवलं राजते रामनाम' यही प्रत्येक पद्य का सर्वत्र चतुर्थ चरण है। यथा—

हनूमान् स्वरोमावलीकोटिभिर्यज्जपन् यद्यशःस्तोमपीयूषपानम्।
पिबत्यात्मकर्णेन सर्वं विहाय कलौ केवलं राजते रामनाम॥

अन्तिम पद्य में अपने गुरुजी का नाम्ना उल्लेख किया है—

काश्यां सदैव गोघट्टतटे स्फुटमकण्टकम्।
महादेवाश्रम-स्वामिश्रीगुरोश्चरणाम्बुजम्॥ १४१ ॥

इधर स्वामीजी के विषय में नवीन वृत्त प्राप्त हुआ है जिससे अनेक नूतन तथ्य प्रकाश में आए हैं। स्वामीजी उत्तर प्रदेश के ही आजमगढ़ मण्डल के सिकन्दरपुर परगना के अन्तर्गत तुरकी ग्राम के निवासी घृतकौशिक गोत्री यजुर्वेदी पण्डित रामधन मिश्र के पौत्र तथा हरिनारायणदत्त मिश्र के पुत्र थे, जन्म संवत् १८३३ विक्रमी। बाल्यावस्था में ही इनका विवाह हुआ, परन्तु पत्नी का शीघ्र ही निधन हो गया। १६ वर्ष की वय तक अपने पितामह से ही संस्कृत का अध्ययन किया। काशी आने पर इनके ज्ञान में प्रौढ़ता आई जब इन्होंने **बालं भट्ट** के पास **प्राणनाथ आचार्य** से सपरिष्कार व्याकरण का तथा **अहोबल शास्त्री** से दर्शनों का, विशेषकर अद्वैत वेदान्त का अध्ययन किया। छेदू मिश्र नामक एक वादीन्द्र पण्डित को शास्त्रार्थ में जीतकर विपुल कीर्ति अर्जित की। महाराजा हथुआ के आग्रह पर इन्होंने उनके विद्यालय में बारह वर्षों तक अध्यापन किया तथा उमादत्त त्रिपाठी और सीताराम द्विवेदी जैसे विद्वानों को तैयार किया। राजा के किसी विवाह में अपने गुरुवर्य प्राणनाथ आचार्य से भेंट करने आए और वहीं 'ब्राह्मण-प्रशंसा' के विषय में चार घंटों तक विशुद्ध संस्कृत में भाषण करके इन्होंने विद्वन्मण्डली को चमत्कृत कर दिया। मझौली के राजा अजित मल्ल सिंह ने इन्हें दक्षिणा के रूप में दो गाँव दिए। पिता की मृत्यु के अनन्तर ये उनका गयाश्राद्ध निष्पन्न कर नितान्त विरक्त हो गए और काशी में ही **पूर्णानन्द स्वामी** से संन्यास-दीक्षा ली। स्वामीजी के विषय में पण्डित बेचनराम त्रिपाठी तथा पण्डित शीतलप्रसाद त्रिपाठी ने लेख लिखा था जो काशी विद्या सुधानिधि के १८७३ ई. के जनवरी अंक में प्रकाशित हुआ था। इसी के आधार पर यह नवीन वृत्त चर्चित किया गया है।

श्री रामनिरञ्जन स्वामीजी का १९२९ विक्रमी (१८७२ ई.) में काशीवास हो गया। शास्त्रीय पाण्डित्य तथा आध्यात्मिक साधना में ये अपने युग के अलौकिक मनीषी विद्वान् थे।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

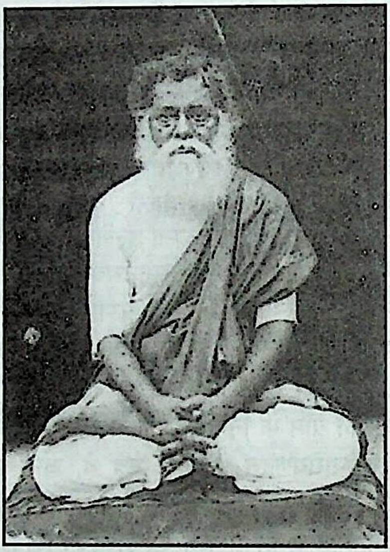

स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती

श्री स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती उन्नीसवीं शताब्दी में काशीस्थ संन्यासियों में अपनी अलौकिक वैदुषी, नूतन कल्पनामयी शेमुषी तथा लोकातीत योगविद्या के प्रभाव से शीर्षस्थान पर विराजमान थे। उन्होंने बड़ी दीर्घ आयु पाई थी। जन्म तो उनका हुआ था उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण के अन्तिम वर्षों में और उनका कैलासवास हुआ था शताब्दी के अन्तिम वर्ष। इस सुदीर्घकाल में उन्होंने अनेक प्रौढ़ शिष्यों को तैयार किया जिन्होंने भारतीय दर्शन की विभिन्न शाखाओं में—विशेषकर अद्वैतवेदान्त एवं मीमांसा में—विशेष प्रौढ़ि प्राप्त कर उन शास्त्रों के परिवर्धन तथा विकास में विशेष योगदान दिया। उनके जीवन की महनीय उपलब्धि थी आर्यसमाज के विख्यात संस्थापक **स्वामी दयानन्द सरस्वती** के ऊपर अपनी विद्वत्ता की धाक जमाकर उस ऐतिहासिक शास्त्रार्थ में विजयश्री का वरण। इस एक ही घटना ने स्वामी विशुद्धानन्दजी का नाम भारतीय धार्मिक जनता के हृदय में सदा-सर्वदा के लिए अंकित कर दिया। इन्हीं स्वामीजी के जीवन की एक दिव्य झाँकी हम विज्ञ पाठकों के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं।

वंश तथा जन्म

उत्तर प्रदेश के सीतापुर मण्डल के वीड़ी नामक ग्रामवासी स्वामीजी का जन्म एक मध्यमवर्गीय सनातनधर्मी कान्यकुब्ज ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। पिता का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाम था संगमलाल शुक्ल। वे स्वभाव से भगवान् सदाशिव महादेव के अनन्य उपासक थे। उन्हीं की धर्मपत्नी की कोख से १७४२ शाके (१८२० ई.) में स्वामीजी का आविर्भाव हुआ था। बाल्यकाल का इनका नाम था **वंशीधर**। ये बाल्यकाल में बड़े ही हृष्ट-पुष्ट शरीर के चपल शिशु थे। इनका जन्म इनके ननिहाल में हुआ था। इनके नाना लक्ष्मी के कृपापात्र थे। इनके मामा पण्डित लक्ष्मीधर शर्मा हैदराबाद के निजाम की सेना में एक वरिष्ठ अधिकारी थे। बालक की तीव्र बुद्धि तथा अलौकिक व्यवहार को प्रत्यक्ष करने वाले स्थानीय लोग इन्हें योगभ्रष्ट व्यक्ति मानने लगे थे।

दक्षिण हैदराबाद से पश्चिम तथा गुलबर्गा से उत्तर दिशा में अनुमानतः बीस कोस की दूरी पर कल्याणी नामक प्रख्यात नगर है। वहाँ के शासक हैदराबाद के नवाब के अधीन थे तथा ओहदा में न्यून होने पर भी वे भी नवाब ही कहलाते थे। उन्हीं के सैनिक रूप में अवध के कान्यकुब्ज ब्राह्मण वहीं नौकरी करते थे। ये चार भाई थे जिनमें द्वितीय भ्राता सबसुखराम बड़े बुद्धिमान् तथा चतुर व्यक्ति थे। स्वामीजी के पिता संगमलाल शुक्ल नौकरी की तलाश में घर से निकले और वहीं कल्याणी में पहुँच गए। वहीं नवाब के पास ही सेना के सिपाही के यहाँ नौकरी उन्हें मिल गई परन्तु वे पूर्वनिर्दिष्ट कान्यकुब्ज परिवार के साथ ही रहते थे। उस परिवार की एकमात्र कन्या थी जिसका नाम यमुना था। भाइयों ने इन्हीं यमुना देवी से संगमलालजी का विवाह कर दिया और ये दम्पती सुख से वहीं रहने लगे। इनको दो सन्तानें हुईं परन्तु बाल्यकाल में दिवंगत हो गईं। वंशीधरजी भगवान् शंकर की आराधना के फलरूप उत्पन्न हुए, परन्तु आरम्भ में शरीर से दुर्बल थे। जब ये तीन साल के थे, तभी एक विचित्र घटना घटी। नवाब का कोई राजपूत सैनिक संग्राम में कहीं मर गया था। उसकी पतिव्रता पत्नी वहीं सती होने जा रही थी। अपनी भावजों के कहने पर यमुना ने भी वंशीधर को चिता की परिक्रमा कराने तथा सती का आशीर्वाद लेने को भेजा। सती होने वाली पतिव्रता ने बालक को गोद में उठा लिया और आशीर्वाद दिया जिससे इनकी व्याधि दूर हो गई। इनका जन्म १८२० ईस्वी में कृष्ण जन्माष्टमी की ठीक अर्धरात्रि में कल्याणी में हुआ। ये १८३९ ई. में कल्याणी से तीर्थाटन के लिए उत्तराखण्ड गए। यात्रा में दस वर्ष व्यतीत किये। अनन्तर १८५० ई. में काशीधाम में विद्या तथा संन्यास की प्राप्ति के लिए आ गए।

बाल्यकाल में एक ऐसी घटना घटी जिससे इनकी योगभ्रष्टता का प्रमाण लोगों को मिलने लगा। जब ये तीन-चार साल के ही थे, तब इन्हें अपस्मार रोग हो गया। इस आकस्मिक रोग के निवारण के लिए माता-पिता तथा बन्धुजनों ने बड़ा उद्योग किया, बड़े कुशल चिकित्सकों से चिकित्सा कराई, परन्तु रोग में ह्रास नहीं हुआ। तब इन्होंने अपने पिता से कहा—''पिताजी, मेरे रोग का निवारण किसी औषध से नहीं होगा, कुटिया के ऊपरी खण्ड में रखी हुई पुस्तक को देखने से मेरा यह रोग निवृत्त हो सकेगा।'' पिताजी ने खोज की परन्तु पुस्तक मिली नहीं। तब उन्होंने इसे प्रलाप मानकर उसकी अवहेलना की और किसी प्रकार बालक के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रुग्णावस्था में ही दिन बीतने लगे। कुछ समय बाद एक विचित्र घटना हुई। कल्याणी से दस कोस उत्तर दिशा में 'औरात' नामक ग्राम है। गाँव के पास कीर्णा तथा मञ्जीरी नामक नदियों के संगम पर वसन्तकाल में मेला लगता था। उस साल भी वह मेला वहाँ लगा। उसमें जाने के लिए बालक ने बड़ा हठ किया। फलतः इनके मामा इन्हें उस पवित्र संगमस्थल पर ले गए तथा स्नानादि करने के बाद तीर पर ही एक कुटिया में रहने वाले योगीश्वर के आश्रम में जब जाने लगे, तब यह बालक वहाँ स्वयं भी जाने के लिए आग्रह करने लगा। मामा बालक को लेकर उस आश्रम में गए, बालक ने उस आश्रम के संन्यासीजी को प्रणाम किया और कहने लगा— "इस कुटिया के ऊपर मेरी पुस्तक रखी हुई है। उसे मँगवाइए, तब मेरा रोग हट जाएगा।" आदमी उसे खोजकर ले आया। वह पोथी जो कपड़े के बेठन में बँधी थी, बालक को दी गई। बालक उसे अपने हाथ में लेकर बोल उठा—'बस अब मेरा रोग हट गया। अब मैं भला-चंगा हो गया।' मठ के स्वामीजी इस घटना को देखकर अचंभित हुए और विश्वास-भरे शब्दों में कहा कि "यह बालक हो न हो इस मठ का अधिपति मेरा गुरु है। तीन साल पूर्व मेरे गुरुजी का यहीं स्वर्गवास हुआ था। मृत्यु के कुछ दिन पूर्व ही वह कहा करते थे—"कुटिया के ऊपर गीता की पोथी रखी हुई है। उसे ले आओ। उसके दर्शन से ही मैं रोगमुक्त हो जाऊँगा।" पुस्तक बहुत परिश्रम से खोजने पर भी न मिल सकी। आश्चर्य है कि वही पुस्तक आज मिल गई। इस बालक को इस तथ्य की स्मृति आज भी जागरूक रही। फलतः यह मेरे गुरुजी का अवतार है। गृहस्थी में तो यह रहेगा ही नहीं। यह कोई विशिष्ट मनीषी महात्मा होगा। आप लोग इसकी विधिवत् सेवा करें।"

सैनिक-वृत्ति

माता-पिता बालक को लेकर घर लौटे परन्तु उनके भाग्य में बालक के अलौकिक चरित्र देखने का सुयोग नहीं था। सातवें साल में पिता तथा ११वें साल में माता—वे दोनों अपने भविष्णु आत्मज को मातुल के संरक्षण में देकर स्वयं स्वर्गवासी हो गए।

बालक के मामा स्वयं सेना के वरिष्ठ अधिकारी थे। उन्होंने अपने भांजे को उसी सैनिक-सेवा के लिए तैयार करने की अभिलाषा से उसकी शारीरिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। अश्वारोहण, खड्ग-संचालन आदि के शिक्षण के साथ ही व्यायाम पर अत्यधिक बल देने पर बालक का शरीर बड़ा ही हृष्ट-पुष्ट हो गया। १८ वर्ष की वय में मामा वंशीधर को अपने साथ हैदराबाद ले गए और वहीं निजाम की सेना में इन्हें किसी सैनिक पद पर नियुक्त करा दिया।

वंशीधर को भौतिक सौख्य की सब सामग्री उपलब्ध थी। मामा ऊँचे पदाधिकारी थे। कमी ही क्या हो सकती थी? परन्तु इनका मन उस कार्य से उचट गया। ये जंगलों में प्रायः जाकर एकान्त-चिन्तन किया करते थे। फलतः जन्मान्तर की सुप्त विरक्त भावना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

अवसर पाकर प्रबुद्ध हो उठी। नवाब की नौकरी छोड़कर ये तीर्थों में विद्वानों तथा विरक्त महात्माओं के दर्शन के लिए हैदराबाद से उत्तर की ओर चल निकले।

स्वामीजी की उत्तराखण्ड की यात्रा

पण्डित वंशीधर शुक्ल माता-पिता की मृत्यु के अनन्तर नवाब की सेना से अपने को मुक्त कर विरक्त भाव से एक दिन अपने घर से निकल पड़े। ये प्रसिद्ध तीर्थ तथा विद्यानगरी, गोदावरी के तट पर स्थित नासिक पहुँच गए। उस समय उनकी उम्र १७ वर्ष की थी। तेरह वर्ष तक यहाँ वेदों का गंभीर अध्ययन किया। अनन्तर ये उत्तराखण्ड की यात्रा के लिए आगे बढ़े। उस युग में यह स्थान डाकू तथा ठगों से भरा हुआ था। रास्ते में इनको एक ठग ने जहर खिला दिया। मरने की नौबत आई परन्तु उसी जगह एक पटेल के उद्योग से बच गए। नर्मदा के प्रसिद्ध तीर्थ 'ॐकारनाथ' पहुँचे। यहीं किसी ब्राह्मण ने अपनी चार पुत्रियों की शादी के लिए प्रार्थना की। इनके मित्र **गंगाधर राव** नामक आर्थिक धनाढ्य व्यक्ति थे। उनकी सहायता से उस ब्राह्मण के मनोरथ की सिद्धि की। पश्चात् ये उज्जैन गए। वहाँ से ग्वालियर होते हुए ये बिठूर पहुँचे जहाँ उस समय अन्तिम पेशवा निवास करते थे। इन्हीं दिनों अन्तिम पेशवा पूना के अनेक पण्डित ज़नों तथा सभासदों, वरिष्ठ मंत्रियों के संग बिठूर में ही रहते थे। यहीं रहकर वंशीधरजी ने **श्रीराघवेन्द्राचार्य** नामक पण्डित से व्याकरण का अध्ययन शुरू किया और तीन वर्षों में ही इन्होंने पाणिनीय व्याकरण के भाष्यान्त ग्रन्थों का विधिवत् अध्ययन तथा मनन किया। बिठूर से चलकर ये हरिद्वार के मार्ग से बदरिकाश्रम गए। भगवान् बदरीनाथ का दर्शन कर ये उसी रास्ते से लौट आए और तीन वर्ष हरिद्वार में निवास कर कठिन तपस्या द्वारा अपने को संन्यासी-जीवन के लिए तैयार कर लिया। १८३९ ई. में ये कल्याणी से चले थे और ११ वर्ष में उत्तराखण्ड की यात्रा पूरी कर १८५० ई. में काशी आ गए।

स्वामीजी : काशी में

काशी प्राचीनकाल से विद्या का केन्द्र रही है और अध्यात्मविद्या के शिक्षण तथा अनुसंधान के लिए इससे बढ़कर भारतवर्ष में कोई भी विद्यापीठ नहीं है। मध्ययुग में काशी के संन्यासियों ने अपने विमल चरित्र एवं प्रामाणिक रचना के द्वारा समस्त भारतवर्ष के संन्यासियों के लिए एक अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया जो नितान्त अनुकरणीय तथा श्लाघनीय है। ब्रह्मचारी वंशीधर शुक्ल ने इसीलिए संन्यास आश्रम में दीक्षा लेने के लिए काशी के निमित्त हरिद्वार से प्रस्थान किया और चार महीनों में पैदल यात्रा कर काशी आए। उन्होंने सुन रखा था कि काशी में दशाश्वमेध घाट के समीप ही अहिल्याबाई घाट पर इस युग के नितान्त विश्रुत तथा मनीषी विद्वान् संन्यासी **श्री गौड स्वामी** निवास करते हैं। वे उस समय के काशीस्थ संन्यासियों में शीर्षस्थान पर विराजमान माने जाते थे। उनकी विद्या-बुद्धि उन्हें लोकातीत वैदुष्य से मण्डित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करती हुई विद्वज्जनों के हृदय में दृढ़ भक्ति तथा गाढ़ अनुराग उत्पन्न करती थी—

शास्त्रेषु प्रतिबुद्धधीर-धिषण: सिद्धान्तदीक्षागुरु-
वैराग्योज्वलदीप-दीप्तमहसा रागं तमो ध्वंसयन्।
आत्मन्यात्मसमीक्षणव्यसनिना योगेन भास्वद्वपु:
साक्षादिन्दुललाटमूर्तिरनिशं भस्माङ्कभालस्थल: ॥

यह पद्य उनके विशाल व्यक्तित्व तथा अद्भुत अध्यात्मज्ञान के सामान्य आभास का द्योतन कर रहा है। वे योगिराज भगवान् शंकर के ही भास्वान् विग्रह थे।

वंशीधरजी को देखकर तथा उनका परीक्षण कर गौड स्वामी ने उन्हें खरा सोना पाया और संन्यासाश्रम में दीक्षित होने की उनकी अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए वे उद्यत हुए। शुभमुहूर्त में दीक्षा का यह पुण्यमय कार्य सम्पन्न हुआ। ब्रह्मचारी वंशीधर अब दीक्षित होने पर **विशुद्धानन्द सरस्वती** के नूतन अभिधान से प्रसिद्ध हुए। दर्शन के मार्मिक विद्वान् गौड स्वामी ने विशुद्धानन्दजी को दर्शन के नाना सम्प्रदायों का विधिवत् अध्ययन कराया। योगमार्ग के पथिक विशुद्धानन्दजी की बुद्धि बड़ी तीव्र तथा तलस्पर्शिनी थी। कुछ समय के अध्ययन से वे नाना शास्त्रों में—विशेषत: मीमांसा तथा अद्वैतवेदान्त में—नितान्त निष्णात हो गए। इन शास्त्रों के चूडान्त ग्रन्थों का उन्होंने आलोड़न तथा अनुशीलन किया और गुरुजी के आदेश से वे श्रद्धालु छात्रों को इन गंभीर शास्त्रों का अध्यापन भी करने लगे। इनकी विपुल कीर्ति से आकृष्ट होकर अन्य प्रान्तों से भी छात्र यहाँ आने लगे और स्वामीजी के उपदेश तथा शिक्षण से प्रौढ़ विद्वत्ता के अधिकारी बन गए। समय बीतते देर नहीं लगती। गौड स्वामीजी नितान्त वृद्ध थे ही। १९१६ विक्रमी (१८५९ ई.) में वे कैलासवासी हो गए। उस समय विशुद्धानन्दजी अपने वैदुष्य, तपस्या तथा प्रभाव के चरम उत्कर्ष पर पहुँचे थे। गुरुजी की रिक्त गद्दी पर अभिषिक्त होकर ये विराजने लगे। गुरु के स्थान पर मठ का अधीश्वर बनकर गुरुजी की विद्या-परम्परा को आगे बढ़ाने का सुयोग्य प्राप्त कर लेना विशुद्धानन्दजी के जीवन के पूर्वार्ध की चरम परिणति थी।

स्वामीजी का सार्वभौम प्रभाव

विशुद्धानन्द स्वामी अलौकिक विद्वान् होने के अतिरिक्त सिद्ध महायोगी थे। उनके यहाँ सरस्वती तथा लक्ष्मी का नैसर्गिक विरोध शान्त हो गया था। जितने बड़े ये विद्वान् थे उतने बड़े लक्ष्मी के कृपापात्र भी थे। चंचला लक्ष्मी प्रतीत होता था इनके यहाँ अपनी चपलता को त्याग कर स्थिरता धारण कर बैठी हुई हैं। यह वैभव अयाचित था, अप्रत्याशित था। उत्तर भारत के राजा-महाराजा उनके चरणों की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त कर अपने को धन्य मानते थे, अपने जीवन को कृतार्थ समझते थे और उनसे मन्त्र-दीक्षा लेकर शिष्य बनने में अपना गौरवबोध करते थे। उत्तर भारत के समग्र प्रख्यात नरेश उनके मठ में समय-समय पर सेवाकार्य के लिए आते थे। स्वामीजी का सचमुच दरबार लगा करता था। द्वार पर चोबदार अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ड्यूटी बजाता था। कोई भी आगन्तुक तथा दर्शनार्थी—चाहे वह सामान्यजन हो या धनकुबेर नरेश हो—बिना उनकी आज्ञा के प्रवेश नहीं पा सकता था। स्वामीजी स्वयं राजसी ठाट-बाट से घिरे रहते थे, परन्तु इनके हृदय में विषयों के प्रति तनिक भी आकर्षण नहीं था। ये परम वैराग्य के अधिकारी पुरुष थे—विषयानुरक्ति से कोसों दूर, लोकैषणा के स्पर्श से वर्जित, परन्तु थे वे धनाढ्य भक्तजनों के आग्रह से साजसज्जा के आवरण को आपाततः स्वीकार करने वाले महनीय सन्त पुरुष।

स्वामीजी की विरक्ति

एक विचित्र घटना का उल्लेख उनकी मनोवृत्ति का साक्षात् परिचायक माना जा सकता है। एक बार हथुआ के महाराजा कृष्णप्रताप शाही स्वामी विशुद्धानन्दजी के स्थान पर दर्शनार्थ आए। परन्तु इन्हें बेशकीमती शय्या पर बैठे, सोने-चाँदी के बरतनों से घिरा हुआ देखकर उनके मन में बड़ा ही कौतूहल जागा। ऐं, स्वामी होकर इतना ठाट-बाट!!! उन्होंने अपने राजसी अभिमान के वशीभूत होकर पूछ ही तो डाला, "स्वामीजी महाराज, स्वामियों का धर्म तथा कर्तव्य क्या है?" विशुद्धानन्दजी का इस बेहूदे सवाल पर रंज होना स्वाभाविक था। इन्होंने चोपदार को जोरों से पुकारा और कहा कि इस राजा को कान पकड़ कर हमारे मठ से बाहर निकालो। हथुआ महाराज इस आदेश को सुनते ही स्वामीजी को प्रणाम कर उलटे पाँव तुरन्त लौट आए। वे काशीनरेश प्रभुनारायण सिंह के पास गए और अपनी गलती कह सुनाई और स्वामीजी को मनाने की बात उनसे पूछी। काशीनरेश (जो हथुआ महाराज के सजातीय ही नहीं, अपितु सम्बन्धी भी थे) ने उन्हें बताया कि स्वामीजी बड़े दयालु हैं। ऐसा ऊटपटाँग सवाल तो उनसे पूछना नहीं चाहिए था आपको। आप स्वयं आदेश लेकर जाइए और उनसे क्षमा माँगिए। वे अवश्य क्षमा कर देंगे।

दूसरे दिन हथुआनरेश स्वामीजी का आदेश लेकर उनके पास गए और अपने दुर्व्यवहार के लिए क्षमा माँगी। विशुद्धानन्दजी ने बड़े सरलभाव से कहा—"राजा साहब, मेरे भक्त लोग ये उपहार मुझे दे जाते हैं और उनकी इच्छा रखने के लिए ही मुझे इन्हें व्यवहार में लाना पड़ता है। यदि ऐसा न करूँ, तो उन्हें क्लेश होता है, परन्तु मेरा मन इसमें तनिक भी नहीं रमता। मेरे लिए तो हाथ की हथेली ही पात्र है और बिस्तर से विहीन भूमि ही मेरे लिए सेज है। आपका पूछना उचित ही था। मैं आपसे अप्रसन्न नहीं हूँ।"

हथुआनरेश इस समुचित उत्तर से बड़े ही प्रभावित हुए और उन्होंने स्वामीजी की मनोवृत्ति के सच्चे रूप का परिचय पाया। वे स्वामीजी के केवल प्रशंसक ही नहीं बने, अपितु उन्होंने उनका आज्ञाकारी शिष्य बनने में अपना अहोभाग्य माना।

स्वामीजी की शिष्य मण्डली

स्वामीजी महाराज की शिष्यकोटि में अन्तर्भुक्त होने वाले राजाओं में कश्मीर, ग्वालियर, इन्दौर, बूँदी, मिथिला तथा जयपुर के नरेशों के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शासक लोग विशुद्धानन्दजी को अपना दीक्षागुरु ही नहीं मानते थे, अपितु व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक उभय प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए भी इनके उपदेश तथा परामर्श को अपना मार्गदर्शक स्वीकारते थे। जम्मू-कश्मीर के महाराज प्रतापसिंह तथा मिथिलानरेश लक्ष्मीश्वर सिंह ने स्वामीजी से इनके मठ के खर्च के लिए विशेष द्रव्य लेने के लिए आग्रह किया, परन्तु इन्होंने वह द्रव्य लेना अस्वीकार कर दिया और काशी में संस्कृत-विद्यालय की स्थापना के लिए उस द्रव्य के उपयोग का आदेश दिया। दोनों राजाओं ने अपने अलग-अलग विद्यालयों की स्थापना स्वामीजी की आज्ञा से कर दी। कश्मीरनरेश ने **रणवीर-संस्कृत-पाठशाला** की स्थापना की जो आज हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत स्थित होकर विशेष उन्नति कर रहा है। दरभंगानरेश ने **दरभंगा-संस्कृत-पाठशाला** नामक एक बड़े ही सुव्यवस्थित विद्यालय की स्थापना की जिसमें महामहोपाध्याय **पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी** आजीवन अध्यापक रहे तथा म.म. दामोदर शास्त्रीजी एवं म.म. तात्या शास्त्रीजी भी गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज में नियुक्ति के पूर्व अनेक वर्षों तक छात्रों का अध्यापन करते थे। किसी समय में प्रथम श्रेणी का यह विद्यालय आज उपेक्षित दशा में अपने दिन काट रहा है।

काशीनरेश प्रभुनारायण सिंह भी विशुद्धानन्दजी के अनन्य सेवक थे तथा इनके धार्मिक आदेशों का विधिवत् पालन करते थे। वे संस्कृत भाषा तथा साहित्य के भी बहुत ही अच्छे जानकार थे। उनकी सुन्दर समस्यापूर्तियाँ भी संस्कृत की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं। उनकी रूपकमयी रचना 'पार्थपाथेय' के नाम से प्रकाशित है तथा विद्वानों में समादृत है। अवध-मण्डलान्तर्गत 'सिसेंडी' राज्याधिपति योगीन्द्र त्रिपाठिवंशावतंस **राजा चन्द्रशेखर त्रिपाठी** स्वामीजी के द्वारा योगविद्या में दीक्षित होकर उच्चकोटि के योगाभ्यासी हो गए थे। वे हिन्दी में कविता भी करते थे। स्कन्दपुराण के उत्तरखण्ड में उमा-महेश्वर-संवाद रूप में २७३ पद्योंवाली **गुरुगीता** पर्याप्त प्रसिद्ध है जिसमें गुरु की अलौकिक महिमा का प्रतिपादन किया गया है। राजा चन्द्रशेखर ने इसी का हिन्दी दोहा-चौपाइयों में बड़ा ही सुबोध अनुवाद किया जो काशी के ही 'काशी यन्त्रालय' में १९६९ विक्रमी (=१९१२ ई.) में मुद्रित होकर प्रकाशित है।

यह तो है स्वामीजी के भूमिपति शिष्यों का संक्षिप्त परिचय। अब मध्यम-वर्गीय शिष्यों का उल्लेख किया जाता है। इस कोटि के उनके शिष्यों की एक लम्बी परम्परा है। कतिपय प्रख्यात शिष्यों का उल्लेख पर्याप्त होगा। पण्डितप्रवर **दुःखभंजन कवीन्द्र** आपके गण्यमान्य शिष्य थे। ये उस युग के काशीस्थ कविजनों में शीर्षस्थान के अधिकारी माने जाते थे। ये शाक्त तान्त्रिक थे जिनकी अलौकिक प्रतिभा की कथा काशी के विद्वत्समाज में पर्याप्तरूपेण विस्तृत तथा व्याप्त थी।

व्याख्यान-वाचस्पति **दीनदयालु शर्मा** जो सनातनधर्म के उपदेशकों में लब्धवर्ण विद्वान् थे, स्वामीजी के ही शिष्य थे। शर्माजी अपने समय के सनातनधर्म के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महनीय उपदेशकों में शीर्षस्थानीय, बड़े ही प्रौढ़ व्याख्याता थे। आर्य समाज के विद्वानों से शास्त्रार्थ करने तथा सनातनधर्मी पक्ष के उन्नयन में पं. दीनदयालुजी का नाम सदा स्मरणीय रहेगा।[१] श्री बालशास्त्री को काशीलाभ हो जाने पर म.म. शिवकुमार पण्डितजी ने स्वामीजी से 'अद्वैतसिद्धि' का अध्ययन किया तथा '**खण्डनखण्डखाद्य**' में प्रौढ़ता प्राप्त की। वैद्यराज उमाचरण कविराज ने दर्शन के ग्रन्थों का अध्ययन विशुद्धानन्दजी से किया। अन्तिम कोटि के शिष्यों में महामहोपाध्याय पण्डित प्रमथनाथ भट्टाचार्य का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने **विजयप्रकाश**[२] नामक काव्य में विशुद्धानन्दजी का जीवन-चरित बड़े ही ललित छन्दों में लिखा है। इस काव्य में लम्बे-लम्बे वृत्तों में निबद्ध २०८ पद्य हैं। भाषा सुबोध तथा शैली प्रसादमयी है। ग्रन्थ के अन्त में इन्होंने अपने पिता का नाम ताराचरण भट्टाचार्य लिखा है (२०७ पद्य) जो काशीनरेश ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह के सभा-पण्डित थे। प्रमथनाथजी आगे चलकर हिन्दू विश्वविद्यालय के 'संस्कृत-महाविद्यालय' के अध्यक्ष बने थे। उस समय (१८९१ ई.) में ये दरभंगा-संस्कृत-पाठशाला में अलंकार तथा न्यायशास्त्र के अध्यापक थे। काशीनरेश प्रभुनारायण सिंह की आज्ञा से संस्कृत में प्रणीत यह काव्य स्वामीजी की जीवन-घटनाओं की जानकारी के लिए सर्वथा प्रामाणिक एकमात्र ग्रन्थ है। यह स्वामीजी के जीवित काल में प्रकाशित हुआ था।

एक बार स्वामीजी अपनी शिष्य-मण्डली के साथ हरिद्वार-यात्रा पर गए थे गंगास्नान के निमित्त। अपनी पूर्व परिचित तपःस्थली हरिद्वार का पुनः दर्शन कर ये अत्यन्त प्रसन्न हुए। संभवतः इसी यात्रा के अवसर पर कश्मीरनरेश रणवीर सिंह इन्हें बड़े आदर-सत्कार के साथ अपनी राजधानी श्रीनगर ले गए थे। कुछ दिनों तक स्वामीजी ने वहीं निवास किया। अनन्तर ये काशी लौट आए। लौट आने पर दरभंगानरेश लक्ष्मीश्वर सिंह ने प्रवास की बातें पूछीं और किसी विचित्र वस्तु का निर्देश करने के लिए संकेत किया। स्वामीजी ने कहा—"वहाँ मैंने बड़ी सुन्दर बावड़ी देखी जिसमें नहाने-धोने का उत्तम प्रबन्ध था। इसी प्रकार की बावड़ी काशी में बन जाए, तो जनता का बड़ा हित हो।" स्वामीजी का संकेत ही पर्याप्त था। लक्ष्मीश्वर सिंह ने रोहनिया थाने के पास, काशी से आठ-दस मील की दूरी पर, स्वामीजी के मठ के पास ही एक बड़ी विशाल बावड़ी बनवा दी जो आज भी जनता का कल्याण कर रही है। उसी के किनारे गणेश तथा मारुतनन्दन हनुमान्जी की विशाल मूर्ति की स्थापना की गई है। स्वामीजी प्रतिवर्ष गणेशजी का विधिवत् पूजन किया करते थे और उस माध्यम से अपने शिष्यों को कर्मकाण्ड की मानो शिक्षा दिया करते थे। यहाँ गणेश की स्वच्छ संगमरमर की बड़ी ही भव्य तथा सुन्दर प्रतिमा है। हनुमान्जी की मूर्ति काले पत्थर से निर्मित है। आज भी ये दोनों मूर्तियाँ उसी स्थान पर विराजमान हैं तथा सर्वथा दर्शनीय हैं।

---

१. द्रष्टव्य—म.म. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी : आत्मकथा

२. वाराणसी के 'अमर यन्त्र' नामक प्रेस में मुद्रित, १९४८ विक्रमी (१८९१ ई.)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शासक लोग विशुद्धानन्दजी को अपना दीक्षागुरु ही नहीं मानते थे, अपितु व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक उभय प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए भी इनके उपदेश तथा परामर्श को अपना मार्गदर्शक स्वीकारते थे। जम्मू-कश्मीर के महाराज प्रतापसिंह तथा मिथिलानरेश लक्ष्मीश्वर सिंह ने स्वामीजी से इनके मठ के खर्च के लिए विशेष द्रव्य लेने के लिए आग्रह किया, परन्तु इन्होंने वह द्रव्य लेना अस्वीकार कर दिया और काशी में संस्कृत-विद्यालय की स्थापना के लिए उस द्रव्य के उपयोग का आदेश दिया। दोनों राजाओं ने अपने अलग-अलग विद्यालयों की स्थापना स्वामीजी की आज्ञा से कर दी। कश्मीरनरेश ने **रणवीर-संस्कृत-पाठशाला** की स्थापना की जो आज हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत स्थित होकर विशेष उन्नति कर रहा है। दरभंगानरेश ने **दरभंगा-संस्कृत-पाठशाला** नामक एक बड़े ही सुव्यवस्थित विद्यालय की स्थापना की जिसमें महामहोपाध्याय **पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी** आजीवन अध्यापक रहे तथा म.म. दामोदर शास्त्रीजी एवं म.म. तात्या शास्त्रीजी भी गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज में नियुक्ति के पूर्व अनेक वर्षों तक छात्रों का अध्यापन करते थे। किसी समय में प्रथम श्रेणी का यह विद्यालय आज उपेक्षित दशा में अपने दिन काट रहा है।

काशीनरेश प्रभुनारायण सिंह भी विशुद्धानन्दजी के अनन्य सेवक थे तथा इनके धार्मिक आदेशों का विधिवत् पालन करते थे। वे संस्कृत भाषा तथा साहित्य के भी बहुत ही अच्छे जानकार थे। उनकी सुन्दर समस्यापूर्तियाँ भी संस्कृत की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं। उनकी रूपकमयी रचना 'पार्थपाथेय' के नाम से प्रकाशित है तथा विद्वानों में समादृत है। अवध-मण्डलान्तर्गत 'सिसेंडी' राज्याधिपति योगीन्द्र त्रिपाठिवंशावतंस **राजा चन्द्रशेखर त्रिपाठी** स्वामीजी के द्वारा योगविद्या में दीक्षित होकर उच्चकोटि के योगाभ्यासी हो गए थे। वे हिन्दी में कविता भी करते थे। स्कन्दपुराण के उत्तरखण्ड में उमा-महेश्वर-संवाद रूप में २७३ पद्योंवाली **गुरुगीता** पर्याप्त प्रसिद्ध है जिसमें गुरु की अलौकिक महिमा का प्रतिपादन किया गया है। राजा चन्द्रशेखर ने इसी का हिन्दी दोहा-चौपाइयों में बड़ा ही सुबोध अनुवाद किया जो काशी के ही 'काशी यन्त्रालय' में १९६९ विक्रमी (=१९१२ ई.) में मुद्रित होकर प्रकाशित है।

यह तो है स्वामीजी के भूमिपति शिष्यों का संक्षिप्त परिचय। अब मध्यम-वर्गीय शिष्यों का उल्लेख किया जाता है। इस कोटि के उनके शिष्यों की एक लम्बी परम्परा है। कतिपय प्रख्यात शिष्यों का उल्लेख पर्याप्त होगा। पण्डितप्रवर **दुःखभंजन कवीन्द्र** आपके गण्यमान्य शिष्य थे। ये उस युग के काशीस्थ कविजनों में शीर्षस्थान के अधिकारी माने जाते थे। ये शाक्त तान्त्रिक थे जिनकी अलौकिक प्रतिभा की कथा काशी के विद्वत्समाज में पर्याप्तरूपेण विस्तृत तथा व्याप्त थी।

व्याख्यान-वाचस्पति **दीनदयालु शर्मा** जो सनातनधर्म के उपदेशकों में लब्धवर्ण विद्वान् थे, स्वामीजी के ही शिष्य थे। शर्माजी अपने समय के सनातनधर्म के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महनीय उपदेशकों में शीर्षस्थानीय, बड़े ही प्रौढ़ व्याख्याता थे। आर्य समाज के विद्वानों से शास्त्रार्थ करने तथा सनातनधर्मी पक्ष के उन्नयन में पं. दीनदयालुजी का नाम सदा स्मरणीय रहेगा।[१] श्री बालशास्त्री को काशीलाभ हो जाने पर म.म. शिवकुमार पण्डितजी ने स्वामीजी से 'अद्वैतसिद्धि' का अध्ययन किया तथा '**खण्डनखण्डखाद्य**' में प्रौढ़ता प्राप्त की। वैद्यराज उमाचरण कविराज ने दर्शन के ग्रन्थों का अध्ययन विशुद्धानन्दजी से किया। अन्तिम कोटि के शिष्यों में महामहोपाध्याय पण्डित प्रमथनाथ भट्टाचार्य का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने **विजयप्रकाश**[२] नामक काव्य में विशुद्धानन्दजी का जीवन-चरित बड़े ही ललित छन्दों में लिखा है। इस काव्य में लम्बे-लम्बे वृत्तों में निबद्ध २०८ पद्य हैं। भाषा सुबोध तथा शैली प्रसादमयी है। ग्रन्थ के अन्त में इन्होंने अपने पिता का नाम ताराचरण भट्टाचार्य लिखा है (२०७ पद्य) जो काशीनरेश ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह के सभा-पण्डित थे। प्रमथनाथजी आगे चलकर हिन्दू विश्वविद्यालय के 'संस्कृत-महाविद्यालय' के अध्यक्ष बने थे। उस समय (१८९१ ई.) में ये दरभंगा-संस्कृत-पाठशाला में अलंकार तथा न्यायशास्त्र के अध्यापक थे। काशीनरेश प्रभुनारायण सिंह की आज्ञा से संस्कृत में प्रणीत यह काव्य स्वामीजी की जीवन-घटनाओं की जानकारी के लिए सर्वथा प्रामाणिक एकमात्र ग्रन्थ है। यह स्वामीजी के जीवित काल में प्रकाशित हुआ था।

एक बार स्वामीजी अपनी शिष्य-मण्डली के साथ हरिद्वार-यात्रा पर गए थे गंगास्नान के निमित्त। अपनी पूर्व परिचित तप:स्थली हरिद्वार का पुनः दर्शन कर ये अत्यन्त प्रसन्न हुए। संभवत: इसी यात्रा के अवसर पर कश्मीरनरेश रणवीर सिंह इन्हें बड़े आदर-सत्कार के साथ अपनी राजधानी श्रीनगर ले गए थे। कुछ दिनों तक स्वामीजी ने वहीं निवास किया। अनन्तर ये काशी लौट आए। लौट आने पर दरभंगानरेश लक्ष्मीश्वर सिंह ने प्रवास की बातें पूछीं और किसी विचित्र वस्तु का निर्देश करने के लिए संकेत किया। स्वामीजी ने कहा—"वहाँ मैंने बड़ी सुन्दर बावड़ी देखी जिसमें नहाने-धोने का उत्तम प्रबन्ध था। इसी प्रकार की बावड़ी काशी में बन जाए, तो जनता का बड़ा हित हो।" स्वामीजी का संकेत ही पर्याप्त था। लक्ष्मीश्वर सिंह ने रोहनिया थाने के पास, काशी से आठ-दस मील की दूरी पर, स्वामीजी के मठ के पास ही एक बड़ी विशाल बावड़ी बनवा दी जो आज भी जनता का कल्याण कर रही है। उसी के किनारे गणेश तथा मारुतनन्दन हनुमान्‌जी की विशाल मूर्ति की स्थापना की गई है। स्वामीजी प्रतिवर्ष गणेशजी का विधिवत् पूजन किया करते थे और उस माध्यम से अपने शिष्यों को कर्मकाण्ड की मानो शिक्षा दिया करते थे। यहाँ गणेश की स्वच्छ संगमरमर की बड़ी ही भव्य तथा सुन्दर प्रतिमा है। हनुमान्‌जी की मूर्ति काले पत्थर से निर्मित है। आज भी ये दोनों मूर्तियाँ उसी स्थान पर विराजमान हैं तथा सर्वथा दर्शनीय हैं।

---

१. द्रष्टव्य—म.म. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी : आत्मकथा
२. वाराणसी के 'अमर यन्त्र' नामक प्रेस में मुद्रित, १९४८ विक्रमी (१८९१ ई.)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामी विशुद्धानन्दजी उपनिषदों के विलक्षण विद्वान् थे। उनमें बहुत-सी विद्याएँ उल्लिखित हैं जिनका गूढ़ रहस्य समझना आजकल नितान्त दुर्लभ है। तथ्य यह है कि ये विद्याएँ उदात्त योग के सहारे ही गम्य हैं और नितान्त व्यावहारिक हैं। इसके लिए आवश्यकता है योगी गुरु की, जो उनका अभ्यास स्वयं व्यवहारत: करता हो और तद्रूप ही शिक्षा प्रदान करता हो। इन औपनिषद विद्याओं के ज्ञाता की कमी अवश्य है। विशुद्धानन्दजी योगविद्या के पारंगत विद्वान् थे। फलत: उन विद्याओं के रहस्य को समझने-समझाने में उनकी अद्‌भुत क्षमता थी। मृत्यु समीप आने पर प्राणोत्सर्ग विद्या के द्वारा उपनिषद् प्राणों के विसर्जन की शिक्षा देता है। स्वामीजी इस विद्या को पूर्णत: जानते थे। अध्यापन के समय वे इसका रहस्य शिष्यों को बताते भी थे। अन्तकाल में उन्होंने इसी विद्या का आश्रयण कर अपने प्राणों का विसर्जन किया था। अपने शिष्यों से कह दिया कि अब मेरे जाने का समय है। मुझे एकान्त में रहने दो और कोई मुझसे बातचीत न करे। वे आसन मार कर बैठ गए और इस औपनिषद विद्या की पद्धति से अपने प्राणों के उत्क्रमण को सिद्ध किया। तीन दिनों तक वे लगातार बैठे रहे और अन्त में उनका कैलासवास हो गया। इसके प्रत्यक्षदर्शी म.म. प्रमथनाथजी ने इसका विधिवत् वर्णन किया है। यह घटना १९५६ वि.सं. की है जब स्वामीजी ८० वर्ष की आयु के थे।

स्वामीजी के ग्रन्थ

स्वामी विशुद्धानन्दजी की कृतियों से हमें परिचय नहीं है, परन्तु बहुत खोज करने पर उनकी हिन्दी में **कपिलगीता** की व्याख्या उपलब्ध हुई है। इस ग्रन्थ की रचना स्वामीजी ने अपने प्रिय शिष्य अवधमण्डल के अन्तर्गत सिसेण्डीपुर के अधिपति राजा चन्द्रशेखर शर्मा त्रिपाठी की प्रार्थना से की थी और इसका प्रकाशन उन्हीं के दूसरे शिष्य पण्डित वासुदेव त्रिपाठी ने सं. १९४६ विक्रमी (फाल्गुन कृष्ण द्वादशी, रविवार) को किया था (१८८९ ई.)। काशी के ही 'अमर यन्त्रणालय' में ग्रन्थ का मुद्रण हुआ था। ग्रन्थ के अन्त में स्वामीजी ने अपने अधीत ग्रन्थों की एक लम्बी सूची दी है जिसमें न्याय, वेदान्त तथा योग के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का नाम उल्लिखित है। लिखा है कि "इन ग्रन्थों का गुरुमुख से अध्ययन करके अध्यापन भी किया। तदनन्तर अर्थवश से कालवचन का अनादर करके मनुष्य-मात्र के उपकारार्थ योग को अत्यन्त उपकारी जान के इस कपिलगीता की व्याख्या करके निजछात्र पण्डित वासुदेव त्रिपाठी से लिखवाया।" इसमें विशुद्धानन्दजी ने अपने गुरु का नाम उल्लिखित किया है—**तारक ब्रह्मानन्द सरस्वती**। ग्रन्थ के समापन का काल निर्दिष्ट है—संवत् १९४६ (१८८९ ई.) फाल्गुन कृष्ण पंचमी, सोमवार।

'कपिलगीता' के प्रवक्ता योगीश्वर कपिल ऋषि हैं। यह पद्मपुराण के अन्तर्गत बतलाया गया है। इसमें पाँच अध्याय हैं। **कपिलगीता** आदि से अन्त तक योगशास्त्र के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक उभयपक्षों से सम्बद्ध तत्त्वों का विस्तार से विवेचन प्रस्तुत करती है। समस्त ग्रन्थ योग के पारिभाषिक शब्दों का भण्डार प्रतीत होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसकी व्याख्या करने में योगशास्त्र के सिद्धान्त तथा व्यवहार उभयपक्ष का ज्ञाता व्यक्ति ही समर्थ हो सकता है और स्वामी विशुद्धानन्दजी में यह योग्यता प्रभूत मात्रा में थी। इसीलिए उनकी व्याख्या नितान्त सरल एवं प्रामाणिक है। स्वामीजी बड़े भारी योगी थे और कहा गया ही है कि देह त्यागने के समय जो प्रकार उपनिषदों में वर्णित है, उसी का अनुगमन कर उन्होंने अपना यह पाञ्चभौतिक शरीर छोड़ा था। फलतः वे इस गीता की व्याख्या करने के सर्वथा अधिकारी थे। एक ही उदाहरण यहाँ नमूने के तौर पर प्रस्तुत किया जाता है।

प्रथम अध्याय का २३वाँ श्लोक है—

पिपीलिका विहङ्गश्च कपिमार्गो हि मीनकः।
शेषमार्गो हि सङ्ख्यायां पञ्चमार्गाः पुरातनाः॥

इसकी व्याख्या स्वामीजी के शब्दों में इस प्रकार है—"ये जो पञ्च मार्ग हैं उनमें पिपीलिका मार्ग यह है कि—वृक्ष के अग्र में जाय के भी पिपीलिका दो पाँव को उठवाता है अवलम्ब मिले तो और बड़े शनैः-शनैः पूर्व भूमी का अवलम्बन करके उत्तर भूमी को अवलम्बन करता है ऐसे योगी अध ऊर्ध्व शून्य को अवलम्बन करके निःशून्य में जाता है। विहंगम मार्ग यह कहावे जो कि षट चक्रादिकों से अनपेक्ष योगी सप्तम चक्र जो पुण्याद्रि वहाँ मन को ले जाता है। कपि मार्ग वह कहावे जिस भूमि को जय करता है योगी उसको नहीं छोड़ता जैसा कि मुट्ठी में जो धरता उसको नहीं छोड़ता। मीन मार्ग वह कहावे जैसा की मीन उलटी धारा पर चलता है तैसा योगी मणिबल से अधो भाग से ऊर्ध्व भाग ब्रह्मरंध्र तक जाता है। शेष मार्ग वह कहावे जैसा कि सर्प बिल में जाय के निष्क्रिय होके वायु पीता है ऐसे ही योगी औट पीट अथवा पुण्याद्रि पर जाय के निष्क्रिय होता है।"

(*कपिलगीता*, पृ. १५-१६)

स्वामीजी की व्याख्या जैसी मुद्रित है वैसी ही ऊपर लिखित है। इसके पढ़ने से योग के इन सुप्रसिद्ध मार्गों का परिचय पूर्णतया मिलता है। साथ ही साथ हिन्दी के वाक्यों का प्रयोग तथा शब्दों की वर्तनी जिस प्रकार आज से एक सौ वर्ष पहले काशी के संन्यासियों द्वारा प्रयुक्त होती थी, उसकी भी एक झलक ऊपर के सन्दर्भ के अनुशीलन से मिल जाती है। भाषादृष्टि से भी इस पूरे ग्रन्थ का महत्त्व है।

स्वामी दयानन्द के साथ शास्त्रार्थ

स्वामी विशुद्धानन्दजी के जीवन की महती उपलब्धि थी स्वामी दयानन्दजी के साथ शास्त्रार्थ-विचार में विजयश्री का वरण। यह महत्त्वशाली ऐतिहासिक शास्त्रार्थ काशी में दुर्गाकुण्ड के समीपस्थ राजा अमेठी के 'आनन्दबाग' में सम्पन्न हुआ था। दयानन्द स्वामीजी का आवास इसी स्थान पर था। फलतः शास्त्रार्थ का यही स्थल था। समय था १९२६ वि.सं. की कार्तिक शुक्ला द्वादशी मंगलवार, तदनुसार १८६९ ई. १६ नवम्बर। ४८ वर्षीय काशीनरेश महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह अध्यक्ष के स्थान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर अपने १४ वर्षीय राजकुमार प्रभुनारायण सिंह के साथ विराजमान थे। उनके प्रधान सभापण्डित ताराचरण तर्करत्न भट्टाचार्य महाराज के साथ उपस्थित थे। ये तर्करत्नजी साहित्य तथा न्याय के विशेष विद्वान् थे, अनेक ग्रन्थों के प्रणेता थे तथा महाराजा के धार्मिक कृत्यों के विमर्शदाता महनीय विद्वान् थे। काशी की विद्वन्मण्डली की ओर से दो ही प्रतिनिधि शास्त्रार्थ के लिए चुने गए थे—मनीषी योगिराज विशुद्धानन्द सरस्वती और पण्डिताग्रणी बालशास्त्री। ४५ वर्षीय स्वामी दयानन्द वेद-विरुद्ध तथा वेदों में अनिर्दिष्ट किसी भी धार्मिक सिद्धान्त को मानने के लिए तैयार नहीं थे। उनका आग्रह था कि आजकल हिन्दू धर्म में मूर्तिपूजा, श्राद्ध आदि धार्मिक मान्यताएँ वेदविरुद्ध हैं। अतएव वे नितान्त अग्राह्य हैं।

काशी के पण्डितों के साथ इस शास्त्रार्थ का विषय था—**मूर्तिपूजा**। उस सभा में काशी के मान्य पण्डितों के संग में काशी की धार्मिक जनता प्रभूत संख्या में उपस्थित थी। इस शास्त्रार्थ में सम्मिलित होने वाले चालीस विद्वानों के नाम वेदवाणी पत्रिका के प्रथम वर्ष (नवम्बर १९७०, पृ. १५) के अङ्क में दिए गए हैं वे यथार्थ हैं। ये पण्डित उस समय काशी में निवास कर रहे थे। पण्डितों के अतिरिक्त काशी के प्रख्यात रईस तथा कवि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र अपने अनुज गोकुलचन्द्रजी के साथ सभा में उपस्थित थे। काशी के बाहर के कुछ मान्य सज्जन थे। यह तो सब ठीक है, परन्तु जनता की उपस्थिति ६० हजार लिखी गई है—यह कुछ अत्युक्ति-सी प्रतीत हो रही है। काशीवासियों में इस शास्त्रार्थ की विशेष चर्चा थी ही। इसके दो प्रकार के विवरण उपलब्ध होते हैं—आर्यसमाज का तथा सनातनधर्म का। उस समय की मान्य **प्रत्नकम्रनन्दिनी** नामक संस्कृत मासिक पत्रिका में संस्कृत में एक विवरण निकला था जिसके आधार पर पण्डित मथुराप्रसाद दीक्षित (आगे चलकर वे महामहोपाध्याय हुए) ने **सच्चा काशी शास्त्रार्थ**[1] नामक हिन्दी पुस्तक १९१६ ईस्वी में प्रकाशित की थी। उसका पुनर्मुद्रण द्वितीय तथा तृतीय संस्करण के रूप में दो बार हुआ है (सन् १९६९ में तथा सन् १९७२ में) उसी के आधार पर यहाँ प्रस्तुत है—

शास्त्रार्थ का संक्षिप्त विवरण

समय— अपराह्न कार्तिक सुदी १२, सं. १९२६।

स्थान— आनन्दबाग, दुर्गा मन्दिर के समीप (वाराणसी)।

काशीनरेश— ने अपने सभापण्डित ताराचरण तर्करत्न को आदेश दिया कि शास्त्रार्थ आरम्भ कीजिए। मैं भी वादी तथा प्रतिवादी के कथनों का सारांश समझकर पक्षपातशून्य होकर विचार को सुनने के लिए सावधान बैठा हूँ।

---

१. सम्पादक स्वामी केशवपुरीजी तथा प्रकाशक शक्ति प्रकाशन, संन्यासी संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी। प्रकाशन के लिए दोनों सज्जन धन्यवाद के पात्र हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताराचरण— (बोलने के लिए उद्यत होते हैं)।

दयानन्द— प्रतिमापूजन वेद में कहाँ लिखा हुआ है? उत्तर एक ही व्यक्ति एक बार दे।

ताराचरण— केवल वेद ही प्रमाण हैं और कुछ (स्मृति, इतिहास, पुराण आदि ग्रन्थ) प्रमाण नहीं हैं। इसमें क्या प्रमाण है?

दयानन्द— वेद में जो नहीं मिलता है, वह अप्रमाण ही है, वह कथमपि प्रमाण नहीं है।

ताराचरण— क्यों? अर्थात् जो वेद में न मिले, परन्तु स्मृति, पुराण आदि में उपलब्ध हो, वह प्रमाण क्यों न माना जाए? इसमें प्रमाण क्या?

दयानन्द— वेदविरुद्ध वस्तुओं का प्रमाण नहीं है।

ताराचरण— आपके इस कथन में क्या प्रमाण है?

दयानन्द— इसमें प्रमाण है श्रुति एवं मनुस्मृति।

ताराचरण— उसी को बताइए। जो वेदमन्त्र वेदातिरिक्त स्मृति, पुराण, इतिहास, सदाचार के प्रामाण्य का निषेधक है, उसे कहिए। अथवा मनुस्मृति का वह श्लोक ही बतलाइए जिसमें यह तथ्य प्रतिपादित है।

दयानन्द— प्रामाण्य विचार आगे होगा। इस समय प्रस्तुत वेदविचार कीजिए।

ताराचरण— कैसा वेदविचार करना चाहते हो? वेद के नित्यत्व-अनित्यत्व का विचार अथवा वेद की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता का विचार?

दयानन्द— पत्थर की प्रतिमा का पूजन वेद में है या नहीं? यही विचार करना चाहिए।

ताराचरण— वेद के समान स्मृति आदि का भी प्रामाण्य हमें स्वीकृत है। पुराणादिकों में प्रतिमापूजन का विधान है। तब प्रतिमा का पूजन शास्त्र से सम्मत सिद्ध हो ही जाता है।

दयानन्द— वेद से अतिरिक्त प्रमाण नहीं होते। हम स्मृति तथा पुराण का प्रमाण नहीं मानते।

ताराचरण— आपके कथन का प्रमाण क्या है? वेदविरुद्ध का प्रामाण्य क्यों नहीं स्वीकृत होता?

दयानन्द— वेदविरुद्ध का प्रामाण्य नहीं होता।

ताराचरण— वेदविरुद्ध क्या है? स्मृति, इतिहास आदि तो वेदविरुद्ध नहीं हैं। तब 'वेदविरुद्ध' किसे कहते हैं?

दयानन्द— जो वेद में नहीं है, वह वेदविरुद्ध है।

ताराचरण— यह वेद का कथन है अथवा श्रीमान्‌जी का कथन है?

दयानन्द— आपके प्रश्न का उत्तर मैं पीछे दूँगा। प्रस्तुत बात यही है कि वेद में प्रतिमापूजन है या नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बालशास्त्री—वेद में अनुक्त वस्तु (जिसका कथन नहीं किया गया है) अप्रमाण है इस कथन में क्या हेतु है। इसका विचार आरम्भ में करना चाहिए।

दयानन्द— श्रुति, स्मृति आदि का मूल वेद है। मनु, कात्यायन, महाभारत आदि इसके प्रमाण हैं। जिस प्रकार मन्त्रादिकों का तथा वेदान्तमीमांसा के सूत्रों का मूल वेद है, उसी प्रकार प्रतिमापूजन का वेद में मूल दिखलाइए।

विशुद्धानन्द स्वामी—क्या बारम्बार आप कहते हैं कि वेदान्तसूत्रों का मूल वेद है। यदि यह बात है तो बताओ 'रचनानुपपत्तेश्च नानुमानं प्रमाणम्' इस ब्रह्मसूत्र (२। २। १) का मूलभूत वेद कहाँ है ?

इसका उत्तर दयानन्द स्वामी से नहीं हो सका, उन्होंने स्वीकारा कि मुझे सब वेद कण्ठस्थ नहीं हैं। मैं इसका उत्तर नहीं दे सकता। विशुद्धानन्दजी को लक्ष्य कर उन्होंने पूछा कि यदि आपको सब उपस्थित है, तो धर्म का लक्षण बताइए। इसके उत्तर में विशुद्धानन्दजी ने मीमांसासम्मत धर्म का लक्षण झट से कह दिया—**चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः**। जब उन्होंने धर्म के एक ही लक्षण होने की बात कही, तो दयानन्दजी बोल उठे—धर्म के दस लक्षण हैं। मनु ने लिखा है—**धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयः** आदि। इस पर ताराचरणजी ने कहा—ये दसों धर्म के लक्षण थोड़े ही हैं, ये तो अनुमापक हेतु हैं।

दयानन्दजी ने इस पर क्रुद्ध होकर विशुद्धानन्दजी की ओर झुक कर पूछा—तुम बोलो स्वामी, धर्म में कौन श्रुति है अर्थात् धर्म के मानने में कौन वेद का आधार है। विशुद्धानन्दजी झट बोल उठे—अग्निहोत्रं जुहोति आदि। दयानन्द स्वामी ने देखा कि शास्त्रार्थ बढ़ता चला जाता है। अतः उसे समाप्त करने की दृष्टि से उन्होंने अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं दिया कि वेद में प्रतिमा-पूजन का कहीं विधान नहीं है। सामवेद में केवल एक बार प्रतिमा का निर्देश है, परन्तु वह इस भूलोक की बात न होकर ब्रह्मलोक की बात है।

[यह निर्देश सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण के पञ्चम प्रपाठक के दशम खण्ड में उपलब्ध है—'यदाऽस्यामुक्तानि यानानि वर्तन्ते' आदि। इसका अर्थ है कि बैलों के बिना गाड़ी अपने आप चलने लगे अथवा देवता की प्रतिमा हँसती हो, रोती हो, गाने लगे, नाचने लगे, आँख निकाल कर देखने लगे या आँखें मींचने लगे, तब 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' मन्त्र से खीर की आहुति देनी चाहिए। इसके स्वामीजी ब्रह्मलोकपरक होने में प्रसंग तथा सन्दर्भ को कारण मानते हैं। यह 'अद्भुत शान्ति' का प्रकरण षडविंशब्राह्मण में है। ऊपर निर्दिष्ट अद्भुत अर्थात् उत्पात (असाधारण घटना) घटित होने पर लोगों को शान्ति करनी चाहिए।]

ब्रह्मलोकपरक होने की बात कहने पर बालशास्त्री ने आपत्ति उठाई। आप जैसा तात्पर्य समझ रहे हैं, वैसा तात्पर्य नहीं निकलता। आपके दिए उद्धरण में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्वावर्तन शब्द आया है। इसका अर्थ है—'अनु=अनुलक्ष्यीकृत्य आवर्तनम्' अर्थात् ब्रह्मलोक में जब उपद्रव हो, तब उसके लिए शान्ति करनी चाहिए। कहाँ? इस मर्त्यलोक में ही तो। जब उनसे पूछा गया कि ब्रह्मलोक में कौन करेगा? तब उन्होंने बताया—स्वर्ग आदि लोक में इन्द्रादिक देवता हैं या नहीं? इस पर विशुद्धानन्दजी ने कहा कि मन्त्रमयी देवता अर्थात् देवता मन्त्रात्मक होते हैं। इन्द्र आदि देवता तत्तत् वैदिक मन्त्र ही स्वरूप हैं, उनकी देह होती ही नहीं, तब शान्ति करेगा ही कौन? इस पर दयानन्दजी ने उपासना की बात उठाई। उपासना ऐसे देवता की कैसे होती है? विशुद्धानन्द—प्रतीकोपासना ही होती है। वेद की सहस्र से ऊपर शाखाएँ हैं। उन्हीं किसी में यह रहस्य उद्घाटित है।

दयानन्दजी ने कहा—प्रतिवेद की केवल एक ही शाखा है। विशुद्धानन्दजी के द्वारा कृष्णयजुर्वेद की कठशाखा की बात पूछने पर स्वामीजी ने कहा कि मार्गप्रवर्तक होने से ऐसी शाखा हुई। इस पर काशीनरेश ने अपने अमात्यमण्डल की ओर लक्ष्य कर कहा—ऐसा भी क्या कभी होता है कि मार्ग के प्रवर्तक के नाम पर वेद की शाखा हो?

विशुद्धानन्दजी—वेद अपौरुषेय हैं, तब इनका प्रवर्तक कौन है? इसके उत्तर में दयानन्दजी ने कहा—वेदों का प्रवर्तक ईश्वर ही है। इस उत्तर पर विशुद्धानन्दजी ने पूछा—किस प्रकार के ईश्वर में वेद रहते हैं—नित्य-ज्ञान-विशिष्ट ईश्वर में? (न्याय) अथवा योगसिद्ध क्लेशादिशून्य ईश्वर में? अथवा वेदान्तमतानुसारी सच्चिदानन्द ईश्वर में? दयानन्दजी ने कुछ रोष में आकर अपनी पीठ से विशुद्धानन्दजी का हाथ हटाकर कहा कि तब आपने सब पढ़ लिया है। इसका स्वीकारात्मक उत्तर देने पर विशुद्धानन्दजी से आँखें लाल करके गरजकर पूछा—तब तो आपने व्याकरण भी पढ़ लिया है। बताइए—'कल्म' संज्ञा किसी की होती है? इसके उत्तर में महावैयाकरण बालशास्त्री तुरन्त बोल उठे—''पतञ्जलि के महाभाष्य में एक स्थान पर परिहास में ही कल्म संज्ञा कही गई है, परन्तु यह प्रकृत संज्ञा नहीं है (आशय यह है कि पाणिनीय व्याकरण की संज्ञाओं का वास्तव उपयोग होता है। वे पद की साधुता में उपकारक होती हैं। 'कल्म संज्ञा' इस प्रकार की नहीं है। अतएव उसकी चर्चा करना अनावश्यक और असामयिक है)। प्रकृत विचार में संलग्न होकर आप अप्रकृत की चर्चा क्यों करते हैं? प्रकृत विचार है पुराणों की वेद-विरुद्धता। तो इसी को सिद्ध कीजिए। अन्य चर्चा की क्या जरूरत? इस पर दयानन्दजी (सम्हल कर बैठ) पूछने लगे—पुराणों में ही म्लेच्छ भाषा के अध्ययन का निषेध है। वेद में कहाँ है? बतलाइए। बालशास्त्री ने झट से उत्तर दिया—न म्लेच्छितवै नापभाषितवै अर्थात् म्लेच्छ भाषा न बोले और अपशब्द नहीं कहे—यही वैदिक वाक्य का प्रमाण है। इसका अर्थ विशुद्धानन्दजी ने किया कि शूद्र श्मशान के तुल्य होता है। अतः शूद्र के समीप वेद न पढ़ना चाहिए। दयानन्दजी ने आरोप लगाया—यह संहिता है या ब्राह्मण?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुस्तक मँगाइए तो निर्णय हो (यह ब्राह्मण का वाक्य है। दयानन्दजी प्राचीन परम्परा का उल्लंघन कर इसे वेद नहीं मानते थे)।

जब दयानन्दजी ने वेदान्ताभिमत ईश्वर में वेद का निवास बताया, तब विशुद्धानन्दजी ने कहा कि सच्चिदानन्द तो निराकार ब्रह्म है, उसमें वेदों का रहना कैसे संभव हो सकता है? इस पर कुछ वाद-विवाद चला।

किसी विषय का प्रमाण खोजने के लिए दयानन्द स्वामी ने काशीनरेश से वेद की पुस्तक लाने को कहा तो महाराज ने सिर नीचा कर कहा—पण्डितों को तो सब कण्ठस्थ ही है, पोथी की क्या जरूरत? आगे चलकर पुराणों की वैदिकता का प्रसंग उपस्थित हो गया। दयानन्दजी का कहना था कि जहाँ वेदों में 'पुराण' शब्द आया है, वहाँ वह विशेषण है। पुराण का प्रामाण्य है ही नहीं। इस पर माधवाचारी ने तैत्तिरीय श्रुति का प्रमाण उद्धृत किया—

यदा गच्छन् पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृणुतादाविरस्मै।

यहाँ 'पूर्त' शब्द पौराणिक विधि-विधान को संकेत करता है। वापी-तडाग आदि की पूर्त संज्ञा है। बताइए वापी आदि की उत्सर्गविधि कहाँ है? पुराण में या वेद में? पुराण में ही तो इस विधि का वर्णन है। फलतः श्रुति पुराण का सद्यः संकेत करती है।

दयानन्दजी ने पूर्त का यह अर्थ नहीं स्वीकारा। तब माधवाचारी ने कहा—वेद में साक्षात् रूप से भी पुराण शब्द प्रयुक्त है—

अजाह्वे ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पं गाथा नाराशंसीमेवाहुः।

दयानन्दजी ने यहाँ 'पुराणानि' को 'ब्राह्मणानि' का विशेषण ही माना, स्वतन्त्र विशेष्यपद नहीं। इस पर विशुद्धानन्दजी का कहना था कि बीच में व्यवधान होने से यह दूरान्वय है। अतएव यह पद विशेषण नहीं हो सकता। दयानन्दजी ने उत्तर में कहा कि व्यवधान कोई हानि नहीं करता—**अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे**। यहाँ दूरान्वय तथा व्यवधान होने पर कोई क्षति नहीं है। इस पर विशुद्धानन्दजी का उत्तर था कि इस वाक्य में सब शब्द विशेषण पद हैं, विशेष्य पद के अभाव में वहाँ व्यवधान नहीं है। जब दयानन्दजी ने छान्दोग्य का यह वचन दिखा कर **ऋग्वेदं विजानाति.........इतिहासपुराणं**, पुराण को विशेषण ही माना तो इस पर सब सभासद सिर हिलाकर कहने लगे—यह ठीक पाठ नहीं है, पाठ है **इतिहासः पुराणम्**। 'पुराणं' इतिहास का विशेषण हो नहीं सकता। क्योंकि यदि यह विशेषण होता, तो विशेष्य का समानलिंगी होता। पुलिंग 'इतिहास' शब्द का विशेषण होने पर 'पुराण' को भी (पुराणः) पुलिंग ही होना चाहिए, पुराणं नहीं। इस कथन पर दयानन्दजी आत्मविश्वास से गर्जते हुए बोल उठे—

इतिहासपुराणः इत्येवमेव पाठः इति।

नोचेत् मत्पराजयः, अन्यथा युष्माकं पराजय इति लिख्यताम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् 'इतिहासपुराणः' यही पाठ है। यदि 'इतिहासः पुराणं' निकल आवे, तो मेरी पराजय। यदि ऐसा न निकले तो आप लोगों की पराजय—इसे लिख लो। आत्मविश्वास से उद्भावित उनकी यह अन्तिम घोषणा थी। इस पर माधवाचारीजी ने शतपथब्राह्मण के अश्वमेध के प्रकरण का वह अंश दिखला दिया जिसका अन्तिम अंश है—

तानुपदिशति पुराणं वेदः सोऽयमिति।
किञ्चित् पुराणमाचक्षीत।
एवमेवाध्वर्युः सम्प्रेषयति।
न प्रक्रमान् जुहोति।

'पुराणं वेदः' इस पाठ को देखकर दयानन्दजी ग्रन्थ का पन्ना अपने हाथ में लेकर उलट-पुलट कर बहुत देर तक देखते रहे और उसे लौटा कर चुप बैठ गए।

यह ऐतिहासिक शास्त्रार्थ यहीं समाप्त हो गया। इस शास्त्रार्थ में बीच-बीच में इतने विषय उठते गए कि उन्हीं के विमर्श में समय बीत गया। मूल प्रश्न के समाधान के प्रति विद्वानों का ध्यान ही नहीं गया। शास्त्रार्थ करने वाले पण्डितों के साथ श्रीदयानन्दजी का सौहार्द सदा बना रहा।

एक दिव्य संस्मरण

स्वामीजी का महाप्रयाण[१]

वाराणसी धाम के सुप्रसिद्ध दण्डी स्वामी परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमत् स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती ने सन् १८९८ ई. के वैशाख मास में अहिल्याबाई घाट पर अपने आश्रम में ८० वर्ष की वयस् में भौतिक देह का परित्याग कर निर्वाण प्राप्त किया था। उनके वेदान्तशास्त्र के अगाध पाण्डित्य की प्रशंसा आज भी समस्त भारत के विद्वान् करते हैं, उनकी सर्वतोमुखी असाधारण प्रतिभा की बातें वृद्ध विद्वानों से सुनकर शिक्षित युवक विस्मित हो जाते हैं, परन्तु आज इस लेख में उन सब बातों की आलोचना नहीं की जाती। उनके आध्यात्मिक जीवन में ऐसी अनेकों आश्चर्यमयी घटनाएँ हैं, जिनकी आलोचना करने से हिन्दू-मात्र के आध्यात्मिक जीवन में नवीन प्रकाश की किरणें प्रसारित होंगी और भारतीय साधु-महात्माओं के प्रति श्रद्धा-भक्ति बढ़ेगी।

प्राक्तन पुण्यबल से मुझे लगातार दस वर्षों तक उनके चरणों में बैठकर पूर्व और उत्तरमीमांसा पढ़ने का दुर्लभ सुयोग प्राप्त हुआ था। अध्ययन आरम्भ करने के समय मेरी उम्र बीस वर्ष की थी। स्वाध्याय तिथियों में प्रतिदिन दो-से तीन-साढ़े तीन बजे तक मेरा पाठ चलता। एक दिन वर्षाकाल में श्रावण के अन्त में लगभग

---

१. श्रीप्रमथनाथ तर्कभूषणजी का यह लेख 'चिन्तामणि' के किसी पुराने अंक में प्रकाशित हुआ था। इस महत्वपूर्ण लेख को प्रकाशनार्थ सुलभ करने के लिए स्वामी अखण्डानन्दजी धार्मिक जनता के धन्यवाद के पात्र हैं। इसके लिए मैं उनका आभार मानता हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीन बजे मैं अध्ययन कर रहा था, उस समय बड़े जोरों से वर्षा हो रही थी। अहिल्याबाई घाट पर स्वामीजी का आश्रम था, उसमें ऊपर के तल्ले में एक छोटे घर में स्वामीजी उत्तराभिमुख अपने आसन पर विराजमान थे। मैं पूर्व की ओर मुँह करके बैठा था। सामने श्रावण की पूर्णावयवा उत्तरवाहिनी भागीरथी अपनी कलकल ध्वनि से अविश्रान्त वर्षाध्वनि से मुखरित दिशाओं को प्रतिध्वनित करती हुई प्रवाहित हो रही थीं। स्वामीजी पद्मासन से बैठे थे, उनके विशाल प्रशान्त नेत्रों से हृदयस्थित ज्योत्स्ना द्वारा स्नात एक अननुभूतपूर्व समुज्ज्वल अध्यात्म ज्योति विकसित हो रही थी, सामने द्रवब्रह्ममयी भागीरथीजी थीं। मेरे हाथ में छान्दोग्योपनिषद् की पुस्तक थी, स्वामीजी महाराज उसकी व्याख्या कर रहे थे। वह अपूर्व मनोहर दृश्य आज भी मेरे स्मृतिपट पर गाढ़ रूप से अंकित है। छान्दोग्योपनिषद् के छठे अध्याय में प्रयाण के समय दक्षिण मार्ग की गति उस दिन का पाठ्य-विषय था—**'पुरुषं सोम्योतोपतापिनं ज्ञातयः पर्युपासते जानासि मां जानासि मामिति तस्य यावन्न वाङ् मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां तावज्जानाति। अथ यदास्य वाङ् मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति।'** (छान्दोग्योपनिषद्, ६।१५)

अर्थात् मनुष्य जब मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ सन्ताप को प्राप्त होता है, तब उसके घर के लोग उसके समीप आकर व्याकुलता से पूछते हैं—'मुझको पहचानते हो क्या?' मुझे पहचान गए हो? उसकी बहिरिन्द्रिय जब तक मन में नहीं मिल जाती, मन प्राण में विलीन नहीं हो जाता, प्राण तेजोधातु में परिणत नहीं हो जाते और तेज भी परदेवता में प्रवेश नहीं कर जाता, तभी तक वह उन लोगों को पहचान सकता है। जब बहिरिन्द्रिय मन में मिल जाती है, मन प्राणों में विलीन हो जाता है, प्राण तेजोधातु में परिणत हो जाते हैं और अन्त में जब तेज भी परदेवता में प्रविष्ट हो जाता है, तब वह किसी को भी नहीं पहचान सकता, उसका ज्ञान विलुप्त हो जाता है, यही उसका मरण है।

इस प्रसंग में स्वामीजी उस दिन देवयान या उत्तरमार्ग की बात चलाकर कहने लगे, "जो योगी है, उसका प्रयाण इस तरह नहीं होता। प्रत्येक मनुष्य के हृदय-कमल के ऊपर कुछ सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं, इन नाड़ियों को सिता कहते हैं, इनमें किसी का वर्ण लाल है, किसी का पीला आदि है। ये नाड़ियाँ अत्यन्त सूक्ष्म हैं, यहाँ तक कि केश के सौवें भाग के समान इनकी सूक्ष्मता है। इन सूक्ष्म नाड़ियों में एक का नाम है सुषुम्णा। यह सुषुम्णा ऊर्ध्व में ब्रह्मरन्ध्र तक गई है। इस सुषुम्णा में योगबल से अपना प्राण प्रवेश कराकर जो योगी प्रयाण करता है, वह फिर लौटकर इस संसार में नहीं आता। ब्रह्मलोक में उसकी गति होती है और कल्पान्त के समय ब्रह्मलोक के अधिष्ठाता सगुण ब्रह्म के साथ वह निर्वाण को प्राप्त होता है।" सनातन धर्म की इन आध्यात्मिक बातों को पूज्यपाद स्वामीजी महाराज उस दिन बड़ी ही स्फूर्ति के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ—बड़े ही अभिनिवेश और उत्साह के साथ—कह रहे थे। किन्तु न मालूम क्यों, मेरे मन में वे बातें मानो उस दिन गंभीरता के साथ प्रवेश नहीं कर रही थीं। मेरी बेजानकारी में शायद गुरुदेव स्वामीजी महाराज ने मेरे चेहरे को या मेरी अन्य किसी शारीरिक चेष्टा को देखकर मेरी अन्यमनस्कता की बात को जान लिया और बड़ी रुखाई के साथ जरा उत्तेजित-से होकर मेरी ओर देखकर कम्पित स्वर से बोले—"प्रमथनाथ! आज यहीं पाठ बन्द करो, तुम्हारा चेहरा देखकर मालूम होता है कि मैं तुम्हें जो कुछ कह रहा हूँ वे सब बातें सत्य पर प्रतिष्ठित हैं या नहीं, तुम्हारे मन के इस सन्देह ने तुम्हारे चित्त को श्रद्धाहीन कर दिया है। जिसके मन में श्रद्धा नहीं है, उसके लिए इन बातों का न सुनना ही अच्छा है और कहने वाले के लिए भी वह विडम्बना-मात्र है।"

पूज्य स्वामीजी के मुख से ऐसी कड़ी बातें मैंने इससे पहले कभी नहीं सुनी थीं। इन बातों को सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ, मैंने जल्दी से उठकर उनके चरणों पर गिरकर भक्तिभाव से अश्रुसिक्त नेत्रों से प्रणाम किया और कहा—"गुरुदेव! मैं अज्ञ हूँ, मेरे इस अज्ञानकृत प्रथम अपराध को आप यदि क्षमा नहीं करेंगे तो मेरा जीवित रहना भी विडम्बना-मात्र है!" मेरे इन शब्दों को सुनकर स्वामीजी बहुत देर तक गंभीरता से चुपचाप बैठे रहे, फिर बहुत धीरे से मेरी ओर देखकर कहने लगे—"अच्छी बात है, मैंने क्षमा किया। इस प्रसंग में मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ, खूब ध्यान देकर सुनो।" स्वामीजी के इन शब्दों से आश्वस्त होकर मैं अपनी जगह हाथ जोड़े बैठा हुआ उनके चेहरे की ओर देखने लगा और बड़े आग्रह के साथ उनकी बातें सुनने के लिए उत्सुकता से बाट जोहने लगा। कुछ देर बाद स्वामीजी कहने लगे—

"आजकल ज्यों-ज्यों पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव बढ़ रहा है, त्यों-ही-त्यों संस्कृत-शिक्षा-पद्धति का प्रचुर रूप में ह्रास हो रहा है। अध्यात्मशास्त्र के प्रति लोगों की अश्रद्धा होना इसी का परिणाम है। परन्तु यह अश्रद्धा ही हिन्दू-समाज का सर्वनाश कर रही है, इस बात को याद रखना। मैं जो तुम्हें सुषुम्णा नाड़ी द्वारा उत्क्रमण की बात कह रहा था, यह कोई कवि-कल्पना या धर्मोन्माद नहीं है, ध्रुव सत्य है। इसकी ध्रुवसत्यता का मैंने निज में अनुभव किया है; और स्वयं जाना है तथा विश्वास किया है, इसी से तुमसे कह रहा था। तुम देखते हो मैं प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान के बाद आठ बजे के समय इस घर में प्रवेश करके सब दरवाजों को बन्द करके दोपहर तक बैठता हूँ। इन चार घण्टों में मुझसे कोई भी मिल नहीं सकता, यहाँ तक कि इस घर की तरफ किसी को आने का भी अधिकार नहीं है, जानते हो इस समय मैं रोज क्या करता हूँ। आज बीस वर्षों से भी अधिक काल हो गया, मैं योग-प्रक्रिया के अनुसार सुषुम्णा के द्वारा उत्क्रान्ति के मार्ग का अनुसंधान कर रहा हूँ। सुनो प्रमथनाथ! इतने परिश्रम का मेरा यह अनुसंधान व्यर्थ नहीं गया। मैंने इस पंथ को पा लिया है। कल्पना की दृष्टि से नहीं, सचमुच यह मेरे हस्तगत हो गया है। याद रखना, कुछ समय बाद उत्तरायण के वैशाख शुक्ल पक्ष में मैं इसी तरह सदा की भाँति बद्धपद्मासन लगाए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रवब्रह्ममयी भगवती भागीरथी को देखते-देखते, हँसते-हँसते, प्रशान्त चित्त से भौतिक देह को त्यागकर अमृतधाम को चला जाऊँगा।''

इतना कहकर स्वामीजी चुप हो गए। कुछ देर बाद फिर बोले—''आज पढ़ाई नहीं होगी, अब तुम घर जाओ। तुम्हारा उपनिषद्-पाठ कुछ समय के लिए बन्द रहेगा। कल से मैं तुम्हें वेदान्तशास्त्र के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ 'अद्वैतसिद्धि' को पढ़ाऊँगा।'' इसके बाद मैं विस्मयाविष्ट चित्त से काँपते हुए भक्तिभाव से श्रीस्वामीजी के चरण-कमलों में सिर नवाकर प्रणाम करके घर चला आया।

इस उत्तर मार्ग से प्रयाण के सम्बन्ध में स्वामीजी ने और कभी कोई संकेत नहीं किया। दूसरे दिन से मैं 'अद्वैतसिद्धि' पढ़ने लगा। इस घटना के पाँच वर्षों बाद मेरी कलकत्ते के गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज में धर्मशास्त्र के अध्यापक पद पर नियुक्ति हो गई। इससे बाध्य होकर मुझे काशीधाम छोड़ना पड़ा। स्वामीजी से अध्ययन करना भी समाप्त हो गया। सन् १८९७ ई. के नवम्बर महीने से मैं संस्कृत कॉलेज में अध्यापनकार्य करने लगा। सन् १८९८ ई. के वैशाख महीने में स्वामीजी ने भौतिक देह का त्याग कर दिया। देहत्याग के दिन से तीन दिन पहले सन्ध्या को घूमकर आश्रम में आने पर आपने कहा—''देवाप्रसाद! (ये स्वामीजी के सर्वापेक्षा घनिष्ठ सेवक एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे) मेरा शरीर आज कुछ शिथिल-सा मालूम होता है। तुम लोग घबराना नहीं। परसों मेरे महाप्रस्थान का दिन है; व्यर्थ हो-हल्ला न करना, मुझको तंग न करना, किसी वैद्य को न बुलाना, मुझे स्थिर रूप से बैठे रहने देना, मैं कुछ कहूँ तो वही करना, अपनी इच्छा से कुछ भी करके मेरे चित्त में विक्षेप न करना।'' इतना कहकर स्वामीजी बद्धपद्मासन लगाकर बैठ गए और ध्यानस्थ हो गए। दूसरा दिन भी इसी तरह बीत गया। तीसरे दिन ठीक मध्याह्न काल में उसी तरह बद्धपद्मासन में बैठे-बैठे, हँसते-हँसते उत्तरवाहिनी त्रिलोकपावनी भगवती भागीरथी को देखते-देखते सुषुम्णारन्ध्र को भेदकर परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती द्वारा उत्तरपथ से पुनरावृत्तिहीन महाप्रयाण की बात तुरन्त सारी काशी में फैल गई। हजारों नर-नारी आबाल-वृद्ध स्वामीजी के गतप्राण पुण्यदेह का दर्शन करके जीवन धन्य करने के लिए दौड़ आए। सबने देखा, बद्धपद्मासन से विराजमान वर्तमान युग के सर्वश्रेष्ठ संन्यासी परम ज्ञानी, परम विरक्त स्वामीजी का वही ललाई लिये सुन्दर गौर विग्रह है, मुख पर वही स्मित-ज्योत्स्ना खेल रही है और नेत्र अर्ध-निमीलित हैं। प्राण निकल गए हैं परन्तु दैवी सुषमा अब भी उस सर्वाङ्गसुन्दर देह को त्याग करने में मानो संकोच कर रही है। काशिराज महाराज प्रभुनारायण सिंहजी उस समय जीवित थे, वे स्वामीजी के परम भक्त थे। समाचार सुनते ही वे दौड़ आए थे और उन्होंने उस समय का एक छायाचित्र लिया था।

मैंने अपनी आँखों से जो कुछ देखा है और उनके मुँह से सुना है, उसी को यहाँ लिखा है। उन्होंने मुझे दीर्घकाल तक चरणसेवा करने का अधिकार दया करके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिया था। मेरा विश्वास है कि जो इस पर ध्यान देंगे वे भारतीय अध्यात्मविज्ञान-सम्पन्न साधु-महात्माओं के पुण्य चरित्र के प्रति विशेष श्रद्धा-सम्पन्न हो सकेंगे और वैराग्य-प्रधान सनातनधर्म के प्रति उनकी गाढ़ अनुरक्ति होगी।

स्वामी विशुद्धानन्द की प्रशस्ति

स्वामीजी की प्रशस्ति संस्कृत तथा हिन्दी उभय भाषा के पद्यों में उपलब्ध होती है। दो-तीन दृष्टान्त ही पर्याप्त होंगे—

[१]

यतो विद्याकीर्तिः परमसुखदा यस्य करुणा
प्रबोधस्योद्‌बोधो यदमलपदाराधनविधेः।
सदा शान्तः कान्तः परमतिमतामद्‌भुतगुणो
विशुद्धानन्दाख्यः परमपुरुषः कोऽपि जयति॥

—प्रमथनाथ तर्कभूषण

[२]

संसारार्णवलीन-दीनजनता-पीनाघभीनाशिनं
भक्ताधीनमहीनमानसमुपासीनं नवीनद्युतिम्।
धर्माधर्मविचारचारुचतुरं चञ्चच्चरित्रोच्चयं
सद्‌विद्यं निरवद्यकं गुरुविशुद्धानन्दमीशं भजे॥

—देवीप्रसाद कविचक्रवर्ती

[३]

सरस सुधा की साज जाकी मुसुकान बाँकी।
विद्युत छटा की ज्योति जाहिर मुकामी की।
भारी जमजातना विमोचन विरोचना की,
छबि अति छीन छाकी बासना अकामी की।
अवधि उदारता की खान मनकामना की
चिन्तामणि चिन्तना की आनि अन्तर्जामी की।
ऐसी हम झाँकी तीन लोकहू न झाँकी जैसी
झाँकी अब झाँकी श्रीविशुद्धानन्द स्वामी की॥

—दुःखभञ्जन कवीन्द्र

[४]

ललित ललाम लाल लालित सुलीलाऽऽलय
लेखा लखि लीन लोल लोचन सभी के हैं।
चित्त चञ्चरीक चोर चञ्चल विचित्र चारु
चमक प्रचार त्यों मरीचि मञ्जरी के हैं।
अमल अमोल मेल कोमल प्रवाल कल्प
कलिमल मूल मलि मङ्गल मही के हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूप चन्द्रशेखर के शरण विराजमान
चरण सरोज श्री विशुद्धानन्द जी के हैं॥

—देवीप्रसाद कविचक्रवर्ती

[५]

सागर दया के नय आगर विभा के खान
गुन सो उजागर बिबेक धन धामी हैं।
मूल मुद मंगल समूह के मनोहर ये
मोहर मुनीशन के सोहत अरामी हैं।
कल्पतरु कामधेनु मान के हरनहार
हर अवतार चारु सत्य के कलामी हैं।
दीनजन बन्धु सिन्धु सुन्दरमती के खास
ज्योतिःस्वरूप श्री विशुद्धानन्द स्वामी हैं॥

—देवीप्रसाद कविचक्रवर्ती

[६]

दयानन्दमत्तद्विपोद्दामदर्पो ययावस्तमुच्चैः कटाक्षेण यस्य।
स्फुरत्सर्वविद्या-लसत्सर्वभूतिः प्रसन्नोऽस्तु देवः स नः श्रीनृसिंहः॥

—प्रमथनाथ तर्कभूषण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामी ज्ञानानन्द

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के वर्षों में समस्त भारतवर्ष में वैदिक सनातन धर्म का प्रचार-प्रसार करने वाले भारतविख्यात धार्मिक संस्थान 'भारतधर्म-महामण्डल' ने जो अलौकिक कार्य का सम्पादन किया, वह सुवर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। इसके संस्थापक का नाम था—स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज। वे इस शिवपुरी में निवास करते हुए इस विशाल संस्था का बड़ी योग्यता तथा निष्ठा से प्रबंध करते थे तथा समग्र भारत में धर्म के अश्रान्त प्रचार में समर्पित जीवन बिताते थे। इन्हीं का संक्षिप्त परिचय यहाँ उपन्यस्त किया जा रहा है।

ज्ञानानन्दजी महाराज के पूज्य पिता पं. मधुसूदन मुकर्जी का मूल स्थान बंगाल के हुगली जिला के अन्तर्गत 'तेलिनपाड़ा' नामा ग्राम था। गाँव में उनकी बड़ी जमींदारी थी। वे ईस्ट इंडिया कम्पनी सरकार के समय किसी बड़े व्यापारी अंग्रेज साहब के प्रधान अधिकारी थे। साहब उनके कार्य से बड़ा प्रसन्न रहता था और इसलिए वह बंगाल से लेकर उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग तक फैलने वाले अपने विशाल व्यापार की देखभाल का कार्य मधुसूदन बाबू को सौंपकर निश्चिन्त होकर दिन बिताता था। साहब के व्यापार की अनेक कोठियाँ थीं जिनका मुख्य स्थान उत्तर प्रदेश का प्रख्यात नगर मेरठ था और इसी मेरठ में स्वामीजी महाराज का जन्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विक्रम संवत् १९०२ (१८४५ ईस्वी) की जन्माष्टमी की मध्यरात्रि में हुआ। स्वामीजी पढ़ने-लिखने में बड़े योग्य थे। परन्तु अन्य विषयों के प्रति विशेष आग्रह नहीं था। वे संगीत से विशेष प्रेम करते थे। उद्यानविद्या में निपुण थे तथा पशुपालन में भी बड़ी निष्ठा रखते थे। पिता मधुसूदन मुकर्जी सनातनी, आस्तिक तथा सदाचारी थे। पुत्र की शिक्षा की व्यवस्था उन्होंने घर पर ही कर दी। यहाँ की शिक्षा समाप्त कर वे कलकत्ता गए और वहाँ के प्रमुख प्रेसिडेंसी कॉलेज में अध्ययन करने लगे। एक दिन पिता का तार अकस्मात् ही मिला जिसमें उनकी गंभीर बीमारी की सूचना थी। वे कॉलेज की पढ़ाई छोड़कर घर लौटे और अंग्रेजी शिक्षा से विरक्त होकर मेरठ लौट आए। पितृवियोग इनके जीवन के परिवर्तन का एक महनीय सोपान था। बहुत दिनों तक व्यापार सँभाला। घर-गृहस्थी की देखभाल की, परन्तु इनके मन में अनित्य संसार से गाढ़ विरक्ति हुई जो दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गई।

पिता के जीवित काल में ही ये घर की अपनी ठाकुरबाड़ी में पूजा-पाठ में संलग्न रहते थे, पिताजी की मृत्यु के अनन्तर ये एकदम असहाय हो गए। धर्मप्राणा माताजी इनकी देखभाल करती थीं। पिताजी ने इनका विवाह कर दिया जिससे इन्हें एक कन्या का जन्म हुआ। गृहस्थी के काम को ये पूर्ण आस्था से देखते थे, परन्तु धीरे-धीरे इनके विशुद्ध हृदय में वैराग्य का संचार हुआ। घर पर गुहा में योगसाधना करते थे, परन्तु इनका मन किसी लौकिक कार्य में तनिक भी नहीं लगता था। ये किसी सुयोग्य आध्यात्मिक गुरु के अनुसंधान में लग गए। भगवान् की अलौकिक कृपा का ही यह प्रभाव था कि इन्हें सुयोग्य गुरु की उपलब्धि में विलम्ब नहीं हुआ।

स्वामी ज्ञानानन्दजी के गुरु का नाम **केशवानन्दजी** था जो बंगाली ब्राह्मण थे। तान्त्रिक साधना में नैष्ठिकभावापन्न साधक थे जो भुबनेश्वर, हरिद्वार, विन्ध्याचल आदि आश्रमों में एकान्तवास कर अपनी शाक्त साधना की पूर्णता प्राप्त कर चुके थे। केशवानन्दजी का प्रधान आश्रम वृन्दावन के 'राधाबाग' में था। ज्ञानानन्दजी पूरा परिचय मिलने पर केशवानन्दजी से मिलने के लिए चुपके से अपने घर से निकल पड़े और अपनी एक बग्घी आठ सौ रुपयों में बेचकर गुरु के दर्शनार्थ राधाबाग पहुँच गए। संन्यास की दीक्षा लेने पर गुरु के संग हो लिए, हरिद्वार में कुछ दिनों तक निवास किया, पश्चात् भागीरथी तथा अलकनन्दा नदियों के बीच टापू पर निवास किया और तपश्चर्या की। तपस्या के निमित्त स्वामीजी आबू गए। रास्ते में कुछ दिनों तक रुड़की में निवास किया। अनन्तर आबू में ही इन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। लोककल्याण की भावना के प्रति तीव्र आग्रह रखने वाले ज्ञानानन्दजी ने आबू के वसिष्ठाश्रम में रहकर कुछ दिन बिताए और यहीं पर इन्होंने राजपूताने के अध्यात्मरसिक नरेशों को आध्यात्मिक योग-साधना की दीक्षा दी। ऐसे सुयोग्य नरेशों में शाहपुरानरेश, किशनगढ़नरेश एवं खेतड़ी के राजासाहब प्रमुख थे जिनके हृदय में स्वामीजी के अध्यात्मज्ञान एवं योगसिद्धि के विषय में पूर्ण आस्था एवं विश्वास था। आगे चलकर स्वामीजी का इन राजाओं से बहुमूल्य सम्पर्क बना रहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा ये लोग स्वामीजी के धर्मप्रचार के कार्य में विशेष आर्थिक सहायता देते रहे। किशनगढ़ में राजासाहब के विशेष आग्रह पर ज्ञानानन्दजी ने विराट् यज्ञ भी कराया जिसकी प्रसिद्धि उस युग में राजपूताने में सर्वत्र फैल गई।

मथुरा में धर्ममहामण्डल की स्थापना

स्वामीजी के तान्त्रिक गुरु केशवानन्दजी महाराज ने वृन्दावन में **कात्यायनी पीठ** की स्थापना १९२३ ईस्वी में की। इस पीठ की स्थापना में स्वामीजी का विशेष सहयोग था। केशवानन्दजी मन्दिर की स्थापना वामाचार-पद्धति से कराने के उत्सुक थे और उसकी सिद्धि के लिए कार्य भी करते थे, परन्तु स्वामीजी ज्ञानानन्दजी को स्वप्न में देवी का आदेश प्राप्त हुआ कि स्थापना वैष्णवाचार-पद्धति से होनी चाहिए। इस विचित्र स्वप्न के आदेशानुसार कात्यायनी-पीठ की स्थापना में इसी आचार के अनुसार देवी की स्थापना की गई।

केशवानन्दजी के सम्पर्क का सद्यः परिणाम हुआ। मथुरा को ज्ञानानन्दजी ने अपने सनातनधर्म-प्रचार के लिए केन्द्र बनाया। मथुरा में ही **भारतधर्म-महामण्डल** की स्थापना १९०२ ईस्वी में की गई और यहीं पर २८ मार्च १९०२ ई. से ३० मार्च तक तीन दिनों तक धर्म-प्रचार का यह प्रारम्भिक समुद्योग बड़े समारोह एवं उत्साह से सम्पन्न किया गया। उस युग के सनातन-धर्मप्रचार के प्रमुख विद्वान् **पण्डित दीनदयालु शर्मा** का भी पूर्ण साहाय्य स्वामीजी को प्राप्त हुआ और दोनों में धर्म-प्रचार की दिशा में पूर्ण ऐक्य रहा। इसी समय से वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के निमित्त **निगमागम-चन्द्रिका** नामक पत्रिका का प्रकाशन बड़े उत्साह तथा लगन से होना आरम्भ हुआ। इसी काल में ज्ञानानन्दजी महाराज ने संन्यास की समुचित वैदिक दीक्षा के निमित्त **संन्यासपद्धति** की रचना की। यह ग्रन्थ नारदपरिव्राजकोपनिषद् के आधार पर रचा गया है जिसमें संन्यासतत्त्व, संन्यास-प्रकार तथा संन्यास के विधिविधान का यथार्थ निरूपण किया गया है। **संन्यास-गीता** का प्रकाशन भी संन्यास-विज्ञान के यथार्थ निरूपण के निमित्त किया गया है।

स्वामीजी ने 'क्षत्रिय महासभा' की स्थापना भी इसी उद्देश्य से कराई कि क्षत्रिय राजाओं में पारस्परिक प्रेम एवं सौहार्द की वृद्धि हो। इस कार्य में उन्हें सफलता प्राप्त हुई और इसीलिए राजाओं के द्वारा उनका आदर-सत्कार विशेष रूप से होता था।

स्वामीजी के शरीर तथा मन पर उनकी तपस्या का फल सद्यः प्रस्फुटित होता था। स्वामी ज्ञानानन्दजी का रूप बड़ा ही सुन्दर तथा कोमल था। उनके सिर की जटायें साढ़े नौ फुट लम्बी थीं। स्नान करने के बाद उनका भव्य रूप अपनी सुन्दरता में प्रस्फुटित होता था। स्नान के बाद आधी खुली जटाओं को वे हाथ पर रखकर चलते थे, नहीं तो वे जमीन बहारती चलतीं। दाढ़ी के केश आठ फुट लम्बे थे। इन्हें गले से अपनी छाती पर लपेट देते थे। उनका मन नवनीत के समान कोमल था। परन्तु सिद्धान्त के पालन में वे वज्र से भी अधिक कठोर थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति॥

इस श्लोक में लोकोत्तर पुरुषों का चित्त वज्र से भी कठोर और फूल से भी कोमल बताया गया है और इस तथ्य का सद्यः अनुभव स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज के लोकातीत चरित्र का परीक्षण करने वाले को अवश्यमेव होता है। भगवान् ने उन्हें लम्बी आयु दी थी। वे १०५ वर्ष तक जीवित रहे और इस दीर्घ जीवन में उनके सामने मण्डल के उथल-पुथल के कारण अनेक उत्थान तथा पतन का साक्षात्कार हुआ परन्तु स्वामीजी ने हिमालय के समान अटल, अडिग तथा अचल रहकर अविचल गति से उसे बिताया। ऐसी दिव्यता का दर्शन भाग्यवानों के जीवन में ही होता है।

धर्म-प्रचार का कार्य

काशी में भारतधर्ममहामण्डल का प्रधान स्थान गुरुधाम था जहाँ आज एक विस्तृत कॉलोनी ही बना दी गई है। विरोध-भावना का उद्‌भव कहाँ नहीं होता? विरोधियों के षड्‌यंत्र के कारण यह स्थान छोड़ना पड़ा तथा जगतगंज का वर्तमान स्थान लेना पड़ा। यहाँ **उपदेशक महाविद्यालय** खोला गया जहाँ सनातनधर्म के व्याख्याता उपदेशक तैयार किए जाते थे। सनातन धर्म के विपुल प्रचार में स्वामीजी के 'मिशनरी स्पिरिट' का प्रचुर प्रभाव प्रत्यक्ष दृष्टिगत होता है। उन्होंने **धर्मालय-संस्कार विभाग** भी खोल रखा था जिसमें मन्दिरों की सफाई तथा जीर्णोद्धार कराया जाता था। मन्दिर के विषय में आपसी झगड़ों को निपटाया जाता था। पंचक्रोशी में रामेश्वर-मन्दिर में दो विरोधी पक्षों में स्वामीजी ने ही सुलह कराई। दार्शनिक जगत् में वे महान् क्रान्ति के अग्रदूत थे जिसके अनेक कार्यों में **जोशीमठ** का उद्धारकार्य स्वामीजी का महनीय व्यापार था। बदरीनाथ के पास आचार्य शंकर के द्वारा स्थापित ज्योतिर्मठ उच्छिन्नप्राय हो गया था। इसका उद्धार कर स्वामीजी ने १९४१ ईस्वी में **स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती** को यहाँ शंकराचार्य-पीठ पर स्थापित किया। यह कार्य अब यथाविधि सम्पन्न होता रहता है। फलतः ज्योतिर्मठ (जोशीमठ) के पुनरुद्धार का महनीय कार्य स्वामीजी की कर्मठता का सद्यः परिचायक है।

धार्मिक-ग्रन्थ-रचना

स्वामीजी को लेखनकार्य में अद्‌भुत क्षमता प्राप्त थी। वे अपने हाथ से एक अक्षर भी नहीं लिखते थे, परन्तु अपनी वाणी द्वारा आदेश कर पाँच-छः विद्वानों को बैठाकर अलग-अलग ग्रन्थ लिखवाते थे। वे बीच में आरामकुर्सी पर विराजमान होकर आगे आसनों पर आसीन विद्वानों को ग्रन्थ लिखवाते थे। वे क्रम से लिखते थे और बिना पूछे ही आगे के वाक्य स्वतः बोलते जाते थे। जो यह अनुपम दृश्य देखता, वह आश्चर्यचकित हो जाता था। इस प्रकार स्वामीजी ने विशाल आठ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खण्डों में **धर्मकल्पद्रुम** की रचना की है जो वैदिक धर्म का विश्वकोश ही है। उनके चार संहिताग्रन्थ हैं—

(१) मन्त्रयोग-संहिता, (२) हठयोग-संहिता, (३) लययोग-संहिता तथा (४) राजयोग-संहिता। ये चारों संहिताएँ योगशास्त्र से सम्बन्ध रखती हैं। उन्होंने सात गीताओं का प्रणयन किया है। ज्ञानानन्दजी की मान्यता है कि ज्ञान की सात भूमिकाएँ हैं और तदनुसार सात दर्शन हैं। फलत: प्रख्यात षड्दर्शनों में इन्होंने दर्शन-विषयक दो ग्रन्थों का निर्माण किया। स्वामीजी का कहना है कि सत्पदा भूमिका में जैमिनिरचित कर्ममीमांसा केवल उत्तरार्ध है। फलत: भरद्वाज मुनि के सम्पर्क से उन्होंने कर्ममीमांसा का पूर्वार्ध संकलित किया है। 'आनन्ददा' भूमिका को द्योतित करने वाला दर्शन **दैवी मीमांसा दर्शन** है जिसे उन्होंने अंगिरा ऋषि से प्राप्त किया। इन दोनों ग्रन्थों की रचना कर स्वामी ज्ञानानन्दजी ने भारतीय दर्शन की परम्परा को पूर्ण करने का गौरव प्राप्त किया है। **धर्मकल्पद्रुम**—आठ खण्डों में विभक्त यह ग्रन्थ वस्तुत: वैदिक धर्म का विश्वकोश ही है। इसमें सनातन धर्म के यावत् ज्ञातव्य विषयों का विशद प्रामाणिक विवरण है। इसमें साम्प्रदायिक पक्षपात का लेशमात्र भी नहीं है। हिन्दू शास्त्र के सभी विषय शास्त्रीय प्रमाण एवं दार्शनिक युक्तियों के साथ यहाँ प्रतिपादित हैं। व्रत, अनुष्ठान, संस्कार तथा दर्शन आदि की पूर्ण समीक्षा है। ऊपर निर्दिष्ट सात गीताओं के नाम हैं—विष्णुगीता, सूर्यगीता, शक्तिगीता, गणेशगीता, शम्भुगीता, संन्यासगीता एवं गुरुगीता। ये समग्र गीताएँ प्रकाशित हैं। ज्ञानानन्दजी महाराज ने अपने धार्मिक उपदेशों तथा सिद्धान्तों के प्रचार के लिए अंग्रेजी भाषा का भी आश्रय ग्रहण किया। लेखक के एक परिचित महाराष्ट्रीय विद्वान् इस कार्य के लिए नियुक्त किए गए थे जिनका नाम था **पण्डित परशुराम पाटणकर**। ये पूनानिवासी थे तथा लोकमान्य तिलकजी के सहयोगी थे। कॉलेज के संस्कृताध्यापक थे। वृद्धावस्था में काशी में निवासार्थ आए। इन्हें स्वामीजी प्रतिदिन निश्चित धार्मिक विषय पर व्याख्यान दिया करते और इसी का उपबृंहण तर्क तथा युक्तियों से करके ये अंग्रेजी में लिखते थे। इस अंग्रेजी ग्रन्थ का नाम है—World's Eternal Religion अर्थात् विश्व का सनातन धर्म। यह २४ परिच्छेदों में विभक्त अनुपम ग्रन्थरत्न है। इस अंग्रेजी ग्रन्थ का अनुवाद जर्मन भाषा में भी किया गया है। पाटणकरजी कहा करते थे कि ज्ञानानन्दजी में शास्त्रीय योग्यता के साथ भौतिक ज्ञान की इतनी विपुलता है कि वे एक विशाल साम्राज्य का भी संचालन कर सकते हैं। इतनी योग्यता उनमें थी। नारी-जगत् के कल्याण-साधन में स्वामीजी सर्वदा रुचि रखते थे। इसकी पूर्ति के लिए उन्होंने 'आर्यमहिला-हितकारिणी परिषद्' की स्थापना की। महिलाओं के मंगल एवं चरित्र-निर्माण को लक्ष्य कर उन्होंने **आर्यमहिला** पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया जो अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक वर्षों तक कार्य करती रही। इसी कार्य के सम्पादनार्थ श्री विद्या देवी के प्रयत्न से 'आर्यमहिला-विद्यालय' स्थापित किया गया जो आज काशी के गण्यमान्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्यालयों में गिना जाता है जिसमें बालिकाओं को शिक्षा दी जाती है। यह विद्यालय सर्वथा स्तुत्य एवं श्लाघनीय उद्देश्य की पूर्ति करता है।

अन्तिम समय स्वामीजी का ऑपरेशन कराया गया था। उस समय इन्होंने अद्भुत धैर्य तथा शान्ति का प्रदर्शन किया। नाड़ी बन्द हो जाने पर भी सावधानी से बातचीत करने के अलौकिक चमत्कार को देखकर डॉक्टरों को भी आश्चर्य होता था। स्वामीजी का जन्म १८४६ ईस्वी में हुआ था। १८५७ ईस्वी के सिपाही-विद्रोह के समय की घटनाओं का वर्णन स्वामीजी बड़े चाव से करते थे। क्यों न हो? ग्यारह वर्ष के वय की घटनाएँ पूर्णतया उनके स्मृतिपथ में जागरूक थीं। १०५ (एक सौ पाँच) वर्ष की आयु में स्वामी ज्ञानानन्दजी का तिरोधान काशी में ही माघ कृष्ण पंचमी, सं. २००८=१९५१ ईस्वी में हुआ।

महर्षिज्ञानानन्दचरितम् महाकाव्य के आदि श्लोक में स्वामीजी की विशिष्टता का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

श्रीज्ञानानन्दनामा प्रसृमरविभवः प्रोल्लसत्कीर्तिधामा
योगीन्द्रो यो यतीन्द्रो निजशुचिमहसा शासिताशाक्षितीन्द्रः।
वाराणस्यां शिवोऽन्योऽभवदिह भगवान् पूज्यपादो महर्षि-
र्बोभूयात्तच्चरित्रं भुवि पठितवतां भूयसे मङ्गलाय॥

पण्डित विन्ध्येश्वरीप्रसाद शास्त्रीजी का यह पद्य स्वामीजी के विचित्र चरित्र की एक झाँकी प्रस्तुत करता है—

आदर्शो दर्शनानामपि मुकुटमणिर्योगपारङ्गमानां
सिद्धानां सुप्रसिद्धोऽमितमहिमखनिर्ज्ञानरत्नाकराणाम्।
संशास्ता यो नृपाणां निधिरतिमहसामाश्रयः सज्जनानां
ज्ञानानन्दो गुरूणामपि परमगुरुर्ब्रह्मधाम प्रतस्थे॥

स्वामीजी के स्वरूप का यह वर्णन यथार्थ है—प्रशस्त भाल, विशाल लोचन, नुकीली नासिका, अदृष्टपूर्व जटामुकुटमण्डित मनोहर मुखमण्डल, चरणचुम्बित रजत-धवल श्मश्रु से सुशोभित सर्वाङ्गसुन्दर साकार विग्रह के दर्शन से भगवान् जटाजूटमण्डित चन्द्रचूड के दर्शन का भान होता था। उनका मानसिक सन्तुलन तथा योगशक्ति की सत्ता उनकी मधुर देहयष्टि के समान ही लोकातीत चमत्कार का परिचय देती थी। ऐसे दिव्य चरित्र की गुणावली के विषय में विद्वानों की वाणी मौनावलम्बनी करती थी।

नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्।

स्वामीजी के सहयोगी

स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज को अपने कार्य में विशेष सहायता देने वाले विद्वानों में स्वामी दयानन्दजी का नाम अग्रगण्य है। दयानन्दजी अंग्रेजी भाषा के भी बहुज्ञ विद्वान् थे। धर्मोपदेशकों की शिक्षा-दीक्षा वे ही देते थे। वे सनातन धर्म के प्रभावशाली वक्ता थे। भाषण में बड़ा लालित्य होता था तथा भाषण की शैली बड़ी आकर्षणशील

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होती थी। '**धर्म-कल्पद्रुम**' के निर्माण में इनका सहयोग बड़ा ही महत्त्वपूर्ण था। स्वामीजी ने **धर्मविज्ञान** नामक ग्रन्थ की तीन खण्डों में रचना की (पृ. सं. ९०५) और धर्म के प्रत्येक विधिविधान का वैज्ञानिक विश्लेषण बड़ी मार्मिकता से किया है। उनका मूल कथन है कि वर्तमान युग के पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने जिन सिद्धान्तों का अन्वेषण एवं अनुसंधान किया है वे वैदिक धर्म के तथ्यों के परम प्रकाशक हैं। **गीतार्थचन्द्रिका** स्वामीजी की गीता की तात्त्पर्यबोधिनी अपूर्व व्याख्या है।

ज्ञानानन्दजी के कार्य में सहायक संस्कृत विद्वानों का जमघट महामण्डल के कार्यालय में सदा अवलोकनीय था। ऐसे विद्वानों में कतिपय सज्जनों की ही चर्चा यहाँ सुलभ है—

(१) **पण्डित विन्ध्येश्वरीप्रसाद शास्त्री**—उनकी सेवा महामण्डल को समर्पित रही है। स्वामीजी का जीवनचरित संस्कृत पद्यों में **महर्षिश्री-ज्ञानानन्दचरितम्** नाम से प्रस्तुत किया जो आधुनिक संस्कृत-साहित्य में ज्ञान-विज्ञान-संवलित अभिनव महाकाव्य है। २३ सर्गों में निबद्ध यह ग्रन्थ स्वामी ज्ञानानन्दजी के जीवनचरितं, उपदेश, आध्यात्मिक कार्यकलाप का सांगोपांग वर्णन करता है (प्रकाशक—भारतधर्ममहामण्डल का शास्त्रप्रकाश विभाग, वाराणसी, संवत् २०२५)।

(२) **पं. गोविन्दशास्त्री दुगबेकर** स्वामीजी को अपना गुरु मानते थे जिनकी कृपा से उन्होंने अपनी साहित्य-संरचना में सातिशय उन्नति की। हिन्दी में इन्होंने अनेक नाटक-ग्रन्थों का प्रणयन किया। इन्होंने **ज्ञानानन्द-जीवनवृत्त** की हिन्दी में रचना विस्तृत रूप से की है जिसमें स्वामीजी के जीवन के नाना पक्षों का गंभीर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यह विशाल ग्रन्थ ग्रन्थकार के वैदुष्य का सद्यः परिचायक है।

(३) **पण्डित परमहंस मिश्र**—**सूर्योदय** मासिक संस्कृतपत्र के सम्पादन का गौरव इन्हें प्राप्त है। इन्होंने कश्मीर के अद्वैतवादी शैवदर्शन—प्रत्यभिज्ञा का गंभीर अनुशीलन तथा अध्ययन कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। संस्कृत तथा हिन्दी के ये लब्धप्रतिष्ठ कवि हैं। **प्रसाद और प्रत्यभिज्ञा दर्शन** में इन्होंने हिन्दी के प्रख्यात कवि प्रसादजी के ऊपर प्रत्यभिज्ञा दर्शन के प्रचुर प्रभाव की मीमांसा की है (सं. २०४३)। **तन्त्रसार** को 'नीर-क्षीर-विवेक' हिन्दी भाष्य से संवलित कर दो खण्डों में प्रकाशित किया है (१९८५ ई.)। तन्त्रसार तो संस्कृत व्याख्या से भी विरहित विषम ग्रन्थ है। उसकी मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत कर परमहंसजी ने अपने अभिधान की सार्थकता दिखलाई है। भारतधर्ममहामण्डल के संयुक्त प्रधानमंत्री के पद पर रहकर इन्होंने इस संस्था की भी श्लाघनीय सेवा की है। ये ग्रन्थ मिश्रजी के तान्त्रिक वैदुष्य को विशदता से प्रकाशित करते हैं।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

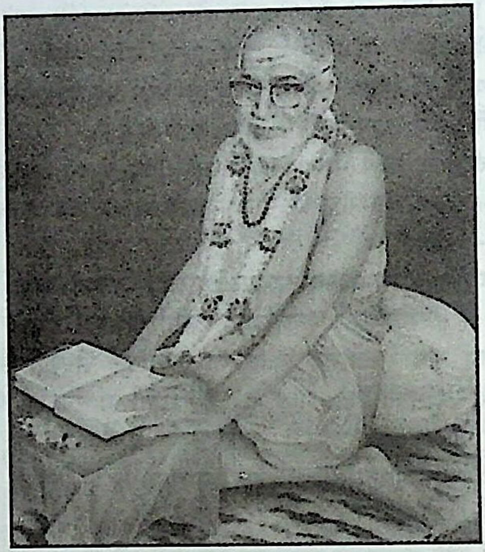

स्वामी करपात्रीजी

(स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती)

अनन्तश्रीविभूषित स्वामी करपात्रीजी महाराज बीसवीं शताब्दी में काशीस्थ संन्यासियों के शिरोमणि रूप से विराजमान रहे। उनकी वाणी और लेखनी दोनों में धर्म के रहस्यों का उद्घाटन करने की अलौकिक क्षमता थी। वे हृदयावर्जिका विमला वाणी के जैसे प्रेरक मनीषी थे, वैसे ही ललितललाम लेखनी के धनी थे। वाणी और लेखनी का यह मञ्जुल सामरस्य किस विद्वान् को अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ नहीं होता? वे वैदिक शास्त्र के मर्म के उन्मीलन में समर्थ वाग्मी थे जिनके विषय में कहा गया है—'वाग्मी भवति वा न वा'। वे वैसे नीरस वेदान्ती नहीं थे जो वेदान्त के शुष्क तर्कों के चिन्तन में ही अपनी प्रतिभा का उपयोग करते हैं, प्रत्युत् वे सौन्दर्य-सार-सर्वस्व रसामृतमूर्ति निकुञ्जविहारी की परम पावन निकुञ्जलीला के भक्ति-रसाप्लुत सहृदय उपासक थे जिनकी कमनीय वाणी से भक्तिरस के मधुमय कण बिखरे पड़ते थे। उनकी लेखनी ने जो कुछ भी निबद्ध किया वह केवल मस्तिष्क की वस्तु नहीं है, वरन् उनके रस-सान्द्र हृदय का आनन्दमय उल्लास है। ऐसे गंभीर चिन्तक, नैष्ठिक उपासक तथा सहृदय लेखक के सात्त्विक जीवन की धारा से परिचित होकर अपने को सुधारने तथा सँवारने की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिलाषा किस व्यक्ति में न होगी? उसी जीवन की एक भव्य झाँकी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

जन्म और शिक्षा

स्वामी करपात्रीजी का जन्म उत्तर प्रदेश में प्रतापगढ़ जिले के भटनी नामक गाँव में श्रावण शुक्ल द्वितीया को सं. १९६४ वि. (सन् १९०७) में हुआ। इनके पूर्वज गोरखपुर जिले के ओझौली गाँव के निवासी थे। परन्तु कालान्तर में कालाकाँकर के राजा स्वामीजी के पितामह को भटनी (प्रतापगढ़) ले गए जहाँ जाकर वे बस गए। स्वामीजी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम पण्डित रामनिधि ओझा था जो बड़े ही सात्त्विक तथा धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे।

पण्डित रामनिधि ओझा के तीन पुत्र हुए जिनमें कनिष्ठ पुत्र का नाम हरनारायण था। यही हरनारायण कालान्तर में स्वामी करपात्री के नाम से प्रसिद्ध हुए। ओझाजी का परिवार पुरातन सभ्यता तथा संस्कृति का बड़ा प्रेमी था। अत: गाँव की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् ओझाजी ने अपने इस पुत्र को संस्कृत पढ़ाने का निश्चय किया। अत: उन्होंने घर पर ही प्रथमा परीक्षा के पाठ्यग्रन्थों को पढ़ाना आरम्भ कर दिया। तीक्ष्णबुद्धि होने के कारण हरनारायण ने शीघ्र ही संस्कृत का साधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया। परन्तु इन्होंने किसी विद्यालय में विधिवत् अध्ययन नहीं किया।

विवाह तथा वैराग्य

बालक हरनारायण का स्वभाव जन्म से ही विरागी था। इसे सांसारिक कार्यों में कोई आनन्द नहीं आता था। केवल नौ वर्ष की वय में ही इसे जीवन से उचाट तथा उदासीनता हो गई और यह बार-बार घर छोड़कर किसी अज्ञात वस्तु की खोज में भागने लगा। एक-दो बार इनके पिता और भाई इन्हें खोजकर घर ले आए परन्तु फिर भी इनका मन घर में नहीं लगता था। पिता ने यह समझकर कि संभवत: विवाह कर देने पर इसका मन संसार में लगने लगेगा, उन्होंने विवाह पास के ही खण्डवा नामक गाँव में कर दिया, परन्तु हरनारायण के विरागी मन में विवाह करने के पश्चात् भी राग उत्पन्न नहीं हो सका। घर छोड़कर भागने का इनका क्रम जारी रहा। अन्त में पिता ने देखा कि इनका मन जब घर में लगता ही नहीं तब इन्हें रोकना व्यर्थ है। अत: इनसे निवेदन किया कि सन्तानोत्पत्ति के बाद तुम घर छोड़कर जा सकते हो। सत्रह वर्ष की वय में सन् १९२४ ई. में इन्हें एक कन्या उत्पन्न हुई। इस प्रकार पिता के आदेश का पालन कर इन्होंने अन्तिम रूप से घर छोड़ने का निश्चय कर लिया। फलत: हरनारायण ने अपने बूढ़े पिता और बूढ़ी माता, युवती स्त्री और अबोध पुत्री को रोते और कलपते हुए छोड़कर संसार से सदा के लिए अपना नाता तोड़ लिया। यही हरनारायण के 'महाभिनिष्क्रमण' की संक्षिप्त कथा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरु की खोज में

केवल सत्रह वर्ष की वय में युवक हरनारायण घर छोड़कर वैरागी बन गए। ये घर से निकल तो पड़े परन्तु इन्हें कहाँ जाना है और क्या करना है, इसका इन्हें स्वयं पता नहीं था। अपने गाँव से पैदल ये अनेक नदी-नालों को पार करते हुए, बीहड़ मार्गों का अतिक्रमण करते हुए आगे बढ़े चले जा रहे थे। अनेक दिनों की पैदल यात्रा करने के पश्चात् ये प्रयाग के समीप कुटेश्वर गाँव में पहुँचे। वहाँ एकाएक देखा कि एक महात्मा वटवृक्ष की छाया में बैठे हुए तपस्या कर रहे हैं। वे महात्मा टाट का कौपीन धारण किए हुए ध्यानमग्न थे। ध्यान भंग होने पर उन्होंने अपने सामने एक नवयुवक को खड़ा पाया। उससे प्रश्न करके उसका आशय जान लेने के पश्चात् उन्होंने हरनारायण से कहा कि "तुम नरवर जाकर अभी अध्ययन करो। तुम पर माँ सरस्वती की विशेष कृपा रहेगी।" इस महात्मा की आज्ञा मानकर हरनारायण नरवर के लिए चल पड़े। कहने की आवश्यकता नहीं कि वे महात्मा स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराज थे जो आगे चलकर ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य हुए। उनका प्रधान आश्रम प्रयाग के 'अलोपी बाग' में था जो आज भी वहीं विद्यमान है।

नरवर में अध्ययन

प्राचीन काल से ही नरवर शिक्षा का केन्द्र रहा है। वहाँ सांगवेद-विद्यालय स्थापित है। इसी विद्यालय में उन दिनों नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रीजीवनदत्तजी महाराज अध्यापन-कार्य करते थे। उन्हीं के चरणों में बैठकर हरनारायण ने देववाणी संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया। यहीं पर उन दिनों स्वामी विश्वेश्वराश्रम महाराज भी विद्यमान थे जो षड्दर्शनाचार्य होने के अतिरिक्त प्रकाण्ड विद्वान् थे। हरनारायण ने इन्हीं विद्वान् से व्याकरण तथा दर्शनशास्त्र का अध्ययन अनेक वर्षों तक किया। कुछ दिनों के पश्चात् स्वामी अच्युतमुनि के अनुरोध पर जब स्वामी विश्वेश्वराश्रमजी नरवर को त्याग कर वहाँ से लगभग ७-८ मील की दूरी पर स्थित 'भृगुक्षेत्र' चले गए, तब हरनारायण को भी उनका अनुगमन करना पड़ा। वहाँ भी इन्होंने अपने अध्ययन का क्रम चालू रखा और कुछ ही वर्षों में अपने स्वाध्याय तथा गुरु की कृपा से प्रकाण्ड पाण्डित्य प्राप्त कर लिया।

घोर तपस्या

अध्ययन के पश्चात् हरनारायण ने तपस्या करने का निश्चय किया। अब इन्होंने हरिहर चेतन (चैतन्य) नाम धारण कर लिया था। तपस्या के आकर्षण के कारण ये उत्तराखण्ड में स्थित हिमालय की हिम से आच्छादित तलहटियों में बैठकर तपस्या करने लगे। भूख और प्यास की यातना सहते हुए ये अपने शरीर की ममता को त्याग कर साधना में निरत हो गए। इस प्रकार ये तीन वर्षों तक घनघोर तपस्या करते रहे। इसी बीच इन्हें आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई और तपस्या सफलीभूत हो गई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब ये अपनी साधना समाप्त कर परमहंस के रूप में आश्रम में लौटे तब इनके मुखमण्डल पर अलौकिक आभा दिखाई पड़ने लगी थी। इनके साथियों ने इनका स्वागत किया और बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। हरिहर चेतन ने सर्वप्रथम अपने गुरु के चरणों की वन्दना की और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

अब हरिहर चेतन केवल एक कौपीन धारण करते थे। केवल पवित्र तथा सदाचारी ब्राह्मणों के घर में ही भिक्षा लेने के लिए जाते थे। ये अपने कर (हाथ) को ही पात्र बनाकर उसी में भोजन किया करते थे। अपने वास्तविक नाम की अपेक्षा इसीलिए ये 'करपात्रीजी' के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हुए।

एक बार करपात्रीजी नरवर आश्रम से प्रयाग आए। वहाँ इन्होंने अपने गुरु स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती का दर्शन किया। स्वामी विश्वेश्वराश्रमजी के अनुरोध से करपात्रीजी ने गुरु ब्रह्मानन्दजी से सन् १९३१ ई. में संन्यास की दीक्षा ली और तभी से ये दण्ड धारण करने लगे। संन्यासाश्रम में दीक्षित होने के पश्चात् स्वामीजी ने धर्म और संस्कृति का प्रचार करना प्रारम्भ किया। इन्होंने भागवत की कथा सुनाकर जनता में धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न की। इनकी अनेक कथाओं में इन पंक्तियों के लेखक को भी उपस्थित होने का अवसर मिला। है। इनकी प्रवचन की पद्धति समुचित तथा विद्वत्तापूर्ण होते हुए संस्कृत की कठिन तथा अप्रयुक्त शब्दावली से इतनी अधिक बोझिल थी कि साधारण श्रोता इसे समझने में नितान्त असमर्थ होता था।

धर्मसंघ की स्थापना

भारत में धर्म का प्रचार करने तथा भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए करपात्रीजी ने सन् १९४० ई. में काशी में धर्मसंघ की स्थापना की। इस संघ का प्रधान कार्यालय दुर्गाकुण्ड रोड पर दुर्गाजी के मन्दिर के पास ही स्थित है। धर्मसंघ के दो विभाग हैं—(१) शैक्षणिक विभाग तथा (२) राजनैतिक विभाग। शैक्षणिक विभाग के अन्तर्गत धर्मसंघ के विस्तृत परिसर में ही एक संस्कृत-पाठशाला की स्थापना की गई जिसमें पाँच-छह अध्यापक बड़े मनोयोग से संस्कृत का अध्यापन करते हैं। इस पाठशाला में व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष, वेद आदि अनेक शास्त्रों का अध्यापन आचार्य कक्षा तक होता है। करपात्रीजी ने इस पाठशाला के लिए सरकारी अनुदान (ग्राण्ट) स्वीकार नहीं किया और इसे धार्मिक जनता के दान से ही संचालित करते थे। यह पाठशाला धर्मसंघ-शिक्षा-मण्डल के अन्तर्गत संचालित होती है। आजकल इस मण्डल के द्वारा बीसियों संस्कृत-पाठशालाएँ संचालित हो रही हैं। करपात्रीजी के इस पवित्र कार्य में स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी, पं. विजयानन्द त्रिपाठी तथा म.म.पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने प्रचुर योगदान किया था। इन विद्वानों की सहायता से करपात्रीजी के द्वारा संस्थापित शिक्षा-मण्डल का कार्य सुचारु रूप से संचालित हो रहा है। इन पाठशालाओं की स्थापना से संस्कृत विद्या का प्रचार देश में हो रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजनैतिक विभाग

धर्मसंघ का दूसरा अंग राजनैतिक विभाग का कार्य है। प्राचीन शास्त्रों के अनुसार इस देश में राज्य-संचालन हो, इस उद्देश्य से स्वामी करपात्रीजी ने 'रामराज्य-परिषद्' नामक संस्था की स्थापना सन् १९५२ ई. में की थी। इस संस्था का एकमात्र लक्ष्य इस देश में रामराज्य की स्थापना है। 'रामराज्य' से करपात्री का अभिप्राय है देश में पक्षपातरहित, न्यायपरायण, धार्मिक शासन की स्थापना, जिसमें इस देश के सभी व्यक्तियों को वर्णाश्रम के आधार पर समान अधिकार प्राप्त हो और सभी लोग शास्त्रों में वर्णित अपने कर्मों को करने में सदा संलग्न रहें।

इसी अभिप्राय से करपात्रीजी ने धर्मसंघ की स्थापना की। रामराज्य-परिषद् की ओर से सन् १९५२ ई. के प्रथम लोकसभा चुनाव के अवसर पर उम्मीदवार खड़े किए गए थे जिनमें अनेक राजे-महाराजे भी थे। इन उम्मीदवारों में अनेक लोकसभा के सदस्य चुन लिए गए थे। बाद के चुनावों में रामराज्य-परिषद् को विशेष सफलता नहीं मिल सकी। इस प्रकार जिस उद्देश्य से रामराज्य-परिषद् की स्थापना की गई थी वह पूरा नहीं हो सका।

हिन्दू कोड बिल का विरोध

जब पण्डित जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री थे तब उन्होंने लोकसभा में हिन्दू कोड बिल उपस्थित किया जिसके अनुसार हिन्दुओं के विवाह और दाय-भाग के अधिकार में महान् परिवर्तन की व्यवस्था थी। करपात्रीजी ने इस कोड बिल को अशास्त्रीय बताकर इसका प्रबल विरोध किया। स्थान-स्थान पर सभा का आयोजन कर इसके विरोध में जनमत तैयार किया। इस कार्य में झूँसी के सन्त श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने इनकी बड़ी सहायता की थी। धार्मिक जनता के प्रबल विरोध के कारण पं. नेहरू को हिन्दू कोड बिल को स्थगित करना पड़ा।

पत्रों का प्रकाशन

स्वामी करपात्रीजी ने अपने धार्मिक तथा राजनैतिक विचारों के प्रचार के लिए 'सन्मार्ग' नामक दैनिक समाचारपत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस पत्र के द्वारा स्वामीजी के विचारों का प्रचार देश में किया जाता है। यह पत्र आजकल काशी और कलकत्ता दोनों स्थानों से प्रकाशित होता है। इन्होंने कुछ दिनों तक 'सिद्धान्त' नामक साप्ताहिक पत्र का भी प्रकाशन किया था जो अनेक वर्षों तक चलता रहा।

गोहत्या-प्रतिरोध

भारत में गोवंश की क्या महत्ता है इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं है। गो को माता कहा गया है। अतः भारतवर्ष में गोहत्या न हो और गोहत्या पर कानून के द्वारा प्रतिरोध लगा दिया जाय, इसके लिए करपात्रीजी ने बहुत बड़ा आन्दोलन खड़ा किया। इस कार्य में श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी तथा पुरी के शङ्कराचार्य स्वामी निरंजनदेव तीर्थ ने बड़ा सहयोग किया। इन दोनों सज्जनों ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर गोहत्या पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिबंध लगाने हेतु आमरण अनशन तक प्रारम्भ कर दिया। स्वामी करपात्रीजी ने अपने भाषणों तथा लेखों द्वारा इस आन्दोलन को और भी अधिक बलवान् बनाया। इसके लिए दिल्ली में प्रदर्शन करने के कारण इन्हें जेल की यातना भी भुगतनी पड़ी। अन्त में सरकार झुक गई और उसने गोहत्या बन्द कर देने का पूर्ण आश्वासन दिया।

यज्ञों की धूम-शिखा

स्वामी करपात्रीजी का यह विश्वास था कि देश के कल्याण और मंगल के लिए यज्ञों का विधान अत्यन्त आवश्यक है। इसी सद्भावना से प्रेरित होकर इन्होंने स्थान-स्थान पर अनेक यज्ञों का विधान किया था। सं. १९९९ वि. (१९४२ ई.) में दिल्ली में शतमुखकोटिहोम नामक यज्ञ का आयोजन इन्होंने बड़ी धूम-धाम से किया था, जिसको देखने के लिए सहस्रों नर-नारी नित्य-प्रति उपस्थित होते थे। इसके एक वर्ष पश्चात् सं. २००० (१९४३ ई.) में कानपुर में गंगा के उस पार एक महान् यज्ञ का आयोजन किया गया। अनेक लोगों के प्रबल विरोध करने पर भी यह यज्ञ सकुशल समाप्त हो गया।

कानपुर के पश्चात् काशी में नगवा के समीप गंगा के तट पर पुनः एक महान् यज्ञ सम्पादित किया गया। इस यज्ञ के अवसर पर १०८ बार श्रीमद्भागवत का सप्ताह पाठ भी आयोजित किया गया था। इस यज्ञ में सम्मिलित होने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को भी प्राप्त हुआ। यज्ञ के अन्त में 'वसुधारा' का दृश्य दर्शनीय था जब सैकड़ों वैदिक विद्वान् अग्नि में आज्य की धारा छोड़ रहे थे। काशी के बाद स्वामीजी ने लखनऊ में लक्षचण्डी-महायज्ञ का श्रीगणेश किया जो सकुशल समाप्त हुआ। उदयपुर के महाराणा के आग्रह पर स्वामीजी ने वहाँ चातुर्मास्य करना स्वीकार किया और वहाँ लक्षचण्डी-यज्ञ का विशाल आयोजन कर उसे राजकीय वैभव के साथ सम्पन्न किया। इस प्रकार इन्होंने यज्ञमय वातावरण उपस्थित कर दिया था।

दैनिक चर्या

स्वामी करपात्रीजी का चरित्र अत्यन्त उदात्त तथा पवित्र था। केवल सत्रह वर्ष की वय में ही इन्होंने अपने घर का परित्याग कर सांसारिक मोह-माया से नाता तोड़ भगवान् से नाता जोड़ लिया था। स्वामीजी की दिनचर्या सन्तुलित तथा नियमित थी। ये प्रतिदिन रात्रि में प्रायः २ बजे उठते थे तथा नित्यकर्म करके पूजा के आसन पर बैठ जाते थे। यह पूजन घण्टों प्रातःकाल तक चलता था। ये पूजन के त्रिकाल नियमों का पालन करते थे। दिन में घण्टों वेद-भाष्य की रचना के लिए लेखन का कार्य करते थे। सन्ध्या के समय प्रायः भागवत की कथा कहते थे अथवा आगत भक्तों को उपदेश देते थे। सन्ध्या को पाँच बजे केवल एक बार भोजन ग्रहण करते थे। रात्रि में पुनः पूजा-पाठ का क्रम चलता था। इस चर्या का पालन करने में ये बड़े कठोर थे।

करपात्रीजी प्रायः पैदल ही चला करते थे। एक स्थान से सुदूर दूसरे स्थान तक जाने के लिए या तो यह नौका से यात्रा करते थे अथवा पैदल ही चलते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु धर्मसंघ की स्थापना होने पर अधिक भ्रमण की आवश्यकता को ध्यान में रखकर इधर ये मोटरकार का भी प्रयोग करने लगे थे। संभवतः वायुयान का प्रयोग भी यात्रा के लिए उत्तम समझते थे परन्तु रेलगाड़ी का प्रयोग संभवतः स्पर्शास्पर्श के कारण उचित नहीं मानते थे।

ग्रन्थ-रचना

स्वामी करपात्रीजी के लिखने की शक्ति भाषणों की अपेक्षा कम नहीं थी। ये लेखनी के धनी थे। संस्कृत एवं हिन्दी उभय भाषाओं में ग्रन्थों का प्रणयन कर इन्होंने पण्डितों का तथा जिज्ञासु जनता का महान् उपकार किया। संस्कृत-ग्रन्थ पण्डितों को लक्ष्य कर लिखे गए हैं और हिन्दी-ग्रन्थ उस भाषा से अनभिज्ञ सामान्य जनता के लिए। संस्कृत-ग्रन्थों के विषय वेद, तन्त्र तथा भक्तिशास्त्र हैं। संस्कृत-रचनाओं में प्रमुख ग्रन्थ हैं—

(क) वेदविषयक ग्रन्थ : वेदार्थ-पारिजातः (बृहत् विशाल दो खण्डों में विभक्त), वेदस्वरूपविमर्श : वेदप्रामाण्यमीमांसा।

(ख) तन्त्रविषयक ग्रन्थ : श्रीविद्यारत्नाकरः।

(ग) भक्तिविषयक ग्रन्थ : भक्तिरसार्णवः।

(१) **वेदार्थपारिजातः**—स्वामी करपात्रीजी नवीन शैली से वेदों की व्याख्या करने में संलग्न थे। स्वामीजी ने 'आध्यात्मिक शैली' को महत्त्व प्रदान कर इसी का पूर्णतः उपयोग अपने वेद के भाष्य में किया है। शुक्लयजुर्वेद-संहिता के चालीसों अध्यायों का इन्होंने विस्तृत भाष्य लिखा है। वेदों के सम्बन्ध में स्वामीजी की **वेदभाष्यभूमिका** दो विस्तृत खण्डों में प्रकाशित हो चुकी है जिसमें हिन्दी पाठकों को ध्यान में रखकर संस्कृत के साथ ही उसका हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है। वेदार्थपारिजात[१] नामक यह ग्रन्थ दो हजार पृष्ठों में है जो इनके वेद-भाष्य की भूमिका-मात्र है। सनातनी परम्परा के पोषक तथा प्रचारक होने के कारण स्वामीजी मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को श्रुति मानते थे। वेद अपौरुषेय हैं। ऋषिगण मन्त्रों के द्रष्टा हैं, कर्त्ता नहीं। इसी प्रकार के अन्य सिद्धान्तों की पुष्टि तर्क तथा युक्ति के सहारे की गई है और इन सिद्धान्तों का विरोध करने वाले व्यक्तियों के मतों का खण्डन इन्होंने बड़े विस्तार तथा वैशद्य से किया है।

(२) **वेदस्वरूपविमर्शः**[२]—स्वामी करपात्रीजी ने वेद के विशुद्ध स्वरूप का परिचय देने के लिए तथा परम्परागत वेद-प्रामाण्य की मीमांसा के लिए इस महनीय ग्रन्थ का निर्माण किया। तर्क-वितर्क वाली शास्त्रीय पद्धति में निबद्ध होने वाला यह

---

१. यह ग्रन्थ राधाकृष्ण प्रकाशन संस्थान, कलकत्ता से १९८० ई. में प्रकाशित है।

२. वेदस्वरूपविमर्शः—करपात्रीजी, भक्तिसुधा साहित्य परिषद्, कलकत्ता, सं. २०२६ वि. (१९६९ ई.)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रन्थ बड़े विस्तार के साथ वैदिक तत्त्वों का उन्मीलन करता है। इस ग्रन्थ में चार अध्याय या विमर्श हैं—(१) वेदस्वरूपविमर्शः, (२) वेदप्रामाण्यविमर्शः, (३) वेदअपौरुषेयत्व-विमर्शः और (४) ब्राह्मणानां वेदत्वविमर्शः। प्रथम विमर्श में वेद शब्द की निरुक्ति, वेद की अनन्तता, यज्ञमीमांसा आदि विषयों का विवेचन कर वेद में विज्ञान और इतिहास का अन्वेषण करने वाले विद्वानों के मत का खण्डन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। द्वितीय विमर्श में वेद के नित्यत्व तथा स्वतःप्रमाण होने के सिद्धान्त का निरूपण किया गया है। बुद्ध की सर्वज्ञता का खण्डन कर अन्त में वेदाध्ययन के अधिकारी का निरूपण किया गया है। तृतीय विमर्श में वेद के अपौरुषेयत्व के सम्बन्ध में गंभीर विचार किया गया है। इस अध्याय के अन्त में वैयाकरणों के वेदविषयक सिद्धान्त का प्रतिपादन बड़ी विद्वत्ता के साथ सम्पन्न हुआ है। चतुर्थ विमर्श में यह बड़े ऊहापोह के साथ दिखलाया गया है कि वेदों का ब्राह्मण (ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्) भाग भी श्रुति का अविभाज्य अंग है। यह ग्रन्थ ४५० पृष्ठों में निर्मित है। वेदों के सम्बन्ध में यावद् ज्ञातव्य वस्तुएँ हैं उन सभी का एकत्र संकलन इस ग्रन्थ में मौलिक रूप में पाया जाता है।

(३) वेद-प्रामाण्य-मीमांसा[१]—पूर्वग्रन्थ के द्वितीय विमर्श के वर्ण्य विषयों की सामग्री कुछ अधिक विस्तार के साथ वेद-प्रामाण्य-मीमांसा नामक इस छोटी-सी पुस्तिका में वर्णित है। विषय की महत्ता तथा विपुल प्रचार की दृष्टि से इसे स्वतन्त्र रूप दिया गया है।

(४) श्रीविद्यारत्नाकर—करपात्रीजी महाराज के तन्त्रशास्त्र-विषयक प्रगाढ़ वैदुष्य का परिचायक यह 'श्रीविद्यारत्नाकरः' संस्कृत-ग्रन्थ अनेक दिशाओं में अपना प्रामुख्य धारण करता है। इसके अनुशीलन से प्रतीत होता है कि वे तन्त्र की आनुष्ठानिक विधियों के, व्यावहारिक कार्यकलापों के तथा तान्त्रिक पूजा-अर्चा के सूक्ष्मतत्त्वों के गंभीर विद्वान् थे। यह ग्रन्थ तन्त्रशास्त्र के प्राचीन महनीय ग्रन्थों जैसे कुलार्णव, तन्त्रराज, कल्पसूत्र, श्रीविद्यार्णव, त्रिपुरारहस्य एवं नित्योत्सव आदि को मुख्य आधार मानकर तत्तद् विषयों का पुंखानुपंख विवरण प्रस्तुत करता है। आरम्भ में दीक्षाक्रम का वर्णन है। तदनन्तर **महागणपतिक्रम** पुरश्चरण विधि, गणेशसहस्रनामावलि आदि के विवरण के साथ प्रतिपादित किया गया है। श्रीक्रम के विविध अनुष्ठान विस्तार से व्याख्यात हैं (पृ. ७५-२३४), तदनन्तर श्यामाक्रम (पृ. २३५-६०), दण्डिनीक्रम, वाराहीक्रम (पृ. २६१-७५) तथा परापद्धति का प्रतिपादन है। अन्त में परिशिष्ट (पृ. २८२-४७०) के भीतर श्रीविद्यामन्त्रभाष्य, वांछाकल्पलता के पश्चात् पूर्णाभिषेक का वर्णन बड़े विस्तार एवं वैशद्य के साथ दिया गया है। श्रीविद्या के सर्वस्वभूत षड्आम्नायों से सम्बद्ध मन्त्रों का भी सुन्दर वर्णन है। ग्रन्थ के अन्त में आदि शंकराचार्य द्वारा प्रणीत प्रख्यात स्तोत्र

१. धर्मसंघ-शिक्षा-मण्डल, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी से प्रकाशित, सं. २०१७ वि.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सौन्दर्यलहरी, त्रिपुरसुन्दरी, मानसपूजा स्तोत्र, बालात्रिपुरासुन्दरी-मानसपूजा स्तोत्र भी दिए गए हैं। अनन्तर महायागक्रम में प्रयोगविधि-समेत भावनोपनिषद् दिया गया है। वर्ण्य विषयों की इस संक्षिप्त सूची से ही ग्रन्थ के विस्तार, गम्भीर तान्त्रिक विवेचन तथा विशिष्ट विषय-विन्यास का जिज्ञासु पाठकों को संकेत मिल जाता है। ग्रन्थ की उपादेयता तथा अपूर्वता नितान्त स्पृहणीय है (प्रकाशक—भक्तिसुधा साहित्य परिषद्, कलकत्ता, २०२९ वि.सं.)।

(५) **भक्तिरसार्णव**—इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य संस्कृत में 'भक्तिरस' का विस्तृत तथा गंभीर विवेचन प्रस्तुत करना है। इस ग्रन्थ-रत्न में भक्तिरस के स्वरूप का शास्त्रीय विवेचन किया गया है। यह मधुसूदन सरस्वती के भक्तिरसायन की शैली में ही निबद्ध है परन्तु उससे अनेक बातों में अपनी विलक्षणता रखता है। संस्कृत की शास्त्रीय पद्धति में निबद्ध होने पर भी अनेक लेखों तथा निबन्धों का संग्रह है। भक्तिरस का विस्तृत तथा विशाल विवेचन ग्रन्थ की महत्ता तथा उपादेयता का स्पष्ट प्रमाण है।

हिन्दी-रचनाएँ

हिन्दी में इनकी रचनाएँ बहुत हैं और प्रमेय-बहुल हैं। उनके प्रधान ग्रन्थ इस प्रकार हैं—(१) विचारपीयूष, (२) रामायणमीमांसा, (३) भक्तिसुधा, (४) श्रीभगवत् तत्त्व, (५) रामराज्य और मार्क्सवाद, (६) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और हिन्दू-धर्म। यहाँ इनका संक्षिप्त परिचय ही ग्रन्थ की उपादेयता तथा प्रामाणिकता को प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त होगा।

(१) विचारपीयूष

यह ग्रन्थ करपात्रीजी द्वारा रचित पुस्तकों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस ग्रन्थ में दो विभाग हैं—(१) भारतीय राजनीति और (२) आधुनिक वाद। प्रथम विभाग में स्वामीजी ने वेद, शास्त्र, काव्य, इतिहास और पुराणों में वर्णित राजनीति का सम्यक विवेचन किया है। महाभारत इतिहास का ग्रन्थ होने के अतिरिक्त राजनीति का अगाध भण्डार है। इसके शान्तिपर्व में राजनीति का सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। स्वामीजी ने महाभारत में उपलब्ध भारतीय राजनीति के विभिन्न तत्त्वों का उद्घाटन बड़ी ही विद्वत्ता से किया है। इसके साथ ही भारतीय नीतिकारों तथा संस्कृत के कवियों, विशेषकर भारवि और माघ—ने कूटनीति का जो विवरण अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत किया है उसका वर्णन स्वामीजी ने सरल रीति से हिन्दी-पाठकों के लिए किया है। इस विभाग में इन्होंने छह विषयों का मूल उद्धरणों के साथ विवेचन किया।

दूसरा विभाग 'आधुनिक वाद' है जिसमें विभिन्न प्रकार के ग्यारह विषयों (टाक्पिक्स) पर विचार प्रकट किए गए हैं। स्वामीजी के द्वारा विचारणीय विषयों की सीमा बड़ी विस्तृत है। इन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता से लेकर वैयक्तिक सम्पत्ति, मार्क्सवाद, जनतंत्र, धर्मसापेक्षता और कौटिलीय अर्थशास्त्र तक को भी अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विचारों का खण्डन किया। स्वामी करपात्रीजी की धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक विचारधारा से भले ही कोई सहमत न हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस ग्रन्थ की रचना से इनकी राजनीतिक विद्वत्ता का पदे-पदे पता चलता है।

(२) रामायण-मीमांसा

स्वामी करपात्रीजी द्वारा रचित यह विशालकाय ग्रन्थ रॉयल साइज के १११४ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। इस ग्रन्थ में करपात्रीजी ने कामिल बुल्के द्वारा लिखित 'रामकथा' के आक्षेपों का उत्तर दिया। इसके साथ ही रामकथा से सम्बन्धित जो उपलब्ध सामग्री है उसका एकत्र संकलन किया गया। इस मोटी-सी पुस्तक में कुल मिलाकर २२ (बाईस) अध्याय हैं। स्वामीजी ने रामकथा की परम्परा तथा इस कथा के विभिन्न काण्डों की कथा का प्रामाणिक तथा शास्त्रीय विवरण स्वामीजी के द्वारा प्रस्तुत है। परन्तु सबसे अधिक आश्चर्यजनक विषय है स्वामीजी के द्वारा भारतीय भाषाओं में रामकथा-साहित्य का पाण्डित्यपूर्ण विवेचन। करपात्रीजी ने हिन्दी, बँगला, उड़िया, असमिया, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में उपलब्ध रामकथा-सम्बन्धी ग्रन्थों का विवरण प्रस्तुत करने के पश्चात् राम के चरित-सम्बन्धी काव्यों का सांगोपांग विवेचन किया है। किम्बहुना, उर्दू साहित्य में रामकथा को लेकर जो काव्य लिखे गए हैं उनका भी वर्णन यहाँ पाया जाता है। राम की कथा का प्रचार तथा प्रसार प्राचीन काल में भारत के बाहर दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा तिब्बत, चीन और लंका में भी पाया जाता है। इस विषय के सम्बन्ध में पुस्तकों का अभाव है। परन्तु करपात्रीजी ने अपनी अलौकिक विद्वत्ता से तिब्बत, खोतान, हिन्देशिया, मलाया, जावा, हिन्दचीन, श्याम, बर्मा आदि देशों में प्रचलित रामकथा का बड़ा ही प्रामाणिक तथा विशद वर्णन किया है। इससे स्वामीजी के अगाध पाण्डित्य का पता चलता है।

दूसरी बात जो भारतीय विद्वानों को स्वामीजी के गंभीर अध्ययन की सूचना देती है वह है रामायण और महाभारत का काल-निर्णय। भारतीय इतिहास के इन महाकाव्य ग्रन्थों के समय-निर्धारण के सम्बन्ध में यूरोपीय विद्वानों—जैसे मैक्समूलर, मैकडॉनल, कीथ, वेबर, ब्यूलर आदि—ने जो विवेचन किया है, उसे पूर्वपक्ष मान कर स्वामीजी ने अनेक मतों का बड़ी ही गंभीरता के साथ खण्डन किया है। इतना ही नहीं, प्रिंसेप, एलेन, मार्शल स्मिथ तथा कनिंघम आदि विदेशी विद्वानों ने भारतीय इतिहास तथा अशोक के शिलालेखों के सम्बन्ध में जो मत व्यक्त किया है, स्वामीजी ने उसकी भी खरी आलोचना की है। पश्चिमी तथा भारतीय विद्वानों के मत से रामायण तथा महाभारत की रचना बुद्ध के पश्चात् और ईसा के पहिले दूसरी या तीसरी शती में हुई थी। परन्तु स्वामीजी ने इसकी रचना ईसा से हजारों वर्ष पूर्व में सिद्ध करने का प्रयास किया। यह दूसरी बात है कि करपात्रीजी के तर्कों तथा उनकी स्थापनाओं से भले ही कोई देशी या विदेशी विद्वान् सहमत न हो, परन्तु जिस विद्वत्ता के साथ स्वामीजी ने इन तर्कों को प्रस्तुत किया है उसकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रशंसा किए बिना कोई नहीं रह सकता। कहाँ वेदान्त का ज्ञान और कहाँ भारतीय पुरातत्त्व तथा अभिलेख-शास्त्र का अध्ययन। परन्तु स्वामीजी के व्यक्तित्व में इन दोनों ही प्राचीन तथा नवीन विद्याओं का मनोहर समन्वय पाया जाता है।

(३) भक्तिसुधा[१]

स्वामीजी के भागवत-विषयक ग्रन्थों में यह ग्रन्थ निःसन्देह मुकुटमणि है। इसका प्रथम संस्करण तीन खण्डों में विभिन्न समयों में प्रकाशित हुआ था। नवीन द्वितीय संस्करण उसी का एक ही खण्ड में परिष्कृत एवं परिबृंहित स्वरूप प्रस्तुत करता है। लगभग एक सहस्र पृष्ठों में संवलित यह विपुलकाय ग्रन्थ परिमाणतः ही विपुल एवं अभिराम नहीं है, अपितु गुणतः भी कमनीय एवं रमणीय है। स्वामीजी का यह मौलिक ग्रन्थ निःसन्देह उनकी तपःपूत लेखनी का अद्भुत चमत्कार है। इसके दो तिहाई भाग में (लगभग सात सौ पृष्ठों में) व्रजनन्दन की वृन्दावन-लीला के ही नानारूपों का सांगोपांग विवेचन रसिकों के लिए चिन्तन एवं मनन की विपुल नूतन सामग्री प्रस्तुत करता है। वेणुगीत, चीरहरण, रासलीला एवं रासपंचाध्यायी का गंभीर विवेचन रोचक शैली में निबद्ध होकर अपने पूर्ण वैभव के साथ यहाँ प्रस्तुत किया गया है। श्रीमद्भागवत के प्रचुर श्लोकों की गंभीर एवं नवीन व्याख्या स्वामीजी की अलौकिक प्रतिभा का प्रसाद उपस्थित करती है। केवल यह एक ही ग्रन्थ करपात्रीजी की अलौकिक कल्पना, विशद व्याख्यान-शैली एवं नवीन आध्यात्मिक तथ्यों की विवेचना का द्योतक ग्रन्थरत्न माना जा सकता है।

(४) भगवत्-तत्त्व[२]

यह भी करपात्रीजी के द्वारा लिखित, विशिष्ट महत्त्वपूर्ण निबन्धों का संग्रह है।

(५) मार्क्सवाद और रामराज्य[३]

इसमें पाश्चात्त्य राजनीति और भारतीय राजनीति का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत कर कार्लमार्क्स के सिद्धान्तों की अनुपयोगिता सिद्ध की गई है।

स्वामीजी के इतर हिन्दी-ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—(१) वर्णाश्रमधर्म और संकीर्तन-मीमांसा, (२) वेद का स्वरूप और प्रामाण्य, (३) अहमर्थ और परमार्थता, (४) संघर्ष और शान्ति, (५) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और हिन्दू धर्म, (६) विदेश-यात्रा का शास्त्रीय पक्ष, (७) पूँजीवाद, समाजवाद एवं रामराज्य।

करपात्रीजी का व्यक्तित्व

स्वामी करपात्रीजी महाराज का व्यक्तित्व अलौकिक था जिसमें दृढ़ कर्मठता का, दीर्घ तपस्या के बल से उपार्जित विशुद्ध ज्ञान का तथा सात्त्विक हृदय में उद्वेलित परमानन्द से आप्लुत भक्ति का मधुमय सामंजस्य सद्यः प्रस्फुटित होता था। जिस

---

१. राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान, कलकत्ता द्वारा १९८० ई. में प्रकाशित
२. मूलचन्द चोपड़ा द्वारा बनारस से १९९७ वि. में प्रकाशित
३. गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी विषय के विश्लेषण में उनकी शेमुषी संलग्न होती थी, वह विषय गंभीरतम, कठिन से कठिन होने पर भी श्रोताओं तथा पाठकों के हृदय में अत्यन्त सरलता से उपस्थित हो जाता था। उनकी वाणी तथा लेखनी दोनों ही धार्मिक जनता को आकृष्ट करने की अद्‌भुत क्षमता रखती थीं। उनकी मधुर वाणी का चमत्कार उनके अद्‌भुत भाषणों में दृष्टिगोचर होता था तो उनकी प्रौढ़ लेखनी का प्रभाव उनके प्रमेय-बहुल ग्रन्थों में भूरिशः अनुभवगम्य बनता है। इस तथ्य को दृष्टान्तों के सहारे बतलाने की आवश्यकता नहीं है।

स्वामीजी के भाषणों एवं ग्रन्थों—दोनों की एक मधुर दिशा है। इन्हें सुनकर तथा पढ़कर व्यक्ति के हृदय में तत्तद् विषयों के प्रति किसी प्रकार के संशय का लेश भी विद्यमान नहीं रहता। शास्त्रीय तथ्यों के विश्लेषण के समय उनकी वाणी जितनी तर्कनिष्ठ एवं युक्तिप्रवण होती थी, भक्तिरस के विवरण में वह उतनी ही मधुर, सरल-सुबोध एवं आनन्द-प्रसविनी बनती थी। भागवत की 'रासपंचाध्यायी' के रहस्यों का उद्‌घाटन उनकी भक्तिमयी वाणी इतनी सुन्दरता से करती थी कि उसमें नए-नए भावों की व्यंजना से, नवीन अर्थों की अभिव्यक्ति से एवं भगवल्लीला के अविराम आयामों की स्फूर्ति से श्रोताओं का हृदय आनन्द से आप्लावित हो उठता था। राधा-माधव की निकुंज-लीला में प्रवेश कर वे अपनी विलक्षण अनुभूति का वर्णन सुनाकर विज्ञ श्रोताओं को रसविभोर बना डालते थे। उनके व्यक्तित्व में मस्तिष्क और हृदय दोनों की उदात्त वृत्तियों को जगाने की, उद्‌बुद्ध करने की तथा संचारित करने की विलक्षण प्रतिभा थी।

करपात्रीजी के जीवन में कर्म, ज्ञान तथा भक्ति की विमल त्रिवेणी प्रवाहित होती थी। रामराज्य-परिषद् की स्थापना, राजनीतिक चुनावों में भाग लेना, अपने विषय के प्रतिपादन के लिए सभामंचों से भाषण देना, धर्मसंघ की स्थापना तथा संस्कृत-विद्या के प्रचार के लिए संस्कृत-विद्यालय की स्थापना—ये उनके कर्मठ जीवन के उज्ज्वल प्रतीक हैं। अध्यात्मविषयक अनेक ग्रन्थों की संस्कृत तथा हिन्दी में रचनाएँ इनके जीवन के ज्ञानपक्ष को उद्‌द्योतित करती हैं। प्रारम्भिक भाषणों में ज्ञानपरक विषयों के निरूपण में ये संस्कृतमयी, लच्छेदार तथा कठिन भाषा का प्रयोग इतना अधिक करते थे कि श्रोताओं के समूह में शायद ही दो-चार व्यक्ति इनके आशय को समझने में समर्थ हो सकते थे। परन्तु धीरे-धीरे इन्होंने अपने भाषण के स्तर को सरल बनाया जिससे सभी लोग आसानी से समझ सकें।

भक्तिरस के विवेचन में करपात्रीजी बड़े ही अनुरागी व्याख्याता थे। श्रीमद्‌भागवत की व्याख्या की ओर इनका नैसर्गिक आकर्षण था। राधा-माधव की लीलाओं के रहस्य का उद्‌घाटन ये इतनी सुन्दरता से करते थे कि कथा सुनने वाले लोग मुग्ध हो जाते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्तिरस का उदय तथा अभ्युदय, विचार एवं विश्लेषण—सब कुछ श्रीमद्भागवत के ही अनुशीलन का व्यापक फल था और इस महनीय कार्य के सम्पादन का श्रेय मिलना चाहिए काशी के अद्वैतवेदान्त के मनीषी संन्यासियों को ही। इसी काशी नगरी के महनीय अद्वैती संन्यासी श्रीधर स्वामी ने अपनी 'भावार्थदीपिका' नामक भागवत की व्याख्या के द्वारा भागवत के गंभीर अर्थ को सर्वसाधारण के लिए सरल तथा सुबोध बनाया। यह घटना १४वीं शताब्दी की है। इसके तीन शताब्दी बाद में विद्यमान गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन मधुसूदन सरस्वती शुष्क ज्ञानमार्ग के अनुयायी, अद्वैतवादी संन्यासी नहीं थे प्रत्युत् भक्तिरस के व्याख्याता एवं भक्तिस्निग्ध हृदय से सम्पन्न एक महामान्य साधक तथा भक्त भी थे। अद्वैतसिद्धि जैसे अद्वैत ज्ञान से मंडित ग्रन्थ-रत्न के प्रणेता होने के साथ ही साथ ये 'भक्तिरसायन' जैसे भक्तिरस की व्याख्या करने वाले ग्रन्थ के रचयिता भी थे। चौसट्ठी घाटपर विद्यमान अपने मठ में रहने वाले मधुसूदन सरस्वती काशी की ही प्रतिभाशाली विभूति थे। १८वीं शती में विराजमान स्वामी नारायणतीर्थ ने जहाँ वेदान्त के चूड़ान्त ग्रन्थों का प्रणयन किया, वहीं वे 'शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र' की भक्तिचन्द्रिका नामक व्याख्या लिखकर भक्ति के तत्त्व, प्रकार तथा साधना को वेदमन्त्रों के द्वारा प्रतिष्ठित करने वाले व्याख्याकार थे। ये भी वाराणसी के ही संन्यासी-सम्प्रदाय के अलंकार थे। स्वामी करपात्रीजी भी काशी की इसी भक्तिमार्गीय, भागवती अद्वैती संन्यासियों की परम्परा के मुकुटमणि के रूप में विराजमान थे। ऐसे दिव्य मनीषी ७ फरवरी १९८२ को ब्रह्मलीन हो गए और उनके तिरोधान से सनातनधर्म की अपूरणीय क्षति हो गई।

करपात्रीजी का व्यक्तित्व

श्री करपात्रीजी का व्यक्तित्व बड़ा ही विशाल था। वे अद्वैतवेदान्त के प्रतिभा-सम्पन्न उच्चकोटि के मर्मज्ञ विद्वान् थे। उनका शास्त्रीय वैदुष्य गुरुमत से अधिगत विद्या का प्रसाद नहीं था, प्रत्युत् वह उनकी लोकातीत प्रतिभा की अन्तःस्फूर्ति का दिव्य प्रतीक था। अद्वैत के सहायक तथा पोषक मीमांसा, न्याय तथा सांख्ययोग शास्त्रों का भी ज्ञान उनका उतना ही पूर्ण तथा प्रभावशाली था। शास्त्रार्थ में उनकी वावदूकता तथा तर्कानुगामिता उतनी ही आवर्जक थी। सनातनधर्म के सिद्धान्तों के मण्डन करने में तथा उसके प्रतिस्पर्धियों के तर्काभास से परिपुष्ट मतों को ध्वस्त करने में उनकी तर्कचातुरी का चमत्कार प्रौढ़ विद्वानों को भी आश्चर्यचकित करने वाला था। उनके आरम्भिक कथा-प्रवचनों में वेदान्त के शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का बहुल प्रयोग उनके श्रोताओं के लिए एक विषम समस्या थी। परन्तु स्वामीजी ने धीरे-धीरे अपने भाषणों को जनता के लिए बोधगम्य बनाने की दृष्टि से उनके स्तर को कुछ कोमल बनाया। कठिन विषय के समझाने की उनकी शैली बड़ी ही रोचक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा आकर्षक थी। उपनिषद् तथा शास्त्रों के प्रमाणभूत वचन उनके मुख से अनायास ही स्थान-स्थान पर आते रहते थे। फलतः स्वामीजी के समान अन्तराल में पहुँचकर शास्त्र के गूढ़ मर्मों को सीधी-सादी भाषा में जनता को समझाने वाला कोई दूसरा वक्ता नहीं था। वह सामान्य वक्ता न होकर शास्त्रार्थपटु अलौकिक वाग्मी थे जिसके विरल अस्तित्व के विषय में शास्त्र की उक्ति है—'वाग्मी भवति वा न वा'।

स्वामी करपात्रीजी भारतीय राजनीति के एक कर्मठ उपासक एवं दिव्य आदर्श के प्रतिष्ठाता थे। वे शास्त्रानुमोदित शासन को राजनीति का आधार मानते थे और इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्होंने 'रामराज्य-परिषद्' की स्थापना की थी। पाश्चात्त्य भौतिकतावादी राजनीति का कोई भी दृढ़ दार्शनिक आधार नहीं है। प्रथम बार कार्लमार्क्स ने 'कैपिटल' नामक मौलिक राजनीतिक ग्रन्थ में साम्यवाद और सामाजिक भौतिकवाद की व्याख्या दार्शनिक आधार पर की। स्वामी करपात्रीजी ने मार्क्सवाद तथा तत्सम्बद्ध राजनीतिक समस्याओं का मूल्यांकन अपने सुचिन्तित ग्रन्थ 'मार्क्सवाद और रामराज्य' में किया है। भौतिक विषयोपयोग, पूँजीवाद एवं श्रमिकवाद के दलदल से राजनीति को समुद्धृत कर स्वामीजी ने रामराज्य के मर्यादावाद एवं अध्यात्मवाद पर केन्द्रित किया। उन्होंने दिखलाया कि पूँजी तथा श्रम के परस्पर पोषक होने से स्वार्थान्धता एवं वर्गविद्वेष तथा वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों को प्रश्रय मिलेगा जो मानव-समाज तथा विश्व के विनाश का कारण बनेगा। भारतीय राजनीति इस सिद्धान्त से कोसों दूर है। रामराज्यवाद की आध्यात्मिकता पर आधारित, धर्म-नियन्त्रित नीति से प्राणिमात्र को 'अमृतस्य पुत्राः' परमेश्वरी सन्तान मानकर उनके प्रति सहज भ्रातृभाव का समर्थन करता है। इस प्रकार प्रायः बारह सौ पृष्ठों के इस महनीय ग्रन्थरत्न में राजनीतिक क्षेत्र में विश्व को सुख-शान्ति देने वाला रामराज्य ही विश्व का एकमात्र कल्याण-साधन हो सकता है—इस तथ्य का प्रतिपादन स्वामीजी ने बड़े तर्क तथा दृढ़ युक्तियों के सहारे सिद्ध किया। भारतीय राजनीति का ठोस दार्शनिक आधार प्रस्तुत करने वाला यह ग्रन्थ श्री करपात्रीजी के राजनीतिक चिन्तन तथा अनुशीलन का अनुपम प्रतीक है।

वर्तमान युग में भौतिकवाद के झंझावात से डाँवाडोल होने वाले वैदिक धर्म के संरक्षण, परिबृंहण तथा प्रस्थापन के निमित्त श्री स्वामीजी ने जो अश्रान्त अदम्य प्रयासों को संचारित किया उनका सुफल हमारे सामने विद्यमान है। उन्होंने भौतिकवाद की प्रबल आँधी से सनातन धर्म को मुक्त कर देश में धार्मिक एवं आध्यात्मिक वातावरण की सर्जना की, श्रौत-स्मार्त पद्धतियों से परिपूर्ण यज्ञों के अनुष्ठान की परम्परा का श्रीगणेश किया और शास्त्र एवं शास्त्रीयता की मर्यादा को उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया। 'सर्ववेदशाखा-सम्मेलनों' के माध्यम से उन्होंने देश में वैदिक धर्म की पुनः स्थापन्ना की। वेदों की अपौरुषेयता, उनका प्रामाण्य एवं उनकी सनातन उपयोगिता को सिद्ध कर स्वामीजी ने वेदों के प्रति लोगों में श्रद्धा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्पन्न की, शास्त्रीय पद्धति को जीवन-यापन का मार्ग बनाया तथा सनातन धर्म की ज्योति को सर्वदा के लिए आलोकित कर दिया। सचमुच उनका व्यक्तित्व बड़ा विशाल था। वे लोक-कल्याण में निरन्तर संलग्न महामनीषी थे। वे सचमुच ही धर्मसम्राट् थे—अलौकिक महापुरुष थे, जिनके लोकातीत कार्यों का मूल्यांकन भविष्य की पीढ़ियाँ बड़े आदर और सम्मान से करती रहेंगी।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

काशी में भागवत-व्यासों की परम्परा

काशी में श्रीमद्भागवत का प्रवचन करने वाले विद्वान् व्यासों की परम्परा रही है। इस परम्परा के अन्तर्गत गुजरात, महाराष्ट्र तथा उत्तर प्रदेश से सम्बद्ध ब्राह्मण-परिवारों का अन्तर्भाव होता है। वल्लभाचार्य के द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्गीय वैष्णवों की क्रीड़ास्थली होने के कारण भागवत के कथाकार व्यासों का प्राचुर्य काशी में होना नितान्त स्वाभाविक है। महाराष्ट्रीय वैष्णव सन्त भी काशी में आकर अनेक वर्षों तक यहाँ निवास करते थे तथा मराठी में भागवतविषयक ग्रन्थों का प्रणयन करते थे। प्रसिद्ध सन्त एकनाथ ने काशी में ही अपने प्रख्यात आध्यात्मिक ग्रन्थ **एकनाथी भागवत** का प्रणयन किया था (समाप्ति काल १५७३ ई.)। उत्तर प्रदेश के महनीय वैष्णव सन्त तथा पण्डित काशी में निवास करते थे तथा भागवत की मनोरम कथा का प्रचार अपने व्याख्यानों एवं भागवत-प्रवचनों द्वारा किया करते थे। यह परम्परा आज भी जागरूक है तथा प्रगति पर है।

पण्डित भागवतीजी—ऐसे ही काशी मण्डल में जनमे एक भागवत-मर्मज्ञ व्यास का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है। इनका नाम तो था **श्री भूपनारायण मिश्र,** परन्तु वे अपनी 'भागवतीजी' की अन्वर्थक आख्या से ही विशेष प्रसिद्ध थे। इनका जन्म हुआ था वाराणसी मण्डल अन्तर्गत चन्दौली जनपद के 'महाइच' परगने में 'महेशी' (आवाजापुर) नामक ग्राम में पण्डित परमेश्वरदत्त मिश्र के आत्मज-रूप में विक्रम संवत् १९१६ (१८५९ ई.) में।

इनका घर का नाम भूपनारायण मिश्र था। पाँच भाइयों में ये तृतीय थे। कहा जाता है कि विद्याध्ययन के लिए वाराणसी आकर किसी कार्यवश शीघ्र ही घर लौटकर जाते समय मार्ग में ग्राम के एक ब्राह्मण ने उपहास में कहा कि ''ये देखो भूपन बनारस से भागवत पढ़ के आ गए।'' इस बात की प्रतिक्रिया के रूप में पण्डितजी ने पुनः वाराणसी आकर उस समय के विभिन्न विषयों के प्रख्यात विद्वानों से व्याकरण, साहित्य, मीमांसा, वेदान्त, धर्मशास्त्र, महाभारत एवं श्रीमद्भागवत का गंभीर प्रौढ़ अध्ययन किया और भागवत के पूर्ण विद्वान् के रूप में ही पुनः घर लौटे। उन्होंने श्रीमद्भागवत का अध्ययन **पं. विश्वेश्वरदत्त ब्रह्मचारी भागवतीजी** से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया और उनके ही स्थान नीलकण्ठ मुहल्ला में राममन्दिर पर भागवत का अध्यापन नित्य पूर्वाह्न और अपराह्न दोनों समय निरन्तर यावज्जीवन करते रहे। यदाकदा वाल्मीकि रामायण और महाभारत का भी पाठ चलता रहा। श्रीधरी टीका अधिकतर इनको कण्ठस्थ थी। श्रीधरी के अनुसार ही ये व्याख्या करते थे।

इनकी अध्यापन-शैली व्याकरण, साहित्य और दर्शन के प्रौढ़ विद्वानों को भी श्रद्धावनत और मुग्ध करती थी। अनेक विद्यालयों का मूर्धन्य विद्वद्वर्ग एवं साधुवर्ग इनसे निःसंकोच अध्ययन करता था। जब वे 'लोके व्यवायामिषमद्यसेवा' इत्यादि श्लोकों की व्याख्या करते थे तब लगता था कि ये कोई उद्भट मीमांसक हैं। भागवत की 'वेदस्तुति' ऐसे स्थलों की व्याख्या के अवसर पर उनका दार्शनिक ज्ञान दर्शन के अच्छे विद्वानों को भी आश्चर्यचकित कर देता था। मारवाड़ी-संस्कृत-महाविद्यालय के अध्यक्ष श्री मदनमोहन शास्त्री और सेठ गौरीशंकर गोयनका अपने-अपने महाविद्यालयों में उन्हें भागवत के अध्यापन के लिए ले जाना चाहते थे किन्तु इन्होंने वृत्तिकाध्यापन को अस्वीकार कर दिया। अन्तिम समय में अनन्तश्री करपात्रीजी के धर्मसंघ महाविद्यालय, वाराणसी में अध्यापन करते रहे। वाराणसी के प्रख्यात प्रतिष्ठित व्यक्ति कामेश्वरप्रसाद अग्रवाल के नीचीबाग के मन्दिर में प्रतिदिन वर्षों तक उनका कथा-प्रवचन चलता रहा। उनके सहस्त्रों शिष्य भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में बिखरे हुए हैं जिनमें कई धर्माचार्य संन्यासी महात्मा भी हैं। उन्हीं में एक स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी भी हैं। उनके छोटे पुत्र राधाकान्त मिश्र महेशी में और दो पौत्र श्रीचन्द्रकान्त मिश्र और शशिकान्त मिश्र वाराणसी में रहते हैं। इनका निधन वाराणसी में राममन्दिर में ही संवत् २०१४ (१९५७ ई.), भाद्रपद शुक्ल तृतीया को ९८ वर्ष की आयु में हुआ। पण्डित-वर्ग एवं सम्मानित जनवर्ग में पण्डितजी की उच्चकोटि की प्रतिष्ठा थी। उन्होंने भागवत के प्रचार-प्रसार का अनुपम कार्य किया और भागवत के कई उच्च विद्वान् देश को दिए।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दतिया के स्वामीजी

(श्री पीताम्बरापीठाधीश्वर वनखण्डेश्वर)

मध्य प्रदेश के प्रख्यात वनखण्डेश्वर महादेव की पुरातन तपःस्थली को निज तीव्र तपस्या की साधना से प्रोद्दीप्त तथा प्रोज्ज्वल बनाने वाले स्वामीजी महाराज के गुणों का वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। इन्होंने विस्तृत तीर्थ को जागरित किया तथा वहीं भगवती पीताम्बरा देवी की पीठ स्थापित कर सहस्रों भक्तों को साधना में दीक्षित किया, अपने भाषणों तथा उपदेशों से तान्त्रिक साधना के गूढ़ रहस्यों का उन्मीलन कर सुयोग्य शिष्यों को तैयार किया तथा स्वयं तन्त्र साहित्य से सम्बद्ध ग्रन्थों का प्रणयन कर विद्वज्जनों का महान् उपकार किया—ये तथ्य स्वामीजी महाराज के निर्मल आध्यात्मिक जीवन की कसौटी पर कसे गए सोने की तरह उद्दीप्त करने के लिए पर्याप्त माने जा सकते हैं।

स्वामीजी ने अपने जीवन की गाथा आग्रह करने पर भी प्रकटित नहीं की, परन्तु शास्त्रचर्चा के अवसर पर यथाकथञ्चित् संकेतों के द्वारा अभिव्यक्त घटनाएँ एकत्र कर उनका जीवनवृत्त उपन्यस्त किया जा सकता है।

उनका जन्म काशी मण्डल में हुआ था। चन्दौली जनपद की चकिया तहसील के पास ही रामपुर नामक एक गाँव है काशी से पचास किलोमीटर की दूरी पर और इसी गाँव में मध्यम कोटि के सरयूपारीण ब्राह्मण-परिवार में स्वामीजी ने जन्म लिया था। पिता का नाम था—ज्योतिर्विद् हरिप्रसादजी, जो इनके जन्म के थोड़े ही दिनों बाद दिवंगत हो गए। स्वामीजी का नाम था **महावीर प्रसाद**। बाल्यावस्था में इनकी माता अपने कंधे पर चढ़ाकर उन्हें चकिया में काशीनरेश द्वारा स्थापित तथा अभ्यर्चित कालीजी का दर्शन कराने के लिए लाया करती थीं। उसी समय से स्वामीजी की अभिरुचि शक्ति की अर्चना की ओर स्वतः आकृष्ट हो गई। बड़े होने पर महावीरप्रसादजी काशीनरेश के रामनगर दुर्ग के भीतर प्रतिष्ठापित हनुमान्जी की पूजा-अर्चा के लिए नियमतः आया करते थे। हनुमान्जी की यह मूर्ति बड़ी विलक्षण तथा विचित्र है। मूर्ति इतनी सुन्दर बनी है कि पूरे विग्रह पर रोयें अलग-अलग दिखलाई पड़ते हैं। यही हनुमान्जी स्वामीजी के इष्ट थे। स्वामीजी नियमित रूप से व्यायाम करते थे तथा अखाड़ों में लड़ा करते थे। मल्लविद्या के इस अभ्यास से स्वामीजी का शरीर बड़ा पुष्ट, सुडौल तथा भव्य दृष्टिगोचर होता था।

स्वामीजी का जन्म वि.सं. १९५५ की चैत्र शुक्ल पंचमी (तदनुसार २९ मार्च १८९८ ईस्वी) को हुआ था। पिता के दिवंगत हो जाने पर माता बालक को अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मायके में ले गई जो बलिया मण्डल में पड़ता था। इसी मण्डल के 'छाता' नामक गाँव में स्वामीजी को स्कूली शिक्षा प्राप्त हुई और यहीं के मिडिल स्कूल से १९१२ ईस्वी में इन्होंने हिन्दी मिडिल पास किया। उर्दू उस युग में द्वितीय भाषा के रूप में नियमत: पढ़ाई जाती थी। स्वामीजी ने उर्दू की शिक्षा यहीं प्राप्त की और तभी से इन्हें उर्दू की कविता पढ़ाने का और स्वयं बनाने का चस्का लग गया। आगे चलकर स्वामीजी को बँगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी आदि प्रांतीय भाषाओं में दक्षता प्राप्त करने का सुयोग मिलता गया और इन भाषाओं का ज्ञान उन्हें आसानी से प्राप्त हो गया।

१९१३ ईस्वी में स्वामीजी ने गृहत्याग कर दिया और काशी में आकर संस्कृत भाषा के गंभीर अध्ययन में ये संलग्न हो गए। काशी विद्यापीठ में व्याकरण पढ़ने लगे। इनके व्याकरणाध्यापक का नाम था मैथिल पण्डित ब्रह्मानन्द झा, जो पढ़ाने-लिखाने में बड़े ही अनुरागी तथा प्रौढ़िप्राप्त सुबुद्ध वैयाकरण थे। काशी में ही 'भारतमाता' के मन्दिर के पास ही एक छोटी कुटिया में गिरनार स्वामी तारानन्दजी रहते थे। इनके सम्पर्क से महावीर प्रसाद के हृदय में तीव्र वैराग्य की भावना जागी और इन्हें सुयोग्य विरक्त संन्यासी पाकर इन्हीं से उन्होंने संन्यास की दीक्षा ग्रहण की। अब इनका नाम हो गया **देवानन्द स्वामी** और इसी नाम से ये अपने सहपाठियों में प्रसिद्ध हुए। विद्यापीठ में पढ़ते समय इनकी माताजी प्राय: इनसे भेंट करने के लिए आया करती थीं और भेंट कर अपने गाँव लौट जाती थीं। काशी में रहकर इन्होंने नाना शास्त्रों का, वेद-वेदान्त का, व्याकरण-साहित्य का विधिवत् अध्ययन किया। १९२६ ईस्वी में स्वामीजी ने विद्या पूरी की और काशी छोड़कर अध्यात्म की खोज के लिए तीर्थयात्रा पर निकल पड़े। उत्तराखण्ड की ओर ये निकल गए। हरिद्वार में कुछ दिन टिके। यहाँ सन्त-समागम से अपने भीतर जागरूक आध्यात्मिक-तत्त्व-चिन्तन को और भी जागरित किया और तप:साधना में अपने दिन बिताए। २५ वर्ष की अवस्था तक इन्होंने शास्त्रों का अच्छा अध्ययन कर लिया था। सन् १९२६ की ३१ जनवरी को इन्होंने काशी छोड़ी और कांगड़ा, बम्बई, बंगाल, नेपाल, ज्वालामुखी, चामुंडा आदि की यात्रा करते रहे। सन् १९२७ ई. में जब ये पंजाब के नवरोटा नामक स्थान में थे, तब इनकी भेंट अनन्तानन्दनाथ नामक गुजराती संन्यासी से हुई। इन्हीं से स्वामीजी ने शान्तिमार्ग की तान्त्रिक दीक्षा प्राप्त की और गुरुदेव ने इनका नाम **अमृतानन्द नाथ** प्रदान किया और इस कारण ब्रह्मलीन होने के उपरान्त स्वामीजी की समाधि पर जिन शंकरजी की स्थापना की गई है, उन्हें 'अमृतेश्वर' नाम से अभिहित किया गया है। गुरुजी के आदेश से ही दीक्षा लेने के उपरान्त इन्होंने नर्मदा नदी के तट पर स्थित 'सिद्धनाथ' नामक स्थान पर एक वर्ष तक तपस्या की थी। फिर अमृतसर, तरनतारन आदि स्थानों में भ्रमण करते हुए कुछ समय धौलपुर में प्रवास किया। अनन्तर दतिया में १९२९ ई. की ९ जुलाई को आकर जम गए और अर्धशताब्दी तक शक्तिसाधना में लीन रहे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पीताम्बरापीठ की स्थापना

स्वामीजी के आगमन के पूर्व दतिया मध्य प्रदेश का एक सामान्य कोटि का साधारण नगर था, परन्तु उन्होंने अपनी घोर तपस्या तथा तान्त्रिक साधना के विपुल प्रचार-प्रसार के द्वारा इसे जाग्रत् शक्तिपीठ के असाधारण रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। स्वामीजी ने सर्वप्रथम भगवती पीताम्बरा की स्थापना १९९२ वि.सं. (१९३५ ई.) में की और तभी यह आश्रम पीताम्बरापीठ के नाम से समग्र भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो गया। **बगलामुखीरहस्यम्** नामक ग्रन्थ का प्रकाशन पूजा की समग्रता तथा शास्त्रीयता की दृष्टि से किया गया। अनन्तर श्रीयन्त्र की स्थापना भी की गई। शाक्त धर्म के आचार्य एवं भगवती पीताम्बरा के साधकों में अग्रगण्य होने वाले भगवान् परशुराम के मन्दिर की स्थापना सं. २०२० (१९३३ ई.) में स्वामीजी ने बड़ी आस्था तथा निष्ठा से की। परशुराम का **कल्पसूत्र** नामक ग्रन्थ तान्त्रिक आचार्यों की दृष्टि में आराधनीय एवं पूजनीय माना जाता है। परशुराम की अर्चना महाराष्ट्र तथा केरल में मुख्यतया है। फलतः उत्तर भारत में इस मन्दिर की स्थापना का विशेष महत्त्व है। काशी में भी इनकी माता 'रेणुका' का मन्दिर तो है, परन्तु यहाँ भी परशुरामजी का मन्दिर स्थापित नहीं है। महाकालभैरव, धूमावती एवं तारा की स्थापना विभिन्न समयों में की गई। षडाम्नाय शिव की स्थापना भी देश में कहीं दिखाई नहीं पड़ती। पूज्यपाद स्वामीजी ने वनखण्डेश्वर के प्राचीन मन्दिर में इस शिव की स्थापना १९८० ई. में कर इस अभाव की पूर्ति की। इस मन्दिर में सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर, ईशान तथा नीलकण्ठ शिव (षडाम्नाय शिव) नामक तान्त्रिक पूजा के आधारभूत भगवान् शंकर की छः मूर्तियों की स्थापना की गई है। स्वामीजी की विशेष अनुकम्पा से इतने मन्दिरों का निर्माण, मूर्तियों की स्थापना तथा उनका विधिवत् अर्चन-पूजन यहाँ के निवासियों के लिए सुलभ एवं सुगम हो गया है।

यज्ञों का अनुष्ठान

पूज्यपाद स्वामीजी वैदिक तथा तान्त्रिक यज्ञों के अनुष्ठान के बड़े ही प्रेमी एवं प्रचारक थे। सामान्य यज्ञों का अनुष्ठान तो होता ही रहता था। परन्तु स्वामीजी ने ऐसे दो यज्ञों का अनुष्ठान करवाया तथा बड़े ही विधि-विधान से सम्पन्न किया जिनका फल सद्यः देखने में आया। पहला यज्ञ था **राष्ट्ररक्षा-अनुष्ठान-यज्ञ**। अवसर था चीन का भारतवर्ष पर आक्रमण (१९६३ ई.)। स्वामीजी राष्ट्रगुरु हैं—भारत राष्ट्र की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के विशिष्ट प्रशंसक। भक्तों ने इस देशव्यापी महान् संकट से उद्धार के लिए जब उनसे आग्रह किया, तब उन्होंने धूमावती के प्रसादनार्थ विशिष्ट यज्ञ करवाया जिसके समाप्त होने से पूर्व ही चीन भारतवर्ष से हट गया और रूस से मैत्री भंग हो जाने से वह अपने ही आप घोर संकट में जा गिरा। दूसरा विशिष्ट विधान था—**ब्रह्मयज्ञ का आयोजन**। इसमें समग्र वेदों का सस्वर पारायण अंगों-उपांगों के साथ सम्पन्न हुआ था। प्रत्येक वेद के पारायण के लिए नौ दिनों का समय नियत किया गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था। इस प्रकार यह ब्रह्मयज्ञ छत्तीस दिनों तक निर्विघ्न चलता रहा। प्रथम यज्ञानुष्ठान में तान्त्रिक विद्वानों का जमघट था, तो इस द्वितीय यज्ञानुष्ठान में वेदाध्यायी नाना शाखाओं से परिचित होने वाले वैदिकों का समाज जुटा था। स्वामीजी का यज्ञ की शुद्धि तथा पूर्णता पर विशेष आग्रह था। फलतः दूरस्थ विद्याकेन्द्रों से विद्वान् एकत्र किए गए थे। इस ब्रह्मयज्ञ के आचार्य काशी के वैदिक पं. रामनाथ सारस्वतजी थे। पण्डितों का कहना है कि ऐसा वेदपारायण हजारों वर्षों के बाद सम्पन्न हुआ था। जो कुछ हो, स्वामीजी ने इन यज्ञों का अनुष्ठान विशुद्ध वैदिक पद्धति से इतनी निष्ठा, श्रद्धा तथा विश्वास से कराया कि इसे देख दर्शकों के नेत्रों के सामने प्राचीन भारत के वैदिक ऋषिकुलों का दृश्य सजीव हो उठा था। यज्ञों के अनुष्ठान से स्वामीजी की अलौकिक शक्ति को देखकर विद्वानों को भी चमत्कृत होना पड़ा। नाना प्रकार के संकटों से पीड़ित जनता का उद्धार स्वामीजी के लिए अनायास साध्य था। मन्त्रशक्ति के लोकातीत चमत्कार का सद्यःदर्शन स्वामीजी की कृपा से यज्ञों के फलरूपेण सर्वदा होता रहता था। फलरूप से असाध्य रोगियों को रोगमुक्त होते देखा है। फाँसी के झूले पर झूलने वाले को मुक्त होते देखा है। स्वामीजी ने घोर नास्तिकों को आस्तिक बनाया। देवी-देवताओं में अविश्वासियों को दृढ़ विश्वासी बनाया। उनके विचित्र चमत्कारों ने तान्त्रिक मन्त्रों की सत्यता को पदे-पदे दर्शाया। यह तो हुआ स्वामीजी के तान्त्रिक जीवन का लोकपक्ष। अब उनके तान्त्रिक जीवन का वेदपक्ष देखिए।

साहित्य-सर्जना

पूज्यपाद स्वामीजी की साहित्य-सर्जना नितान्त स्तुत्य तथा सर्वथा अभिनन्दनीय है। उनके ग्रन्थों का प्रकाशन 'पीताम्बरापीठ-संस्कृत-परिषद्', दतिया के द्वारा सम्पन्न हुआ है। ये ग्रन्थ तीन श्रेणी में विभक्त किए जा सकते हैं— (१) दतिया में स्थापित देवी-देवताओं की अर्चना से सम्बद्ध; (२) प्राचीन तान्त्रिक ग्रन्थों के ऊपर स्वामीजी के द्वारा निर्मित टीका से संवलित; (३) नवीन शोध तथा अनुसंधान से समन्वित। प्रधान ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है—

(१) श्रीबगलामुखीरहस्यम्—पीताम्बरा से सम्बद्ध अर्चाप्रधान विषयों का यहाँ प्रामाणिक एवं विस्तृत विवरण दिया गया है। ग्रन्थ दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में क्रमशः न्यास तथा पीताम्बरा के क्रम का विधान, दीक्षाविधि एवं बगलामुखी के आचार, बृहत् पूजा-पद्धति, शान्ति-स्तोत्र तथा सौभाग्यार्चन कवच है। पंचम परिच्छेद वैदिक स्रोत का ऊहापोह करता है। इसमें यजुर्वेद एवं अथर्ववेद के मन्त्रों में बगलामुखी के स्वरूप का विवेचन दिखाया गया है। स्वामीजी का अनुसंधान है कि 'बलगा' कृत्याविशेष है जिसके वर्णव्यत्यय से 'बगला' शब्द निष्पन्न हुआ है। बगलामुखी स्तम्भन की शक्ति है। देवी के स्वरूप का आध्यात्मिक रहस्य यहाँ उपन्यस्त है। द्वितीय खण्ड परिशिष्टरूप है जिसमें बगलामुखी के कवच, शतनाम, सहस्रनाम, अर्चापद्धति आदि आवश्यक विषयों की जानकारी दी गई है, जिसमें इधर-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उधर विकीर्ण वस्तुएँ साधकों के उपयोगार्थ एकत्र की गई हैं। एक सर्वांगपूर्ण अपूर्व विवेचन स्वामीजी के प्रौढ़ वैदुष्य तथा गंभीर अनुसंधान का समग्रतया प्रकाशक है।

(२) शरभतन्त्रम्—शरभतन्त्र अथवा पक्षिराज-तन्त्र का संकलन 'आकाश-भैरव कल्प' के आधार पर स्वामीजी की कृपा का परिणाम है। भगवान् शंकर के दिव्य तेज से आविर्भूत श्री वीरभद्र ही भगवान् शरभ हैं। रुद्र का यह घोरतम रौद्र रूप है। विरोधियों का दमन करने में इनसे बढ़कर और कोई देवता तन्त्रशास्त्र में नहीं है। प्रारम्भ में शरभमन्त्र की उद्धारविधि, उसका स्वरूपचित्र, शरभयन्त्र की पूजाविधि बताई गई है। गारुड़मन्त्र का रहस्य बतलाया गया है और अन्त में शरभोपासना से सम्बद्ध विषय जैसे शरभसहस्रनामस्तोत्र, शरभस्तोत्र (लिङ्गपुराणोक्त) तथा शरभोपनिषद् यहाँ संकलित हैं। अपूर्व है यह तन्त्र का प्रकाशन।

(३) रेणुकातन्त्रम्—स्वामीजी के द्वारा प्रणीत तथा संकलित यह तन्त्र परशुरामजी की माता की पूजा-अर्चा से सम्बन्ध रखता है। पिता जमदग्नि की आज्ञा से परशुराम ने अपनी माता रेणुका का मस्तक छिन्न कर दिया था। मस्तक के छिन्न होने पर प्रकट हुआ रेणुका का तेज ही **छिन्नमस्ता** के नाम से दस महाविद्याओं में प्रसिद्ध हुआ। भगवती रेणुका की उपासना से सम्बद्ध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामग्री—कवच, सहस्रनाम तथा नाना स्थलों से एकत्र स्तोत्र—यहाँ बड़े परिश्रम से संकलित की गई है। रेणुका की उपासना से वीर, मेधावी तथा प्रियदर्शन पुत्र की प्राप्ति तन्त्रों में बतलाई गई है।

(४) सप्तविंशतिरहस्यम्—आगमशास्त्र से सम्बद्ध २७ विषयों के तथ्यों का यहाँ अपूर्व वर्णन ग्रन्थ की उपादेयता का सद्यः प्रमापक है। प्रस्तुत ग्रन्थ में कामराज क्रम से **श्रीविद्या** के समस्त उपास्य मन्त्रों का न्यास, ध्यान, विनियोग आदि का पाण्डित्यपूर्ण विवेचन है। ऐसे गोपनीय मन्त्रों के २७ समूह हैं। तत्सम्बद्ध होने से ग्रन्थ का अन्वर्थक अभिधान है।

(५) छिन्नमस्ता-नित्यार्चन—स्वामीजी द्वारा रचित एक सौ पृष्ठों का यह लघु ग्रन्थ (प्रकाशक—कल्याणमन्दिर, अलोपीबाग, प्रयाग, सं. २०३५ छिन्नमस्ता देवी की दैनिक अर्चन-विधि का प्रकाशक है। स्वामीजी ने छिन्नमस्ता के स्वरूप तथा अर्चना-विधान का आध्यात्मिक रहस्य भी बड़े वैशद्य से समझाया है।

(६) तान्त्रिक पञ्चाङ्ग—विलक्षण ग्रन्थ है जिसमें स्वामीजी ने तन्त्र तथा ज्योतिष दोनों शास्त्रों के सिद्धान्त का सामंजस्य दिखलाया है। इस अपूर्व ग्रन्थ की रचना स्वामीजी के विलक्षण तान्त्रिक वैदुष्य का परिणत फल है।

(७) ईश्वरगीता—ईश्वरगीता कूर्मपुराण के उत्तरार्ध में प्रथम एकादश अध्यायों में वर्णित है। स्वामीजी ने इसके ऊपर 'भावार्थदीपिका' नामक हिन्दी व्याख्या लिखी है। वे इस ईश्वरगीता को भगवद्गीता से प्राचीनतर मानते हैं। भगवद्गीता में श्रोता तथा उपदेश-स्थल के अनुरोध से कर्मयोग का उपदेश है, तो ईश्वरगीता में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऋषिगण जैसे श्रोता तथा तपोवन जैसे उपदेश-स्थल के स्वारस्य से 'ब्रह्मविद्या' का उपदेश है। व्याख्या में अनेक गम्भीर आध्यात्मिक रहस्यों का विशद प्रतिपादन है।

(८) पञ्चोपनिषद् भाष्य—आरम्भ के पाँचों उपनिषदों पर स्वामीजी का 'प्रकाश' नामक व्याख्यान बड़ा ही गंभीर तथा गूढ़ वैदिक अध्यात्म का प्रतिपादक है। वेदों के मर्म का यहाँ उसी प्रकार प्रतिपादन है जिस प्रकार उनका सामंजस्य तान्त्रिक तत्त्वों के साथ स्पष्टतः सिद्ध हो जाता है।

(९) लेखसंग्रह—स्वामीजी के हिन्दी में लिखे गए पाण्डित्यपूर्ण ३० निबन्धों का यह संग्रह बड़ा ही गंभीर, शास्त्र-वेद तथा तन्त्र के तथ्यों का विशद विवेचन प्रस्तुत करता है। लेख बड़ी ही सीधी-सादी भाषा में गंभीर तत्त्वों के प्रतिपादक हैं।

(१०) महाविद्याचतुष्टयम्—(तारा-धूमावती-भुवनेश्वरी-मातङ्गीसहितम्) इस ग्रन्थ में इन चारों महाविद्याओं के स्वरूप का यथावत् वर्णन है और प्रत्येक महाविद्या से सम्बन्धित पटल, स्तोत्र, कवच, कल्प, शतनाम, सहस्रनामस्तोत्र, तारोपनिषद्, मन्त्र-प्रयोग, उपासना-विधि, आवरण-पूजा एवं बलिदान आदि विषयों का एकत्र विशद वर्णन ग्रन्थ की उपादेयता का स्पष्ट प्रमाण है।

(११) तारा—कर्पूरराज-स्तोत्र—कालीकर्पूरस्तोत्र के समान ही तारा के साधकगण इस स्तोत्र का विशेष आदर तथा सम्मान करते हैं। यह स्तोत्र भी मानवों की भौतिक कामनाओं की पूर्ति के समान आध्यात्मिक फलों को भी प्रदान करता है। स्वामीजी ने इस स्तोत्र के महनीय व्याख्यान में सांकेतिक शब्द एवं अक्षरों के अर्थ, ॐ शब्द की विशद व्याख्या, प्रमाण के मौलिक उद्धरण, पंचमकार का रहस्योद्घाटन, अधिभूत का आध्यात्मिक अर्थ आदि तथ्यों का गंभीर गवेषणात्मक विवेचन किया है। स्वामीजी की यह 'प्रकाशिका' नाम्नी व्याख्या यथार्थतः ताराविद्या के तथ्यों का विवेचनापरक भाष्य ही है।

(१२) सिद्धान्तरहस्य तथा (१३) वैदिक उपदेश सरल हिन्दी भाषा में कठिन विषयों का विवरण देते हैं।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त 'पीताम्बरापीठ-संस्कृत परिषद्' (दतिया) ने लगभग पचीस छोटी-मोटी पुस्तकें प्रकाशित की हैं जिनमें से कुछ तो प्राचीन तान्त्रिक आचार्यों की बहुचर्चित रचनाएँ हैं और अन्य स्वामीजी के ही पण्डित शिष्यों की नवीन कृतियाँ हैं। इन दोनों में स्वामीजी की कर्मठता द्योतित होती है। प्राचीन ग्रन्थों का स्वामीजी ने भाषानुवाद तथा व्याख्याएँ की हैं और नई रचनाओं में उन्हीं का उपदेश तथा प्रेरणाप्रद सुझाव जागरूक है। फलतः पूज्यपाद स्वामीजी महाराज की यह साहित्य-सर्जना वेद तथा तन्त्र के लिए नई दृष्टि तथा गंभीर अन्वेषणा-शैली प्रदान करने वाली है।

श्री स्वामीजी का वैदुष्य

स्वामीजी का व्यक्तित्व समन्वयवादी था। दण्डी स्वामी होते हुए भी वे आगम के समर्थक थे। शक्ति की साधना उनके आध्यात्मिक जीवन की केन्द्रबिन्दु थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तन्त्रयोग का शास्त्रीय सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष—दोनों के बीच उनका समन्वय दृष्टिगोचर होता था। कुण्डलिनी उनकी पूर्णतया जाग्रत् थी। वे शाङ्कर वेदान्त के पूर्ण समर्थक थे तथा आचार्य शंकर द्वारा प्रतिष्ठित समयाचार के वे पक्षधर साधक थे। शंकर के समान ही वे श्रीविद्या के गंभीर उपासक थे। उनकी निष्ठा शाक्ताद्वैत के ऊपर समग्रता प्रतिफलित होती थी। उन्होंने वेद तथा तन्त्र, निगम तथा आगम के गंभीर सिद्धान्तों का पूर्णतया परिशीलन किया था। प्राचीन ग्रन्थों की व्याख्या लिखकर तथा मौलिक ग्रन्थों का निर्माण कर उन्होंने जो साहित्य प्रस्तुत किया था, उसके समीक्षण से सद्यः प्रतीत होता है कि भारतीय-विचार-विभिन्नता के भीतर एकरसात्मक सामंजस्य की उनकी अनुभूति प्रबल तथा दृढ़ थी। दर्शन की विभिन्न शाखाओं का उन्होंने आलोड़न किया था और उनके विषय में उनका परिज्ञान साधार तथा मूलानुगामी था। तन्त्रशास्त्र के, विशेषतः शाक्त तन्त्रों के तत्त्वों का जो रहस्य उन्होंने अपने संस्कृत-ग्रन्थों में एवं मौखिक भाषणों में अभिव्यक्त किए हैं, उनमें गंभीरता के साथ-साथ नवीनता, प्राचीन अनुशीलन के साथ नई सूझ-बूझ का दर्शन पदे-पदे आलोचक को होता है।

स्वामीजी निगम तथा आगम की समानरूपता पर विशेष आग्रह रखते थे। वे वैदिक मन्त्रों के भीतर आगमिक तत्त्वों का संकेत पाते थे तथा श्रीविद्या का निर्देश सौन्दर्यलहरी के विद्वान् व्याख्याकार लक्ष्मीधर के समान वे भी स्पष्टतः वैदिक मन्त्रों में पाते थे। उनकी दृष्टि में ऋग्वेद का यह प्रख्यात मन्त्र-तन्त्र सिद्धान्तों की ओर संकेत करता हुआ सद्यः प्रतीत होता है—

चत्वारि श्रृंगास्त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यान् आविवेश॥

—ऋग्वेद, ४।५८।३

भावार्थ—एक विचित्र वृषभ सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला होकर शब्द कर रहा है। उसके चार सींग, तीन पाद, दो सिर, सात हाथ हैं और वह तीन स्थानों से बँधा है। ऐसा महान् देव समग्र मनुष्यों में प्रवेश कर गया है। स्वामीजी के अनुसार यह मन्त्र विशेष रूप से तन्त्रशास्त्र के तथ्यों का संकेतक है। उनकी दृष्टि में इसका संकेत इन तत्त्वों से है। चार सींग—वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक एवं शाबर मन्त्र हैं। तीन पाद—कादि, हादि, सादि—उपासना की ये तीन पद्धतियाँ तीन पाद हैं। 'सोऽहम्' एवं 'हंसः' अथवा प्रकाश एवं विमर्श ये दो सिर हैं। सूर्य, सोम, अग्नि—इन त्रिविध मण्डलों से यह बँधा है (त्रिधा बद्धः)।

'रोरवीति'—इस क्रियापद के द्वारा वृषभ को सम्पूर्ण कामनाओं की वर्षा करने वाला 'शब्दब्रह्म' तत्त्व कहा गया है। 'महो देवः' पद के द्वारा मन्त्र एवं देवता का तादात्म्य बतलाया गया है। ऐसा तत्त्व सभी जीवों में परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी रूप से प्रविष्ट है। इसके पूर्ण विकास के लिए तत्त्वज्ञान-क्रम से गुरुकृपा के द्वारा साधक पूर्णता को प्राप्त कर सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस वैदिक मन्त्र में तन्त्रोक्त तत्त्वों के संकेत की असंगति को दूर करते हुए स्वामीजी का कहना है—भारतीय तत्त्वज्ञान में कोई भी वस्तु नवीन नहीं है। अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती। कारण से कार्य की पृथक् प्रतीति केवल संस्थान-भेद-मात्र है। मीमांसा के सूत्र **आख्या प्रवचनात्** के अनुसार वेद या तन्त्र में नूतन प्रतीति व्याख्यानकर्तृक है। बृहत् धर्मपुराण के अनुसार सदाशिव ने देवी की आज्ञा से तन्त्र (आगम) का प्राकट्य पहले किया। तदनन्तर विष्णु के वेद को प्रकट किया। देवी का कथन है कि आगम और निगम, तन्त्र तथा वेद मेरी दो भुजाएँ हैं जिनके द्वारा मैंने सम्पूर्ण संसार को अपने वश में कर रखा है।

स्वामीजी का कथन है कि **त्रिलिंगता** शक्ति तथा शिव दोनों में विद्यमान रहती है। शक्ति का निर्देश सामान्यत: स्त्रीलिंग शब्दों में ही होता है, परन्तु यह कोई नियम नहीं है। पुल्लिग अथवा नपुंसकलिंग शब्द इसके लिए वर्जित नहीं हैं। इसकी पुष्टि में वे तान्त्रिक कालिदास का यह वचन उद्धृत करते हैं—

न त्वमम्ब पुरुषो न चाङ्गना चित्स्वरूपिणी न षण्डतापि ते।
नापि भर्तर्यपि ते त्रिलिङ्गता त्वां विना न तदपि स्फुरेदयम्॥

भावार्थ—हे जगज्जननी माता, तुममें तीनों लिंगों के सूचक शब्दों का प्रयोग न्याय्य है। तुम न पुरुषरूप हो, न स्त्रीरूप हो, न नपुंसकरूप हो। शिव में भी तीनों लिंगों की सत्ता (त्रिलिंगता) विद्यमान रहती है। फलत: देवी का बोधक, उपनिषदों में प्रतिपादित, नपुंसकलिंगी शब्द 'ब्रह्म' के साथ तुम्हारा सामरस्य सर्वदा वर्तमान रहता है।

इस प्रसंग में स्वामीजी 'ललितासहस्रनाम' के भाष्य में शाक्तशिरोमणि **भास्कर राय** की यह पंक्ति उद्धृत करते हैं—

"पदानुसारीण्येव लिङ्गानि न तु वास्तविकम्। ब्रह्मण्येकमपि लिङ्गं न 'न स्त्री न षण्डो न पुमान्' इति विष्णुभागवतात्। अत एव देवताया ध्यानेऽपि ऐच्छिक एव विकल्प: स्मर्यते। पुंरूपं वा स्मरेत् स्त्रीरूपं वा विचिन्तयेत्। अथवा निष्कलं ध्यायेत् सच्चिदानन्दलक्षणमिति॥"

लिंगता पदों में रहती है, वस्तु में नहीं। फलत: आराध्य देवी के ध्यान के लिए तीनों लिंग वाले शब्द प्रयुक्त होते हैं। उसे पुरुष भी ध्यान कर सकते हैं अथवा सच्चिदानन्दरूपी ब्रह्म भी।

वेद के मन्त्रों में तन्त्रों के तत्त्वों का पूर्णतया संकेत स्वामीजी ने बड़े परिश्रम तथा अध्यवसाय से खोज निकाला है। इस विषय में उनके स्वतन्त्र लेख हैं। अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के १३वें सूक्त के चारों मन्त्रों की उनकी व्याख्या से कुण्डलिनीयोग का तथ्य परिस्फुरित होता है। इसी प्रकार आकूतिसूक्त से इच्छाशक्ति की गरिमा का परिस्फुरण वे बतलाते हैं। इस विषय के विस्तार के लिए 'लेखसंग्रह'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नामक ग्रन्थ का प्रथम लेख 'वेदों में शक्तितत्त्व' तथा चतुर्थ लेख 'वैदिक शाक्त यज्ञ' ध्यान से मनन चाहता है।

स्वामीजी **समयाचार** के नैष्ठिक आराधक हैं। फलतः आचार्य शंकर के द्वारा वर्णित एवं सौन्दर्यलहरी में प्रतिष्ठापित तान्त्रिक आचार-विचारों के पूरे समर्थक हैं। कौल आचार बहिर्याग का उपासक है तो समयाचार अन्तर्योग का। स्वामीजी की दृष्टि में इन दोनों में मूलतः पार्थक्य नहीं है। उनका कथन है—वस्तुतः वाह्य एवं अन्तःयोगों का ध्येय मूलाधारगत कुण्डलिनी एवं सहस्त्रारगत शिव का सामरस्य स्थापित करना ही है। भावनोपनिषद् के अनुसार ज्ञान ही अर्घ्य है, ज्ञेय हविष् है एवं ज्ञाता होता है। अतएव ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान नामक त्रिपुटि की अभेद भावना करना ही श्रीचक्र का पूजन है—

ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं हविः ज्ञाता होता।
ज्ञातृज्ञानज्ञेयानामभेदभावनं हि श्रीचक्रपूजनम्।

पञ्चमकार के विषय में उनकी मान्यता है कि समयपूजा हृदयाकाश एवं सहस्त्रार में ही होती है। ऐहिक तथा पारलौकिक फलसाधना के लिए हृदयकमल में ही होम, तर्पण आदि कर्तव्य हैं। इस मत में मानसिक 'मपञ्चक' का उपयोग होता है। सहस्त्रार से निष्ठ्यूत सुधा का पान मद्य है; काम, क्रोध आदि पशुओं को ज्ञानखड्ग से मारकर मन को परशक्ति में लय करना मांसभक्षण है। इन्द्रियों का संयम ही मीनसेवन है। आशा, तृष्णा, जुगुप्सा, लज्जा, घृणा, प्रकोप को ब्रह्मअग्नि में भस्म कर देना ही **मुद्रा** है। सूक्ष्मरूपा सुषुम्ना नाड़ी का सेवन ही **मैथुन** है। सूर्य एवं चन्द्र नाड़ियों के ऐक्य का ही नाम मैथुन है, योनि का संभोग नहीं। इस विषय के विस्तार के लिए द्रष्टव्य स्वामीजी की 'ताराकर्पूरराजस्तोत्र' की व्याख्या (श्लोक १४)।

पूज्यपाद स्वामीजी शास्त्रीय संगीत तथा साहित्य के गुणी रसज्ञ ही नहीं थे, अपितु पूर्ण मर्मज्ञ थे। वे कहा करते थे कि काशी-निवासकाल में मैं काशी तथा उसके आस-पास आने वाले कलावन्तों के संगीत को बड़े प्रेम तथा निष्ठा से सुना करता था। इसलिए शास्त्रीय संगीत का गंभीर ज्ञान प्राप्त हो सका। दतिया में आने पर वह संगीतानुराग और भी वृद्धिगत हो गया। इसीलिए तो अखिलभारतीय कीर्ति वाले गायक उन्हें अपना गायन तथा वादन सुनाकर उनकी प्रशंसा अर्जित करने से अपने आपको कृतकृत्य मानते थे। संगीत के विषय में स्वामीजी की मान्यता थी—

"भारतीय संगीत एक जिन्दा जादू है तथा परमात्मा की प्राप्ति का एक प्रमुख साधन है। संगीत यौगिक साधन है जिसका सम्बन्ध नादसाधना से है। संगीतशास्त्र अपार सागर की तरह है। माँ सरस्वती भी इसमें पूर्ण पारंगत नहीं हैं।" इस सम्बन्ध में वे निम्नलिखित श्लोक सुनाया करते थे—

नादाम्बुधेः परं पारं नोपेयाय सरस्वती।
अतो निमज्जन भिया तुम्बीं वहति सर्वदा॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपार संगीत-सागर में कहीं डूब न जाएँ, इसलिए वे अपने हाथ में सर्वदा तुम्बी धारण करती हैं।

स्वामीजी का लगाव यों तो ध्रुपद-धमार से ही विशेष था, परन्तु ख्याल, ठुमरी और गज़ल भी वे बड़े रस से सुनते थे। वे कहा करते थे कि ध्रुपद-धमार का प्रचलन तो अब समाप्त ही समझो। यह तो रियाज़ की चीज है। जिसने जितना किया, उतना पाया।

इसी सन्दर्भ में उन्होंने **नारदीय शिक्षा** का सभाष्य प्रामाणिक प्रकाशन अपनी संस्था के द्वारा कराया था। सामवेदीय 'नारदीय शिक्षा' के उपदेष्टा देवर्षि नारद संगीतशास्त्र की प्रतीकभूत वीणा को धारण करते हैं तो सप्तस्वरों के वैशिष्ट्य, विभिन्न मूर्छनाओं और संगीतशास्त्र के सर्वाङ्गीण विचारों की उद्‌घाटिका है। नादब्रह्मस्वरूप संगीतविद्या के आदि अधिष्ठाता श्री महाकाल भैरवजी की स्थापना इसी संगीताराधना के लिए की गई। प्रत्येक रविवार को इस मन्दिर में संगीत का गायन नियमतः किया जाता है।

स्वामीजी भारत की नाना प्रान्तीय भाषाओं के ही ज्ञाता न थे, लिखित साहित्य के भी वे रसज्ञ थे तथा बड़े मनोयोग से उन्हें सुनते-सुनाते थे। वे सूफी सन्तों की आध्यात्मिक रहस्यवादी शायरी बहुत पसन्द करते थे और उन्होंने अनेक सुन्दर-सुन्दर गज़लें उर्दू भाषा की अपनी डायरी में अपने अध्ययन काल में लिख रखी थीं जिन्हें वे संगीतज्ञों के द्वारा गवाकर सुना करते थे। स्वामीजी स्वभावतः मौन रहते थे। इसका कारण यही था कि वे गंभीर थे तथा अपने अन्तःकरण की गुहा में पराशक्ति का सतत चिन्तन किया करते थे। उन्हीं के एक सहृदय शिष्य ने उन्हें उर्दू का यह शेर सुनाकर उनके गांभीर्य का आभास देकर आशीर्वाद अर्जित किया था—

कह रहा है सूर दरिया से समुन्दर का सुकूत।
जिसमें जितना ज़र्फ है वह उतना ही खामोश है।

आशय है कि जिस व्यक्ति में जितनी गंभीरता (ज़र्फ) रहती है वह उतना ही खामोश रहता है—शान्तचित्त, मौन रहता है। स्वामीजी सच्चे प्रेमी की पहचान के लिए यह शेर अकसर कहा करते थे—

जिन्हें है इश्क ए शादिक वो कब फर्याद करते हैं।
लबों पर मुहरे खामोशी दिलों में याद करते हैं।

सच्चा प्रेमी हृदय में याद करता है। उसके होठों पर खामोशी—चुप्पी की मुहर लगी रहती है। वह अपने प्रेमी की कभी शिकायत नहीं करता। परन्तु दिल में वही विराजता रहता है।

इस प्रकार स्वामीजी ने अपने उपदेशों से तथा रचनाओं से जगत् का महान् उपकार करते हुए अपना निःस्वार्थ साधना का जीवन बिताया। सन् १९७९ ई., मई के अन्त में जब वे औषध के लिए बम्बई जाने लगे, तब उन्हें अपने लक्ष्य की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समाप्ति का पूर्ण आभास हो गया था। तब उन्होंने यह उपदेशप्रद विचार इस शेर के द्वारा सुनाया था—

बढ़ा है आगे का रोज रोशन हटी है पीछे की रात काली।
बिछुड़ गया आसमाँ का मेला हुई सितारों से बज़्म खाली॥

प्रभात हो रहा है। पीछे की काली रात छट गई है। आगे प्रातःकाल का प्रकाश आकाश में छिटकने लगा है। आसमान में जो तारों का मेला लगा है वह हट चला है। सभा ताराओं से अब खाली हो गई है।

इस शेर के सुनाने के कुछ ही दिनों बाद २ जून १९७९ ई. को बम्बई की महनीय नगरी में दतिया के पूज्यपाद स्वामीजी ने असंप्रज्ञात समाधि ले ली। ३ जून को वे दतिया लौटकर आए और यहीं देहत्याग किया, ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा प्राण छोड़ा। ओं शान्तिः!

स्वामीजी की परमाराध्या भगवती से लेखक की विनती है—

मायाहस्तेऽर्पयित्त्वा भरणकृतिकृते मोहमूलोद्भवं मां
मातः कृष्णाभिधाने चिरसमयमुदासीनभावं गतासि।
कारुण्यैकाधिवासे सकृदपि वदनं नेक्षसे त्वं मदीयं
तत् सर्वज्ञे न कर्तुं प्रभवति भवती किं नु मूलस्य शान्तिम्॥

हे माँ कृष्णे, मोहरूपी मूल नक्षत्र में पैदा हुए मुझको पालन-पोषण के लिए माया के हाथ में सौंप कर उदासीन् क्यों हो गई हो? तुम तो दयामयी हो। एक बार भी मेरा मुँह नहीं देखती। क्या तुम्हारे लिए यह समुचित है? तुम तो सर्वज्ञ हो। क्या मूल नक्षत्र की शान्ति तुम नहीं कर सकती। तुम कर सकती हो। मेरा जगत् से मोह भंग करो। यही प्रार्थना है।

स्वामीजी के व्यक्तित्व तथा कृतित्त्व के संक्षिप्त परिचय के लिए लेखक सं. २०४० में दतिया के पीताम्बरा पीठ द्वारा प्रकाशित 'श्रीस्वामी-स्मृति-ग्रन्थ' का चिरऋणी रहेगा।

दतियास्वामिपादानां चरितं परमाद्भुतम्।
चिन्तितं चर्चितं प्रेम्णा, प्रेयसे श्रेयसेऽस्तु नः॥

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

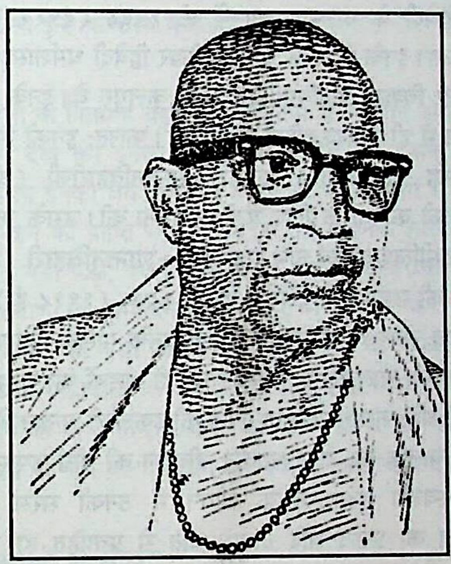

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

श्रीमद्भागवत, उपनिषद् तथा अनेक शास्त्रों के उद्भट विद्वान् एवं प्रवचनकर्त्ता स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी का शास्त्रीय वैदुष्य जितना उच्च कोटि का था, उतनी ही उदात्त कोटि की थी उनकी आध्यात्मिक साधना एवं दीर्घ तपस्या। आरम्भ से ही स्वामी अखण्डानन्दजी के चित्त को संसार का वासनामय वातावरण आकृष्ट नहीं कर सका और निसर्गत: इनकी प्रवृत्ति अध्यात्म-चिन्तन एवं विरक्ति की ओर उन्मुख रही। फलत: ये अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने जीवन की महनीय उपलब्धि—भगवद्वैकर्म—के लिए अनेक स्थानों में निवास करते हुए अपने को तैयार कर रहे थे। गोरखपुर के प्रख्यात आध्यात्मिक पत्र 'कल्याण' के द्वारा साहित्य-सेवा करते हुए भी इन्होंने अपने को परम उद्देश्य की प्रगति की ओर बढ़ाया। श्रीमद्भागवत की हिन्दी व्याख्या, भक्ति तथा ज्ञानप्रचुर लेखों, दार्शनिक गूढ़ विषयों के विवेचन-प्रवचन आदि के द्वारा शान्तनुविहारी द्विवेदीजी का एकमात्र लक्ष्य रहा—'भगवान् की पीयूषमयी कथा की ओर जनता-जनार्दन को उन्मुख करना तथा विद्वानों के हृदय में तात्त्विक भक्तिभाव की सद्य: स्फूर्ति कर देना।' जीवन के अन्तिम क्षणों तक स्वामीजी इसी कार्य में लगे हुए थे, सनातनधर्म का प्रचुर प्रचार कर जनता में धार्मिक जागृति का समुज्ज्वल उदय किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जन्म

स्वामीजी का जन्म वाराणसी मण्डल के महाइच परगने के महराई गाँव में पण्डित हर्षेन्दु द्विवेदी के आत्मज-रूप में सं. १९६८ (१९११ ई.) की श्रावण अमावस्या को हुआ। इनके पितामह श्री चन्द्रशेखर द्विवेदी धर्मशास्त्र एवं ज्योतिष के प्रसिद्ध विद्वान् और विशाल प्रतिष्ठित जनवर्ग के कुलगुरु थे। इनके पिता की अनेक सन्तानें अल्पकाल में ही कालकवलित हो गई थीं। फलत: इनकी पितामही ने मथुरा मण्डल के प्रसिद्ध देव-विग्रह (सतोहा) सन्तानविहारीजी (श्रीकृष्णजी) की वंशवर्धन सन्तान की कामना के लिए बड़ी आराधना की। उसके फलस्वरूप इनका जन्म हुआ और इसीलिए इनका नाम रखा गया—**शान्तनुविहारी** (सन्तानविहारी)। भाग्यवश पिताजी की छाया इनके सिर से वि.सं. १८७५ (१९१८ ई.) में ही उठ गई, जब ये केवल सात साल के बालक थे। अत: इनके पालन-पोषण का भार इनके पितामह तथा पूजनीया माताजी पर पड़ा। इनके दो भाइयों की मृत्यु इनके जन्म के पहले ही हो चुकी थी। फलत: ये माता-पिता की इकलौती सन्तान थे। ध्यान देने की बात है कि जिस बालक का ज़न्म भगवान् श्रीकृष्ण की दीर्घ उपासना और विमल मान्यता के फलस्वरूप हुआ, उसके जीवन में उनकी सरस अनुकम्पा तथा विशद भक्तिभावना का प्रसाद यदि अबाध गति से प्रवाहित हो चला, तो इसमें आश्चर्य ही क्या?

स्वामीजी की माताजी पतिपरायणा तथा सती-साध्वी स्त्री थीं। अपने पति के परलोकगमन के पश्चात् अपने ससुर की आज्ञा लेकर चारों धाम की यात्रा करने के लिए गई थीं। वे रामचरितमानस की बड़ी भक्त थीं। जब वे रामायण का पाठ करने लगतीं तब उनकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती थी। अपने छोटे बच्चे (अखण्डानन्दजी) के हृदय में इन्होंने ही प्रेम की भावना जाग्रत की। सच तो यह है कि अक्षराम्भ क़ा अभ्यास इन्होंने रामायण पढ़कर ही किया था।

शिक्षा और गुरु

स्वामी अखण्डानन्दजी की पाठशालीय शिक्षा कुछ विशेष नहीं हुई। इन्होंने केवल दूसरी कक्षा तक ही नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त की थी। गाँव की पाठशाला में कुछ दिनों तक पढ़ने के पश्चात् संस्कृत-साहित्य, व्याकरण तथा दर्शन शास्त्रों का विशेष अध्ययन करने के लिए ये काशी चले आए। यहाँ इन्होंने पं. रामभवन उपाध्याय से व्याकरण का अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त पं. रामपरीक्षण शास्त्री से दर्शनशास्त्र का पाठ पढ़ा। स्वामी मनीष्यानन्दजी के साथ सत्सङ्ग करने से इन्हें मानसिक पवित्रता की प्राप्ति हुई। इस प्रकार लगभग छह-सात वर्षों तक ये गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज बनारस में विभिन्न गुरुओं से व्याकरण, दर्शन, धर्मशास्त्र, ज्योतिष आदि शास्त्रों का अध्ययन करते रहे। ये नित्यप्रति भागवती कथा का श्रवण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी करते थे। कुल की गुरु-परम्परा होने से बचपन से ही कथा सुनाने का अभ्यास था और इनके पितामह ही इसके प्रेरणा-स्रोत थे। विद्यारम्भ के पूर्व ही उन्होंने अनेक स्तोत्र, मन्त्र, ग्रन्थ इन्हें कण्ठस्थ करा दिए थे।

संन्यास

स्वामीजी के पितामह बहुत बड़े ज्योतिषी थे। उन्होंने अपने पौत्र की कुण्डली में मारक योग देख कर इनका विवाह सं. १९८० वि. (सन् १९२३ ई.) में कर दिया। उस समय इनका वय केवल १२ वर्ष का था। संयोग से १९ वर्ष के वय के पहले इन्हें सन्तान की प्राप्ति भी हो गई। इस उम्र में इनके शरीर पर मारकेश ग्रह का तो कोई प्रभाव नहीं पड़ा, परन्तु इनके मन में संसार से विरक्ति अवश्य हो गई। जब स्वामीजी कल्याण के सम्पादनार्थ गोरखपुर में निवास कर रहे थे, तब स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती की बड़ी ख्याति थी। कुछ वर्षों के पश्चात् ये ही ब्रह्मानन्दजी बदरिकाश्रम के ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के सिंहासन पर आसीन हुए। १९४२ ई. में इन्हीं स्वामीजी से इन्होंने संन्यास की दीक्षा ग्रहण की और पं. शान्तनुविहारी द्विवेदी पूर्वाश्रम के नाम का परित्याग कर स्वामी 'अखण्डानन्द सरस्वती' नाम धारण कर लिया।

साधु-महात्माओं से सत्संग

स्वामीजी को अनेक प्रसिद्ध साधु-सन्तों से सत्सङ्ग करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। सुप्रसिद्ध महात्मा श्री उड़िया बाबाजी का सान्निध्य इन्हें प्राप्त था। सहेपुर के स्वामी योगानन्दजी, मोकलपुर के बाबा, मधईपुर के बाबा अविनाशचन्द्रजी, नेपाल के श्री परमहंसजी, भिक्षु शंकरानन्दजी, श्री गुलाबचन्दजी आनन्द आदि महात्माओं से सत्संग करने का इन्हें सुअवसर प्राप्त हुआ। अपनी तीर्थयात्राओं में उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के अनेक साधु-महात्माओं के इन्होंने दर्शन किए थे। साधु-सन्तों के अतिरिक्त इनका सम्पर्क भारत के चोटी के दार्शनिकों तथा विद्वानों से भी था। स्वामीजी ने अपना पहला चातुर्मास्य कर्णवास क्षेत्र में किया था। वहाँ से उड़िया बाबा के सान्निध्य में माण्डूक्यकारिका का प्रवचन करते थे। वहाँ देश के प्रसिद्ध दार्शनिकों का जमघट होता था। नरवर के ब्रह्मचारी पं. जीवनदत्तजी, पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पं. अखिलानन्दजी आदि विद्वान् सम्मिलित होते थे। इनके सान्निध्य में ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्री स्वरूपानन्दजी तथा स्वामी श्री शान्तानन्दजी वर्षों तक रहे। लोकप्रिय भारतप्रसिद्ध रामचरितमानस के लोकप्रिय वक्ता श्रीरामकिंकर उपाध्याय इनसे ही दीक्षित हुए थे।

तीर्थाटन

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती ने समस्त भारत का पर्यटन कर इस देश के विभिन्न भागों में स्थित तीर्थों तथा धामों के दर्शन किए। ये बड़े पर्यटकही प्रकृति के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधु थे। अतः इन्होंने पैदल तथा रेल के द्वारा इस पवित्र देश की अनेक बार परिक्रमा की। हिमालय से कन्याकुमारी तक और जगन्नाथपुरी से द्वारका तक यात्रा कर इन्होंने शंकराचार्य की प्राचीन परम्परा का अनुसरण किया। उत्तराखण्ड की यात्रा में गंगोत्तरी में श्री कृष्णाश्रमजी महाराज तथा जोशीमठ में अपने संन्यासगुरु शंकराचार्य के पद पर प्रतिष्ठित स्वामी ब्रह्मानन्दजी के भी दर्शन किए। इसी प्रकार दक्षिण भारत की यात्रा इन्होंने दो बार स्पेशल ट्रेन से की। दक्षिण की इस यात्रा में इन्होंने पाण्डिचेरी में अरविन्द आश्रम देखा और तिरुवण्णमलै में श्री रमण महर्षि का भी सत्संग प्राप्त किया। कांची में कामकोटिपीठाधिपति शंकराचार्य के दर्शन किए। इस प्रकार इस तीर्थयात्रा में इन्होंने अनेक महात्माओं, साधुओं तथा सन्तों के दर्शन कर उनसे सत्संग का विशेष लाभ उठाया।

ट्रस्टों की स्थापना

स्वामीजी ने जनता के कल्याण के लिए अनेक ट्रस्टों की स्थापना की, जिनके द्वारा धर्म का प्रचार अनवरत गति से किया जा रहा है। स्वामीजी ने जिन ट्रस्टों की स्वयं स्थापना की अथवा जिनसे इनका सम्बन्ध रहा उनकी सूची निम्नंकित है—

१. श्री उड़िया बाबा ट्रस्ट, अध्यक्ष
२. श्री कृष्ण-जन्मस्थान सेवा संस्थान, मथुरा, अध्यक्ष
३. स्वर्गाश्रम ट्रस्ट, ऋषीकेश, अध्यक्ष
४. आनन्द वृन्दावन चैरिटेबल ट्रस्ट, अध्यक्ष
५. जनता-जनार्दन सेवा ट्रस्ट, अध्यक्ष
६. प्रेमानन्द ट्रस्ट, औरैया, इटावा, अध्यक्ष
७. सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, बम्बई, संस्थापक अध्यक्ष
८. लोकहित-प्रन्यास, अध्यक्ष
९. स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती सेवा संस्थान, अध्यक्ष
१०. ब्रह्ममूर्ति श्री उड़िया बाबा लोककल्याण ट्रस्ट, अध्यक्ष

इन ट्रस्टों में स्वामीजी के क्रिया-कलापों का कुछ परिचय प्राप्त होता है।

ग्रन्थ-रचना

स्वामी अखण्डानन्दजी ने अनेक ट्रस्टों की स्थापना कर देश में धर्म, दर्शन तथा साहित्य के प्रचार में प्रमुख योगदान दिया है। सत्साहित्य के निर्माण तथा प्रचार के लिए इन्होंने बम्बई में 'सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट' स्थापित किया है जहाँ से प्रायः स्वामीजी की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों तथा सम्प्रति उपलब्ध साहित्य की सूची निम्नांकित है—

(१) माण्डूक्य-प्रवचन (आगम प्रकरण) (२) माण्डूक्यकारिका प्रवचन (वैतथ्य प्रकरण), (३) माण्डूक्यकारिका भाग-३, (४) कठोपनिषद् (भाग-१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा २), (५) श्रीमद्भागवतरहस्य, (६) सांख्य योग, (७) ध्यानयोग (८) कर्मयोग, (९) भक्तियोग, (१०) ज्ञानविज्ञानयोग, (११) विभूतियोग, (१२) भक्तिसर्वस्व, (१३) अपरोक्षानुभूति), (१४) साधना और ब्रह्मानुभूति, (१५) नारदभक्तिदर्शन, (१६) भक्तिरसायनम्, (१७) मानव जीवन और भागवत धर्म, (१८) व्यवहार और परमार्थ, (१९) मुण्डक प्रवचन, (२०) ईशावास्य प्रवचन, (२१) पुरुषोत्तम-योग, (२२) ब्रह्मज्ञान और उसकी साधना, (२३) भागवतामृत, (२४) भागवत दर्शन, (२५) मानव जीवन और भागवत-धर्म, (२६) गीता में मानव-धर्म भक्ति-ज्ञान समन्वय, (२७) निगम-चिन्तन, (२८) चारु चिन्तन, (२९) गम्भीर चिन्तन, (३०) गीता-दर्शन (१-८)।

इन विभिन्न ग्रन्थों के नाम से ही इनके विषय-वैविध्य का पता चलता है। वेद, दर्शन, शास्त्र, भागवत आदि सभी विषयों में आपका प्रकाण्ड पाण्डित्य परिलक्षित होता है। साधु-सन्त तथा महात्मा लोग मौखिक रूप से प्रवचन तो करते हैं परन्तु लेखन-कर्म से वे प्राय: विरत रहते हैं। परन्तु स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती की विशेषता यह थी कि ये उपनिषदों, वेदान्त ग्रन्थों एवं भागवत के मधुर वाचक ही नहीं, अपितु लेखनी के भी धनी थे। इनकी वाणी और लेखनी दोनों ही अध्यात्म के उपदेश में समभावेन गतिशील रहीं।

श्रीमद्भागवत के उत्कृष्ट प्रवचनकर्ता

स्वामी अखण्डानन्दजी के जीवन का सर्वोत्कृष्ट वैशिष्ट्य था श्रीमद्भागवत का प्रवचन। स्वामीजी ने दिव्य शरीर के साथ ही दिव्य वाणी भी प्राप्त की थी। इनकी सुमधुर वाणी से निकले हुए भागवत के मधुर श्लोक श्रोताओं के ऊपर अलौकिक प्रभाव उत्पन्न करते थे। इनकी कथा-शैली इतनी रोचक और प्रभावोत्पादक थी कि स्वयं महामना मालवीय महाराज ने इनसे भागवत की कथा सुनने की इच्छा प्रकट की और इनकी कथा सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। भारत के बड़े से बड़े सेठ-साहूकार, धनी-मानी व्यक्ति इनके शिष्य रहे हैं और वे लोग अपने यहाँ भागवत की कथा सुनाने के लिए इन्हें बार-बार आग्रहपूर्वक निमन्त्रण देकर बुलाते थे। स्वामीजी की कथा कहने की विशेषता यह थी कि अपने प्रवचन के बीच में उपदेशात्मक रोचक कथाएँ भी सुनाते रहते थे जिससे श्रोता का मन ऊबने नहीं पाता था। भागवत के श्लोकों का पाठ इनकी मधुर वाणी से सुनकर चित्त प्रसन्न हो जाता था भागवत की कथा को लोकप्रिय बनाने में स्वामीजी का योगदान प्रचुर परिमाण में पाया जाता है। श्री वृन्दावन में उड़िया बाबा के आश्रम के अधिष्ठाता रूप में और भी निजी आश्रम 'आनन्द-वृन्दावन' के सञ्चालक रूप में आपका व्यवस्थापक रूप भी नितान्त स्पृहणीय एवं आदरणीय था। आपके प्रवचनों में जितनी मधुरता एवं सरसता का सञ्चार पाया जाता था, आपके लेखों में इतनी गम्भीरता एवं तार्किकता का प्रसार उपलब्ध होता था। एक उदाहरण पढ़िए—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(क) लीला तथा चरित्र का सूक्ष्म अन्तर जान लेना आवश्यक है। चरित्र का एक उद्देश्य होता है। उसमें कर्तृत्व का भी कुछ न कुछ अंश रहता ही है, चाहे वह बाधितानुवृत्ति से ही क्यों न हो। चरित्र में चाहे कर्ता की भावना से, चाहे जनता की भावना से जगत् के हित का उद्देश्य समाविष्ट रहता है। परन्तु लीला भगवान् की मौज है। वह केवल लीला के लिए है। ऐसा कोई माई का लाल नहीं हुआ जो अन्तर्यामी के समान भगवान् के हृद्गत संकल्प को जानकर कह दे कि इस प्रयोजन से उन्होंने लीला की है। वह सप्रयोजन मानव का चरित्र थोड़े ही है। भगवान् की लीला हो रही है, वह सहज है, स्वाभाविक है। उसमें न उद्देश्य है, न प्रेरणा है, उसमें काल का स्पर्श नहीं है। भगबान् की लीला अनादि है, अनन्त है, एकरस है, स्वरूप है। उसमें न क्रिया है, न संकल्प है, न स्पन्दन है। वह लीला है, ज्यों की त्यों लीला है। (*श्रीमद्भागवतरहस्य*, पृ. ३०-३१)

(ख) कृष्णलीला—श्रीकृष्णावतार के प्रसंग में देवकी-वसुदेव रूप शुद्ध प्रज्ञा एवं शुद्ध सत्व से आविर्भूत श्रीकृष्ण का गोकुल में जाना और वहाँ यशोदा-नन्द को माता-पिता के रूप में स्वीकृति देना इस बात का सूचक है कि भगवान् के माता-पिता वास्तविक नहीं होते, भाग्य की गाढ़ता एवं दृढ़ता के तारतम्य से ही उनमें मातृत्व और पितृत्व का उपचार होता है। पूतना अविद्या है, शकटासुर जड़वाद है, वकासुर दम्भ है, अघासुर पाप है, धेनुकासुर देहाध्यास है, कालियनाग भोगासक्ति रूप विषय है—ये सब बातें ध्यान देने योग्य हैं। चीरहरण का अर्थ आवरण-भंग है और रासलीला का अर्थ अन्तःकरण की शान्त एवं मुदित, लीन एवं गतिशील सभी वृत्तियों में भगवत् तत्व का अनुपम रूप से स्फुरित होना है। यह हल्लीसक नृत्य भौतिक नहीं आध्यात्मिक है—इसका अनुभवी साधक तत्वदर्शी हो जाता है और जीवन्मुक्ति के विलक्षण सुख का भाजन बनता है। (वही, पृ. ८-९)

इसीलिए भागवत धर्म के शास्त्र-सम्मत प्रवचनों से देश के अनुपम उपकारी स्वामीजी के लिए भक्तों का यह उद्गार मृषोद्य नहीं है, सत्यवाक् है—

प्रेम भरा था जीवन उनका, प्रेम भरे थे मीठे बोल।
प्रेम भरे थे नयन मनोहर, जीवन को करते अनमोल॥

श्री स्वामीजी द्वारा रचित कतिपय संस्कृत श्लोक जिनका प्रयोग वे कथा आरम्भ के पूर्व करते थे—

(१)

श्री - पूर्णानन्दतीर्थस्फुरदमृतगवीविप्रुषाऽऽप्लावितानां
नास्माकं मोक्षचिन्ता प्रविदितमहसां ब्रह्मभावं गतानाम्।
किन्त्वेषा बोधधारा विघटितनिखिलाकारसंस्कारकारा
स्वच्छन्दं दन्ध्वनीति प्रतिपदमधुना तामनुव्यञ्जयामः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये हैं श्री पूर्णानन्द तीर्थ! इस अद्‌भुत तीर्थ से वचनसुधा लहराती है। हम उसके सीकरों में स्नान कर चुके हैं। हमें अद्वितीय ज्योति का बोध हो गया है और ब्रह्मात्मभाव का अनुभव है, मोक्ष की कोई चिन्ता नहीं है। फिर भी उस कृपा-सीकर से प्राप्त बोध की धारा प्रवाहित होकर समस्त आकार एवं संस्कार के कारागार को छिन्न-भिन्न कर रही है और स्वच्छन्द उपदेश ध्वनि से परिपूर्ण कर रही है।

(२)

शिक्षा सर्वागमानां निखिलजनमनःपावनी कापि दीक्षा
दीप्ता सर्वात्मदृष्टिर्निरवधिकरुणा किं नु वात्सल्यवृष्टिः।
निष्ठा ब्रह्मात्मविद्याद्युतिदलिततमस्तोम—विद्वन्मणीनां
श्रीपूर्णानन्दतीर्थो जगति विजयते सत्प्रतिष्ठा यतीनाम्॥

श्री पूर्णानन्द तीर्थ की जय हो, जय हो! यह हमारे महाराजश्री सम्पूर्ण शास्त्रों की मूर्तिमती शिक्षा हैं अथवा निखिल जनता के मानस को पालन करने वाली कोई दीक्षा। ये प्रदीप्त सर्वात्मदृष्टि हैं। हो न हो, ब्रह्मात्मविद्या की द्युति से अज्ञानान्धकार को दूर—अप्रसारित करने वाले ज्ञानी पुरुषों के मुकुटमणि हैं, ऐसा लगता है जैसे महात्माओं की शाश्वत प्रतिष्ठा ही इनके रूप में प्रकट हो गई।

(३)

सम्भोगे विप्रलम्भे निरुभयमभयं भाति भूपो रसानां
विक्षेपे वा समाधौ विहरणनिपुणा ब्रह्मविद्यैव नूनम्।
इत्थं लोकैरशोकैरनुपदमधिकं भाव्यमानोऽवधूतः
श्रीपूर्णानन्दतीर्थः पथि पथि पथिकान् नन्दयन् बम्भ्रमीति॥

संयोग शृङ्गार और वियोग शृंगार दोनों से अलग और दोनों में विद्यमान ये निर्भय रसराज ही हैं क्या? हो सकता है विक्षेप एवं समाधि में समान विहार करने वाली ब्रह्मात्म विद्या ही इनके रूप में प्रकट हुई हो। आनन्द से भरपूर जनता सब ओर इनके बारे में उद्‌भावना कर रही है। ये कौन हैं? कोई अवधूत हैं। इनको लोग श्री पूर्णानन्द तीर्थ के नाम से जानते हैं। मार्गवासी लोगों को आनन्द देने के लिए ये पैदल ही पथ-पथ पर विचरण करते हैं।

(४)

ब्रह्मानन्दाब्धिलीलाललितलहरिकाव्यञ्जितासंख्यविन्दु-
ब्रह्माण्डव्रातरोमा विधुतविधिविधुत्र्यक्षविस्तारसीमा।
संविद्‌भूमांशुमालोज्ज्वल-विमल-रुचिध्वस्तमायाविलासः
श्रीपूर्णानन्दतीर्थो मम मनसि मनागात्मभावं बिभर्तु॥

ये हैं श्री पूर्णानन्द के तीर्थ। ब्रह्मानन्दसागर की लीलाललित असंख्य विन्दुओं से छलकते हुए राशि-राशि ब्रह्माण्ड इनके रोम-रोम में स्थित हैं। विष्णु, ब्रह्मा और शङ्कर के विस्तार की सीमा टूट चुकी है। अनन्त संवित् के राशि-राशि चिदाभास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रश्मि-समूह की चमक से माया-विलास का विध्वंस हो रहा है। यही श्री महाराजजी कृपापूर्वक मन में थोड़ा-सा आत्मभाव भर दें।

(५)

तीर्थानां नास्ति संख्या विलसति पुरतः कापि तेषामभिख्या
येषां स्नानप्रदानप्रवचनपटिमा कां कलां नातिशेते।
तच्चित्रं यस्य चित्रं कलितमपि मनाक् छ्रेयसां प्रेयसां च
पारोक्ष्यं संविधत्ते वितरति परमां पूर्णतामात्मरूपाम्॥

तीर्थों की संख्या नहीं है। गंगा-पुष्करादि, महात्मागण विद्वान् सभी तीर्थ हैं। उनकी अद्भुत शोभा प्रत्यक्ष रूप से अनुभव में आती रहती है। उनमें स्नान करो, दान करो, प्रवचन करो। उनकी पटुता सभी कलाओं का अतिक्रमण कर जाती है। परन्तु श्री पूर्णानन्द तीर्थ में एक विचित्रता है। यदि एक बार थोड़ी देर के लिए उनके चित्र का भी आकलन कर लिया जाए तो वह श्रेय एवं प्रेय दोनों को प्रत्यक्ष कर देता है और आत्मस्वरूप सच्ची पूर्णता का दान कर देता है।

स्वामीजी महाराज का वृन्दावन, मथुरा में स्वर्गवास हो गया।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रमुख मनीषी, संत, महात्मा

महाराष्ट्र के संत-महात्मा	ना०वि० सप्रे
महाराष्ट्र के कर्मयोगी	ना०वि० सप्रे
समर्थ रामदास	ना०वि० सप्रे
करुणामूर्ति बुद्ध	डॉ० गुणवन्त शाह
महामानव महावीर	डॉ० गुणवन्त शाह
योगिराज तैलंग स्वामी	विश्वनाथ मुखर्जी
आधुनिक भारत के युग प्रवर्तक संत	लक्ष्मी सक्सेना
सन्त रैदास	पद्मावती झुनझुनवाला
भारत के महान योगी (14 भाग, 7 जिल्द)	विश्वनाथ मुखर्जी
मनीषी की लोकयात्रा (पं० गोपीनाथ कविराज का जीवन दर्शन)	डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह
सूर्य विज्ञान प्रणेता योगिराजाधिराज स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव : जीवन और दर्शन	नन्दलाल गुप्त
ब्रह्मर्षि देवराहा-दर्शन	डॉ० अर्जुन तिवारी
श्री श्री सिद्धिमाता	राजबाला देवी
प्रकाश-पथ का यात्री (एक सिद्ध योगी की आत्मकथा)	योगेश्वर
अघोर पंथ और संत कीनाराम	डॉ० सुशीला मिश्र
शिवस्वरूप बाबा हैड़ाखान	सद्गुरुप्रसाद श्रीवास्तव
बाबा नीब करौरी के अलौकिक प्रसंग	बच्चन सिंह
सोमबारी महाराज (उत्तराखण्ड की अनन्य विभूति)	हरिश्चन्द्र मिश्र
तथागत (आत्मकथात्मक उपन्यास)	डॉ० बाबूराम त्रिपाठी
उत्तराखण्ड की सन्त परम्परा	डॉ० गिरिराज शाह
पूर्वांचल के संत महात्मा	परागकुमार मोदी

Rs. 60.00
ISBN : 978-81-7124-668-7

विश्वविद्यालय प्रकाशन
पो०बॉ० 1149, विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी - 221001
Phone & Fax : (0542) 2413741, 2413082
e-mail : sales@vvpbooks.com
www.vvpbooks.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi